शिवपुरी के नव निर्मित श्री महावीर जिनालयस्थ—

भगवान महावीर

श्री

पारस

जिनेन्द्र-गीताञ्जलि

लेखक, सम्पादक व संग्राहक

कमलकुमार जैन शास्त्री "कुमुद"

आशुकवि-फूलचन्द "पुष्पेन्दु"

अध्यापक—श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल

खुरई (जिला-सागर) म० प्र०

प्रकाशक—

सेठ पारसदास श्रीपाल जैन मोटरवाले

१४७० रंगमहल, एम० पी० मुकर्जी मार्ग, देहली-६

[श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन प्रकाशन]

मुद्रक—

पं० परमेष्ठीदास जैन, जैनेन्द्र प्रेस, ललितपुर.

परिवर्द्धित	वीर नि० सं०	मूल्य
पंचम संस्करण	२५०२	दस रुपया

आस्तिकता का उदय हो ॥ ॐ ॥ भौतिकता का ह्रास हो

पारस-जिनेन्द्र-गीताञ्जलि

के नित्य पूजा-पाठ और स्वाध्याय से
कोना कोना गूँज उठे,
धार्मिक सद्-भावना की वृद्धि हो,
वायुमण्डल पवित्र हो,
विश्व में शान्ति हो,
सम्यक्त्व, अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त की
दिव्यध्वनि से

भगवान महावीर स्वामी की रजत शताब्दी

युग युगान्त तक अमर हो,
इसी पुनीत-भावना की पूर्ति के लिये
जैन-समाज की सेवा में
यह प्रकाशन

सादर-समर्पित

—: विनयावनत :—

सेठ पारसदास श्रीपाल जैन मोटरवाले
१४७० रंगमहल, एम० पी० मुकर्जी मार्ग, देहली-६

उपासना की वृद्धि हो] 卐 [जिन शासन की समृद्धि हो

— निर्देशिका —

पर्व-पूजा-प्रकरण

नैमित्तिक पूजा-पाठ-प्रकरण

तीर्थङ्कर-पूजा-प्रकरण

स्तुति-प्रकरण

स्वाध्याय पाठ-प्रकरण

महाप्रभावक स्तोत्र-प्रकरण

आवश्यक पाठ-प्रकरण

मन्त्र-प्रकरण

विवाह निर्देशिका—

सरस जैन विवाह पद्धतिः—

卐

प्रस्तावना

संसार के सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दुःख से डरते हैं। दुःखनिवृत्ति एवं सुख प्राप्त करने हेतु आचार्यों ने द्विविध धर्म का उपदेश दिया है—(१) प्रवृत्ति (२) निवृत्ति। पूजन, भजन, तीर्थयात्रा, दान आदि प्रवृत्तिपरक धर्म है। इससे अशुभ राग की निवृत्ति एवं शुभ की ओर प्रवृत्ति बढ़ती है। परन्तु शुभ राग भी राग है। पुण्य भी संसार का ही कारण है, अतः शुभ की ओर प्रवृत्ति एवं पुण्यार्जन की भावना रखते हुए सांसारिक सुखों के प्रति निवृत्ति की भावना रखने वाला प्राणी ही संसार से पार होने का मार्ग प्राप्त कर सकता है।

धर्म शब्द पर विविध दार्शनिकों ने चिन्तन किया है एवं अपनी अपनी समझ के अनुसार उसके स्वरूप का निर्धारण किया है। धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना या पालन करना। वैदिक साहित्य में धार्मिक विधियों एवं क्रिया संस्कारों को धर्म माना गया है। एतरेय ब्राह्मण में धर्मशब्द सकल धार्मिक कर्त्तव्यों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है (७-१७)। छान्दोग्योपनिषद (२-२३) में धर्म की तीन शाखाएँ मानी गई हैं (१) यज्ञ, अध्ययन और दान (२) तपस्या (३) ब्रह्मचारित्व। अन्त में धर्म शब्द मानव कर्त्तव्यों या आचार विधि का द्योतक बन गया। तैत्तिरीयोपनिषद में सत्यं वद्, धर्मं चर, भगवद् गीता में स्वधर्मे निधनं श्रेयः कहा है। मनु स्मृति के व्याख्याता मेधातिथि ने स्मृतिकारों की मान्यता के आधार धर्म के पांच रूप स्वीकार किये हैं–वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रम धर्म,

नैमित्तिक धर्म, और गुण धर्म। वैशेषिक सूत्र में कहा गया है— जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है वह धर्म है। महाभारत में 'अहिंसा परमो धर्मः' मानो वैशेषिक सूत्र की अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्ति की परिभाषा पर कोई साम्प्रदायिकता की झलक नहीं है। आगम साहित्य में भी धर्म का लक्षण कहा गया है, यथा—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं णमस्संति जस्स धम्मे सयामणो॥

(दशवैकालिक)

धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम और तप ये धर्म हैं। जिसका मन सदा धर्म में रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार में "चारित्तं खलु धम्मो" तथा बोधपाहुड में "धम्मो दयाविशुद्धो" कहकर धर्म का लक्षण किया है। परन्तु धर्म का सही अर्थ आचार्य समन्तभद्र ने कहा है—

धर्म कर्म निवर्हणम्।

संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।

अर्थात् कर्मों का नाशक तथा संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख में पहुँचाने वाले को धर्म कहा है।

जो कर्मों का नाश कर लेते हैं वे ही संसार से पार होने को उद्यत हैं। उन्हें ही हम जिन, जिनवर आदि के नाम से

जानते हैं। जिनपर जिनकी आज्ञा चलती है उन्हें जिनेन्द्र कहते हैं। जो सर्वज्ञ, वीतरागी और हितोपदेशी होता है उसे ही हम जिनेन्द्र कहते हैं। जिनेन्द्र ही अपने हितकारी उपदेशों के द्वारा संसार के प्राणियों को सच्चा सुख प्राप्ति का मार्ग दर्शाते हैं, अतः वे ही हमें आराध्य हैं।

जिस आराधक के स्वच्छ हृदय में जिनेन्द्र के धर्म एवं उसके उपदेशित मार्ग पर सच्ची श्रद्धा हो जाती है वह ही जिनेन्द्रभक्त कहलाता है। जिनेन्द्रभक्ति से प्राप्त होने वाले फल के सम्बन्ध में आचार्य समन्तभद्र ने कहा है—

अष्ट गुण पुष्टि तुष्टा दृष्टिविशिष्टः प्रकृष्ट शोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे॥

(रत्नकरण्ड श्रा० ३७)

सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्ग में जिनेन्द्र के भक्त होते हुए अणिमा महिमा आदि आठ ऋद्धियों से सन्तुष्ट तथा अतिशय सौन्दर्य सम्पन्न होकर देव एवं देवाङ्गनाओं की सभा में वहुत काल तक आनन्द करते हैं।

इससे स्पष्ट है कि जिनेन्द्र का सच्चा भक्त सम्यग्दृष्टि जीव ही हैं। जिनका मोहकर्म-मिथ्यात्व यद्यपि सत्ता में विद्यमान है फिर भी जिसका उदय मन्द है वे भी महान भद्रपरिणामी होने के कारण जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा पर पूर्ण विश्वास करके व्रत संयम एवं तपश्चर्या के भी साधक होते हैं। फलतः वे भी जिनेन्द्रभक्त ही हैं परन्तु सिद्धान्ततः और अन्तरङ्ग में मिथ्यात्व का उदय होने के कारण जिनेन्द्रभक्त शब्द से सम्बोधित

नहीं किए जा सकते हैं।

सम्यग्दृष्टी को "जिनेन्द्रभक्त" मात्र विशिष्ट शुभराग के कारण होने वाले "पुण्यबन्ध" एवं देवेन्द्रों के वैभव और ऐश्वर्य युक्त अवस्था प्राप्त होने के कारण कहा गया है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार में जिनेन्द्रभक्ति का फल निम्नप्रकार प्रतिपादित किया है—

जो तं दिट्ठा तुट्ठो अब्भुट्ठिता करेदि सक्कारं।
वंदण णमंसणादि ततो सो धम्ममादि यदि ॥१००॥

तेण णरा य तिरिच्छा–देविं वा माणुसिं गदिं पत्ता।
विहविस्सदि येहि सया संपुण्णमणोरहा होंति ॥१०१॥

सोमदेव सूरि ने भी यशस्तिलक चम्पू ग्रन्थ में जिनेन्द्रभक्ति का फल निर्देशित किया है—

एकैव समर्थेयं, जिनभक्ति दुर्गतिर्निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनाम्॥

एक जिनेन्द्र देव की भक्ति ही दुर्गति से बचाने के लिये, पुण्य से भरने के लिये एवं मोक्ष प्रदान करने के लिये समर्थ है।

आचार्य समन्तभद्र ने भी जिनेन्द्र भक्ति का फल निम्न प्रकार से उल्लिखित किया है—

देवेन्द्र चक्र महिमानममेयमानं,
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्र शिरोऽर्चनीयम्।
धर्मेन्द्र चक्रमधरीकृत सर्वलोकं,
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः॥

जिनेन्द्र की भक्ति करने वाला भव्यजीव देवेन्द्र की अपरिमित महिमा को, राजाओं के मस्तक से पूजनीय चक्रवर्ती के चक्ररत्न को तथा सेवक रूप से बनाया है समस्त संसार को जिसने ऐसे तीर्थंकर भगवान के धर्मचक्र को प्राप्त करके मोक्ष को भी पा लेता है। (रत्न करण्ड श्रा० ४१)

पं० खूबचन्द जी शास्त्री ने उक्त पद्य का तात्पर्य इस प्रकार समझाया है कि सुरेन्द्रता के लिये अभिषेक पूजा, चक्रवर्तित्व के लिये वैयावृत्य प्रभृति तपश्चरण, तीर्थंकरत्व के लिये अपाय विचय धर्मध्यान तीर्थकृत्व भावना एवं निर्वाण प्रगति के लिये शुद्ध आत्मस्वरूप में लीनता अर्थ करना अधिक संगत हैं।

शुद्ध हृदयवाला भक्त अपने आराध्य के दर्शनमात्र में स्वयं को धन्य मानता हुआ आराध्य को मोक्ष-प्रदाता मानकर ही आराधना करता है।

दर्शनं देव देवस्य दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्॥

भक्त अपने आराध्य की भक्ति में इतना तल्लीन हो जाता है कि सहसा कह उठता है--

न हि त्राता न हि त्राता न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति॥

संसार में जीव का एकमात्र रक्षक उत्कृष्ट देव वीतराग ही हैं। यह कथन तो मात्र व्यवहारिकता पर आधारित है। निश्चय दृष्टि से तो आत्मा का रक्षक आत्मा ही हैं। वीतराग देव तो वीतराग ही हैं, वे कुछ देते लेते नहीं हैं, परन्तु उनके स्वरूप का

चित्तवन एवं दर्शन आत्मसाक्षात्कार करने वाला है । सम्यग्दृष्टि जीव की भक्ति का एक उदाहरण दौलतराम जी की विनती में देखिये—

जय परम शान्त मुद्रा समेत भविजन को निज अनुभति हेत ।
भवि भागनवश जोगे वसाय तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय ।
तुम गुण चिन्तत निज पर विवेक प्रगटे विघटे आपद् अनेक ।

सच्चे भक्त की भावना ही कितनी पवित्र होती है, देखिये उसकी दृढ़ संकल्प शक्ति को -

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भूवं चक्रवर्त्यपि ।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासितः ॥

जिन धर्म से रहित होकर मुझे चक्रवर्ती होना भी पसंद नहीं है, किन्तु जैन धर्म से सहित दास और दरिद्री होना भी सहर्ष स्वीकार है । जिसे आत्मा की दृढ़ प्रतीति है वही जिनेन्द्र का सच्चा भक्त बन सकता है ।

भक्ति से आत्मा की अन्तरंग शक्ति का आभास होता है। अतः आत्मा की अन्तरंग शान्ति के लिये जो भी प्रयत्न होता है वह निर्मल दर्शन ज्ञान स्वभाव से परिणत परम आत्मा की दृष्टि और निज की भी कल्पना से प्रेरित निज सहज स्वभाव की दृष्टि है । इसी पवित्र भावना की प्रेरणा से शुभराग के कारण आत्मा भगवद्भक्ति में लीन होता है । भगवद् भक्ति के माध्यम से स्वात्मदृष्टि पाना ही भक्त को अभीष्ट होता है, अतः हम व्यवहार से भले ही देवपूजन कहें पर निश्चय से तो वह स्वात्मदृष्टि ही है ।

पारस जिनेन्द्र गीताञ्जलि का संग्रह भी भक्तों को स्वात्मदृष्टि प्राप्ति कराने हेतु किया गया है । अतः संग्रहकर्ता एवं प्रकाशक दोनों ही स्तुत्य हैं ।

इस संग्रह की उपयोगिता इसलिये अधिक है क्योंकि इसमें संग्रहीत सामग्री के अन्तर्गत आये संस्कृत एवं प्राकृत के स्तोत्र आदि का हिन्दी रूपान्तर भी प्रस्तुत किया गया है ।

अन्त में, मुझे आशा है कि पाठक इस अद्वितीय भक्ति ग्रन्थ का अधिकाधिक उपयोग कर स्वपर-कल्याण के लिये उपक्रम करेंगे ।

नेमीचन्द्र जैन शास्त्री
एम० ए० (द्वय) साहित्याचार्य
बी० एड०, प्राचार्य-
श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल उच्चतर
मा० विद्यालय, खुरई (म० प्र०)
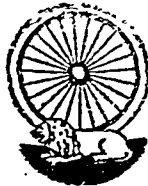
आत्म-कथ्य

जिनागम तो अनंत, असीम और अगाध समुद्र है। उसे ग्रन्थों के परिमित पृष्ठों में समेटने का प्रयास करना मानो लोकाकाश को हाथों से नापना है। तथापि उद्यमशील मानव कभी हतोत्साह नहीं होते। वर्तमान वैज्ञानिक बुद्धिजीवी युग इसका साक्षी है। इसीलिए अनिवार्य और सारभूत तथ्यों को लेकर ग्रन्थ-रचना के कार्य आचार्यों तथा कवियों द्वारा आज तक होते चले आये हैं।

यदि आप एक ही ग्रन्थ में उपासना, तत्त्वज्ञान और चारित्र के दर्शन करना चाहते हों तो दूर जाने की आवश्यकता नहीं। पद्य एवं गीतवद्ध जिनवाणी संग्रह से इसकी पूर्ति भलीभांति कर सकते हैं। यह वात दूसरी है कि उन संग्रहों में लोक व्यवहृत युगानुरूप सामग्री का समावेश विवेक के किस अनुपात से किया गया है!

यद्यपि मैं मानता हूं कि वंदनीय आचार्यों एवं सुप्रसिद्ध कवियों द्वारा प्रणीत साहित्य का संग्रह करना सम्पादकों के लिये कोई मौलिक सृजन नहीं होता, तथापि एक ही संकलन अथवा सम्पादन सम्पादक की सूझबूझ से ज्ञानानुभव, विवेक और परिश्रम की परीक्षा हो जाती है।

दस वर्ष पूर्व मैंने "जिनेन्द्र गीताञ्जलि" नाम से एक जिनवाणी संग्रह सम्पादित कर जैन जगत की वेदी पर रखा था। उसकी लोकप्रियता इतनी वढ़ी कि पांच संस्करण निकल जाने के उपरान्त भी आवाल वृद्ध धार्मिक नर-नारियों की प्रबल मांग

की पूर्ति करने में हम असमर्थ रहे। अपनी सर्वाङ्ग सम्पूर्णता के कारण ही "जिनेन्द्र गीताञ्जलि" इतनी अधिक लोकप्रिय हुई। इसलिये उसकी विवेकपूर्ण कुशल सम्पादन-कला का श्रेय स्वयं अपने ऊपर लेकर में गौरवान्वित हो रहा हूं।

स्वनामधन्य उदारहृदय दानवीर श्रेष्ठिवर्य श्री पारसदासजी श्रीपाल जी जैन मोटर वालों ने हमारी इस कला का मूल्यांकन करके "पारस जिनेन्द्र गीताञ्जलि" नाम से प्रस्तुत सर्वोपयोगी जिनवाणी संग्रह अपनी ओर से प्रकाशित करने की भावना रखी। मेरे अतिरिक्त भारत के किन्हीं अन्यान्य मूर्धन्य विद्वानों से यह कार्य सम्पन्न कराना उन्होंने श्रेयस्कर क्यों नहीं समझा ? इसे मैं सोच ही नहीं पाता। उनकी प्रबल प्रेरणा ने मेरे निरन्तर चलते हुए समग्र साहित्यिक क्रियाकलापों को गौण कर दिया और "पारस जिनेन्द्र गीताञ्जलि" के प्रकाशन को मुख्यता देकर मैं इसे अपेक्षाकृत और भी अधिक सर्वांग सम्पूर्ण बनाने में दत्तचित्त हो गया। यही कारण है कि लोकप्रिय जिनेन्द्र गीताञ्जलि की अपेक्षा इस संग्रह में आप कुछ अधिक ही पायेंगे।

भगवान महावीर के २५ सौवें निर्वाण महोत्सव के संदर्भ में इस संस्करण में विशेष परिवर्द्धन किया गया है जो द्रष्टव्य है।

पुनश्च, एतद् अन्तर्गत त्रुटियों-असावधानियों की क्षमा-याचना करते हुये मैं आप सबके सुझाव आमंत्रित करता हूं।

कमलकुमार जैन शास्त्री
'कुमुद'
व्यवस्थापक-श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन
खुरई (जिला-सागर) म० प्र०

उदार हृदय, परम धार्मिक—

सेठ श्री पारसदास जी जैन मोटरवाले

१४७० रंगमहल, श्यामाप्रसाद मुकर्जीमार्ग, देहली-६

जिन्होंने अपनी प्रगाढ़ मुनिभक्ति, तीर्थभक्ति एवं पारमार्थिक सेवा-दान द्वारा समाज में गौरवास्पद स्थान प्राप्त किया है ।

व्यक्तित्व और कृतित्व

जैन कुलभूषण, समाज-गौरव, उदारहृदय,
दानवीर, जिन-शासन परायण, मुनिभक्त,
सोनीपत-निवासी—

श्री सेठ पारसदास जी जैन

मोटरवाले, लैंडलार्ड, देहली.

—०—

कवियों की कल्पना में या वैज्ञानिकों के प्रयोगों में भले ही किसी ऐसे 'पारस' का अस्तित्व हो जो लोहे को भी कंचन बना देता है, परन्तु उस पारस की चर्चा यहां नहीं। यहां तो उस पौरुष का प्रकाशन है, जिसके स्पर्श मात्र से ही परिग्रह स्वयमेव त्याग के रूप में परिणत होने लगता है। तभी तो कहा गया है—

पारस प्रभु के अनुभव-रस का, कौन यहाँ पा पार सका ?
गणधर-वाणी का वैभव भी, जिनका वर्णन देख थका ॥
यहाँ उसी पौरुष की चर्चा, जो पारस का दास बना।
अपने त्याग समर्पण द्वारा, जन जन का विश्वास बना ॥

इस भांति अपने प्रशस्ति-पात्र, जैन कुलभूषण, समाज-गौरव, उदारहृदय, सेठ पारसदास जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालना इस ग्रन्थ में आवश्यक हो गया, क्योंकि "न धर्मो धार्मिकैर्विना"।

जीवन की सफलता धर्म, यश और सुख की प्राप्ति में है। जो इन तीनों चीजों को प्राप्त करते हैं उन्हीं का जीवन सार्थक और सफल है। सेठ पारसदास जी ऐसे ही समाज के दानवीर नररत्न हैं, जिन्होंने चंचला लक्ष्मी का उपार्जन करके उसका अच्छा सदुपयोग किया है।

सेठ साहब का जन्म ऐसे प्रशंसनीय प्रतिष्ठित कुल में हुआ जिसने सदैव समाज और जाति की अनुपम सेवा की। सोनीपत (हरियाणा) निवासी सेठ भजनलाल जी के सुपुत्र श्रावकरत्न श्री मूलचन्द जी के घर श्रीमती मिश्रीदेवी की कुक्षि से श्रावण सुदी ३ वि० सं० १९५९ को मंगलमय वेला में हुआ। सोनीपत नगर प्राचीन ऐतिहासिक शहर है। जिसे पांडवों नें बसाया था। इसी पुण्यभूमि में सेठ साहब का जन्म हुआ। आपके पिता जी सोनीपत में एक सम्माननीय जमींदार थे। धार्मिक शिक्षण के कारण आप में प्रारम्भ से ही उत्तम संस्कार विद्यमान थे। आपके पूर्वज धर्मज्ञ थे। वही संस्कार आपके जीवन में समाविष्ट हो गये।

व्यापार की आकांक्षा से और जीवन को उन्नत बनाने के लिए ४० वर्ष की आयु में आप कुटुम्ब सहित भारत की राजधानी देहली में आए।

दिल्ली में आने पर आपने एक विशाल रूप में व्यापार प्रारम्भ किया। व्यापार, बुद्धि कुशलता और पुण्योदय के कारण दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त होता गया।

दिल्ली के सामाजिक और धार्मिक जीवन में प्रवेश करके उत्तम ख्याति प्राप्त की और समाज की अनेक संस्थाओं की सेवा करके उनके पदाधिकारी बने।

आपने अपने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण और असाधारण कार्य किए हैं, जो दूसरों के लिए अनुकरणीय है।

आपने अपनी जन्मभूमि सोनीपत में एक विशाल जैन धर्मशाला का निर्माण कराया। जो दो मंजिला नये ढंग से बनी हुई है। जिसमें त्यागीगण, यात्री व विवाह शादीवाले सज्जनों के ठहरने आदि की पूर्ण व्यवस्था है।

दिल्ली के प्रसिद्ध स्थान श्री दि० जैन लाल मन्दिर जी के बाहरी भाग में एक विशाल अति उत्तम शोभायमान बरामदे का निर्माण कराया, जिससे मन्दिर जी की शोभा बढ़ गई है। और दर्शनार्थी भाई व त्यागीगण सामायिक, स्वाध्याय करके लाभ उठाते हैं।

अनुमानतः २० वर्ष पहले श्रीमान् सेठ पारसदास जी तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी की यात्रार्थ गए। तीर्थराज की यात्रा करके चित्त में यह उत्साह उत्पन्न हुआ कि यहां पर एक धर्मशाला का निर्माण कराया जाय। तत्काल ही आपने वहां के कार्यकर्ताओं को वचन दे दिया कि तेरह पन्थी कोठी के मुख्य द्वार पर धर्मशाला का निर्माण करावें। कुछ समय में ही धर्मशाला का निर्माण हो गया। जिससे अनेक यात्री ठहर कर तीर्थराज की यात्रा का लाभ उठाते हैं।

आचार्यरत्न, भारतगौरव श्री १०८ देशभूषण जी महाराज १९५२ में दिल्ली पधारे। श्री लखमीचन्द जी कागजी की महाराजश्री

के लाने में विशेष प्रेरणा रही । महाराज श्री के दिल्ली पधारने से धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई और समाज में विशेष जागृति हुई । सेठ पारसदास जी आचार्य महाराज से विशेष प्रभावित हुए । जब आचार्य महाराज श्री सम्मेदशिखर की यात्रा को पधारे थे, वहां से लौटते हुए जब वे अयोध्या जी में आए वहां महाराज श्री के मन में यह भावना जागृत हुई कि अयोध्या नगरी प्राचीन पवित्र एवं तीर्थंकरों की जन्मभूमि है । इसलिए प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ जी की एक विशाल प्रतिमा ३१ फुट ऊंची यहां विराजमान होनी चाहिए । महाराज जी ने अपने विचार जो उनके साथ में श्रावक लोग थे उनसे प्रकट किए, श्रावकों ने महाराज की आज्ञा स्वीकार की ।

तत्पश्चात् महाराज श्री का जयपुर में चातुर्मास हुआ । उस समय वहां के श्रावकों द्वारा इस विशाल प्रतिबिम्ब के बनने का आर्डर दे दिया । दिल्ली के चातुर्मास में महाराज श्री ने सेठ पारसदास जी से विशेष रूप से आगृह किया कि इस प्रतिबिम्ब की स्थापना आपके द्रव्य से होनी चाहिए । सेठ पारसदास जी ने महाराज की आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया । पूर्ण प्रयत्न के साथ प्रतिबिम्ब निर्माण कराकर जैन बंधुओं के सहयोग से अयोध्या नगरी में विशाल रूप से प्रतिष्ठा कराकर एक विशाल बाग में भगवान को विराजमान करा दिया और अपने जीवन में अधिक पुण्य संचय किया । इस कार्य में जैन समाज का पूर्ण सहयोग रहा, जिसमें दानवीर साहू श्री शान्तिप्रसाद जी जैन ने तन, मन, धन से एवं रायसाहब श्री उलफतराय जी ने भी पूर्ण सहयोग दिया । इस कार्य से अयोध्या तीर्थक्षेत्र का उद्धार हो गया । और एक अत्यंत आवश्यक कार्य सम्पन्न हो गया ।

सन् १९५८,५९ में जैन धर्मशाला मोरी गेट (बंगला) के दि० जैन मन्दिर जी के साथ निर्माण कराई, जिसमें त्यागीगण एवं यात्री ठहरकर लाभ उठाते हैं।

श्री राजगृही तीर्थक्षेत्र पर यात्रियों की सुविधा के लिए २१ सीढ़ियों का निर्माण कराया, जिससे यात्रीगणों को सुविधायें प्राप्त हो रही हैं।

एक धर्मशाला एवं कुआ १९६० में जी० टी० रोड पर दिल्ली–हरियाणा सीमा पर निर्माण कराया, जिससे रास्ते के यात्री ठहर कर लाभ उठाते हैं।

इसके अतिरिक्त धर्म–संस्थाओं में अपनी द्रव्य लगाकर संस्थाओं के कार्य को प्रोत्साहन दे रहे हैं। जो भी व्यक्ति अपनी आशा लेकर आपके पास जाता है उसको अपने द्रव्य से संतुष्ट करके ही भेजते हैं, और मुनि त्यागियों की भक्ति में तन, मन, धन से सदैव तत्पर रहते हैं।

आप अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी हैं, जैसे कि: —

श्री दि० जैन अग्रवाल पंचायत मोरीगेट प्रधान, श्री अग्रवाल दि० जैन समाज (रजि०) दिल्ली के बहुत समय तक अध्यक्ष रहे।

जैन गर्ल्स स्कूल सोनीपत (पंजाब) अध्यक्ष, श्री ऋषभ जैन बिल्डिंग सोसायटी लि० के संस्थापक, अध्यक्ष।

श्री भारतवर्षीय अनाथ रक्षक जैन सोसायटी बाल आश्रम दरियागंज दिल्ली, उपाध्यक्ष एवं कमेटी के प्रधान।

श्री प्रभूदास श्रीपाल जैन औषधालय दिल्ली, संस्थापक।

श्री अयोध्या जी तीर्थक्षेत्र कमेटी भू० पू० प्रधान तथा वर्तमान उपप्रधान।

आपके कारोबार भी बड़े विशाल रूप से चल रहे हैं:—

वैजनाथ पारसदास जैन बेंकर्स सोनीपत ।

मूलचन्द श्रीपाल जैन क्वीन्स रोड दिल्ली, मोटर पार्टस् तथा मर्सरी डीलर्स ।

मूलचन्द श्रीपाल जैन पेट्रोल पम्प ।

श्री जैन ट्रेक्टर्स प्राईवेट लि०, इसके आप मैनेजिंग डायरेक्टर हैं ।

इसके अतिरिक्त आपका एक बड़ा कृषि-फार्म सोनीपत में है, और आप कई पैट्रोल पम्पों के प्रोप्राइटर हैं ।

सेठ साहब बड़े ही उदार, दानवीर, धर्मप्रेमी और देशभक्त हैं । सामाजिक जागृति करने में सदैव प्रयत्नशील रहते हैं । जैन धर्म के प्रचार और अहिंसात्मक भावनाओं के फैलाने में सदैव अग्रसर रहते हैं । आपने साहित्य प्रकाशन में भी योग दिया है ।

आपके समान ही आपके सुपुत्र बाबू श्रीपाल जी हैं । जो कि धर्मप्रेमी और उदारचित्त हैं । आपकी धार्मिक प्रवृत्ति से सारा परिवार धार्मिक विचारों का है । आपकी धर्मपत्नी श्रीमती पिस्तादेवी और पुत्रवधू श्रीमती किरणदेवी भो अतिथि सत्कार तथा दान पूजा स्वाध्याय में सदैव संलग्न रहती हैं ।

इस पुस्तक का प्रकाशन भी आपकी धर्मरुचि और जैनधर्म की प्रभावना के भाव से हुआ है ।

भगवान इन्हें दीर्घायु दें जिससे समाज की समुन्नति हो । जैन शासन के प्रचार और अहिंसात्मक भावनाओं के फैलाने के प्रशंसनीय कार्य में आप अत्यंत जागरूक हैं । भविष्य में समाज को आपसे बड़ी आशायें हैं ।

सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र-

श्री० श्रीपाल जी जैन मोटरवाले

जिनका प्रभावक व्यक्तित्व नवयुवकों के लिए प्रेरणास्रोत है,

सत्साहित्य-प्रकाशन जिनके जीवन का

परम लक्ष्य है ।

भगवान महावीर के पच्चीसवें शतक की स्मृतिस्वरूप-

पूजन-प्रश्नोत्तरी

प्रश्नकर्ता:—श्री फूलचन्द्र जी 'पुष्पेन्दु' खुरई

समाधानकर्ता:—पं० कमलकुमार जैन शास्त्री "कुमुद"
खुरई (जिला-सागर) म० प्र०

卐

[श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन प्रकाशन खुरई, म. प्र.]

पर्यूषण पर्व—वीर नि० सं० २५०१

अवतरण

सहस्रों पत्र, संवत्सरों से मेरे पास आते रहते हैं जिनमें पूजन के इतिहास, उद्देश्य, फल, भाव, भावार्थ, शब्दार्थ, अष्टक रहस्य, मंत्र रहस्य, स्थापनारहस्य, आह्वान, सन्निधिकरण रहस्य, विसर्जन आदि विषय की उत्कट जिज्ञासा संबंधी प्रश्न मुझ से पूछे जाते हैं। पूजन की सांगोपांग विधि, प्रकार और विश्लेषण संबंधी पृच्छनाएँ भी बहुत समय से उत्तर के लिये प्रतीक्षित थीं। इन सारी समस्याओं का समाधान बन यह 'प्रश्नोत्तरी' संवाद रूप में जैन-समाज के समक्ष अवतरित हो रही है।

इस प्रश्नोत्तरी में विशेषतया आध्यात्मिकता को केन्द्र-बिन्दु मानकर ही सारी परिधियाँ खींची गई हैं, क्योंकि वीतरागी जैनधर्म में क्रियाकांडों की अपेक्षा तत्त्वज्ञान का ही महत्व अधिक है।

हमारी संस्था से प्रकाशित पुस्तक 'जिनेन्द्र गीताञ्जलि' में सभी पूजाएँ क्रम से यथाविधि शास्त्राधार पूर्वक संजोई गई हैं, अतएव इस प्रश्नोत्तरी को मनन करने के बाद ही क्रियात्मक रूप से तत्र निर्दिष्ट पूजनों का प्रारंभ करना चाहिए। इसीलिए इस प्रश्नोत्तरी में पूजनों का समावेश नहीं किया गया है। वे सब तो आपको 'पारस जिनेन्द्र गीताञ्जलि' में प्राप्त होंगी।

अनुग्रही श्री बाबू रतनलाल जी जैन १२८६ वकीलपुरा देहली (११०००६) के अनेक प्रेरणास्पद प्रश्न हमारे सहृदय सहयोगी श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु' के मुख से कहलाए गए हैं और शास्त्रों के ही उत्तर मेरे द्वारा मुखरित हुए हैं। त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूं और कृपालुओं के सौजन्य के प्रति कृतज्ञ।

—कमलकुमार शास्त्री "कुमुद"

व्यवस्थापक—श्री कुंथुसागर स्वाध्याय सदन, खुरई।

पारस जिनेन्द्र गीताञ्जलि के सम्पादक

पं० श्री कमलकुमार जी शास्त्री 'कुमुद'

व्यवस्थापक–श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन

खुरई (जिला–सागर) म० प्र०

आप ही हैं जैन जगत के बहुचर्चित सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् एवं कलाकार, जिनकी सतत साधना ने स्थानीय प्रकाशन संस्था–श्री कुन्थुसागर स्वा० सदन की छत्रच्छाया में अब तक अर्द्धशतक ग्रन्थों का लेखन एवं सम्पादन करके जैन वाङ्मय का भंडार भरा है। ६८ वर्षीय होने पर भी जिनमें युवाओं सदृश उन्मेष, कर्मठता एवं जीवन—क्रांति विद्यमान है।

पारस जिनेन्द्र गीताञ्जलि के सम्पादक

आशुकवि श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु'

अध्यापक-श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल
खुरई (जिला-सागर) म० प्र०

जिनके व्यक्तित्व में गौणता की मुख्यता है। सामान्य की विशेषता है। व्याकरण में जिसे भाव-वाचक संज्ञा, निज-वाचक सर्वनाम और अकर्मक क्रिया कहते हैं,

वे हैं श्री फूलचन्द जी "पुष्पेन्दु" आशुकवि, श्री पं० कमलकुमार शास्त्री 'कुमुद' के अनन्य सहयोगी, उत्साही प्रौढ़ विद्वान् स्व० व्रती श्री बालचन्द जी वैद्य के ४६ वर्षीय वरिष्ठ ख्यातनाम पुत्र।

पूजन-प्रश्नोत्तरी

पुष्पेन्दु—कृपया पूजन शब्द के प्रचलित पर्यायवाची नामान्तर बतलाइये।

कुमुद—उपासना, अर्चना, आराधना और पूजा आदि मुख्य हैं। याग-यजन एवं यज्ञ भी पूजन के अन्तर्गत आते हैं।

पुष्पेन्दु—पूजन कृतिकर्म को भक्तियोग, ज्ञानयोग, अथवा कर्मयोग में से किसमें समाविष्ट किया जा सकता है ?

कुमुद—तीनों में।

१—जहां केवल अपनी भावनामयी श्रद्धा भक्ति, विनय-वंदना और अभिवन्दना की प्रधानता से परमात्मा (शुद्धात्मा) में अपने उपयोग को स्थिर-एकाग्र किया जाता है, उस तद्रूप परिणति को भक्तियोग कहते हैं। इसमें ध्यान, ध्याता, ध्येय, तीनों अभेद और एकाकार होते हैं। निश्चयतः यह भाव-पूजा है।

२—जहाँ मुख्यतः केवल अपने क्षायोपशमिक मति-श्रुतज्ञान के बल पर भेदविज्ञान के विवेक द्वारा अभेद आत्मा के अनुभव की प्रक्रिया होती है, उसे ज्ञान-योग कहते हैं। यह ज्ञान-पूजा है। इसमें भी ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय का एकाकार होता है।

३—जहाँ बिम्ब-दर्शन, वन्दन, नमस्करण, प्रक्षालन, अभिषिञ्चन, आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरण, स्तवन, पूजन, आशीर्वचन, प्रदक्षिण और विसर्जन आदि की क्रियायें मन-वचन-काय इन तीनों की एकता पूर्वक की जाती हैं वहां पूजन को कर्मयोग में भी समाविष्ट किया जा सकता है। यह द्रव्य पूजन है। लोक में इसी का प्रचलन सर्वाधिक है।

पुष्पेन्दु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र में से पूजन को किस रत्न की आभा कहेंगे ?

कुमुद—तीनों की ।

१—वीतराग विम्ब-दर्शन, पूजन के निमित्त से अपने उपादान की आंशिक शुद्धि सम्यग्दर्शन है ।

२—वीतरागीय तत्वज्ञान के अभ्यास से आत्मानंद का आँशिक आस्वादन सम्यग्ज्ञान है । पूजन में चारों अनुयोगों का प्रयोजनभूत तत्वज्ञान और विधि-विधान रहता है ।

३—आत्म-स्थिरता की प्रवृत्ति बढ़ाने के लिये यथा-संभव पर द्रव्यों तथा शुभाशुभ भावों से आंशिक निर्वृति भी सम्यक्चारित्र है । यह महाव्रती मुनियों के षट् कृति-कर्मों द्वारा निष्पन्न होने वाली भाव पूजन का उत्कृष्ट स्वरूप है ।

पुष्पेन्दु—देव-दर्शन का महत्व अधिक है या देव पूजा-अर्चा का ?

कुमुद—स्पष्ट ही जिन-दर्शन से जिन-पूजन का महत्व अधिक है, क्योंकि जिन-दर्शन से आत्मा को जो आनन्दानुभूति हुई उसकी अभिव्यक्ति भक्त अपने मन-वचन-कर्म से तथा अपने द्रव्य गुण पर्याय से पूजन के मिस करता है । वस्तुतः पूजन उसकी श्रद्धा, भक्ति और विनय की यथा-शक्ति अभिव्यक्ति है । अर्थात् भक्त त्रियोग पूर्वक ज्यों २ स्व से एकत्व की ओर प्रवृत्त होता जाता है त्यों २ अपने आप पर से विभक्त (निर्वृत्त) होता जाता है । आत्मा का स्वरूप ही स्व से भक्त, पर से विभक्त है ।

पुष्पेन्दु—सामान्यतः पूजा भक्ति कहते किसे हैं ?

कुमुद—अपने इष्ट आराध्य एवं आदर्श मूर्तिमान के गुणों का संस्मरण-स्तवन-कीर्तन-चिन्तवन आदि-मूर्ति के माध्यम से करना ही पूजा-भक्ति है ।

पुष्पेन्दु—ऐसे आराध्य अथवा इष्ट, भक्त के लिये एक ही होता है या अनेक ?

कुमुद—निश्चयतः आराध्य अथवा इष्ट तो भक्त के लिये केवल एक ही होता है, और वह भी उसका त्रिकाली शुद्धात्म तत्व । परन्तु उस साध्य की सिद्धि के लिए जिन जिन साधनों का व्यवहार होता है वे अनेक होते हैं । अतः व्यवहार से आराध्य अनेक भी होते हैं ।

पुष्पेन्दु—ऐसे आराध्य इष्ट साध्यों का वर्गीकरण किस प्रकार किया जा सकता है ?

कुमुद—मुख्यतः तो हमारे इष्ट सच्चे देव शास्त्र गुरु ही हैं । जिनकी पूजन-भक्ति-विनय-प्रतिष्ठा आदि प्रति समय होना चाहिये । इन्हीं के अन्तर्गत अर्हद् भक्ति, सिद्ध भक्ति, श्रुत भक्ति, चारित्र भक्ति, योगी भक्ति, आचार्य भक्ति, पंच गुरु भक्ति, तीर्थङ्कर भक्ति, शान्ति भक्ति, समाधि भक्ति, निर्वाण भक्ति, नंदीश्वर भक्ति, और चैतन्य भक्ति आदि का भी समावेश हो जाता है । इन भक्तियों को भक्त यथावसर करता रहता है ।

पुष्पेन्दु—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा पूजन, भक्ति, विनय का वर्गीकरण किस प्रकार हो सकता है ?

कुमुद—१-सिद्ध भक्ति, अर्हन्त भक्ति एवं तीर्थङ्कर भक्ति सच्चे देव की पूजन है । यह द्रव्य की अपेक्षा है ।

२--श्रुत भक्ति एवं जिनवाणी भक्ति सच्चे शास्त्र की पूजा है। इसमें भी द्रव्य की ही अपेक्षा है।

३--चरित्र भक्ति, आचार्य भक्ति, योगिभक्ति एवं पंचगुरु भक्ति में सच्चे गुरु की पूजा है। इसमें भी द्रव्य की अपेक्षा है।

४--चैत्यभक्ति, चैत्यालय भक्ति, निर्वाणभक्ति, तीर्थभक्ति, नंदीश्वर पंचमेरु कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय आदि क्षेत्र की अपेक्षा पूजन है।

५--पर्व या व्रत विशेषों पर की जाने वाली भक्ति काल की अपेक्षा पूजन है। जैसे दशलक्षण, सोलहकरण, रत्नत्रय व्रत, अनन्तव्रत आदि।

६ --शांति भक्ति, समाधि भक्ति एवं आत्म भक्ति आदि भाव की अपेक्षा पूजन है।

पुष्पेन्दु--जैन धर्म में व्यक्ति की पूजा को महत्व है या गुणों की पूजा को ?

कुमुद --भेद रूप से तो वस्तुतः जैनधर्म में गुणों की ही पूजा है, परन्तु वे अनन्तगुण जिस आदर्श में पूर्ण रूप से शुद्ध और अभेद रूप से व्यक्त हो चुके हैं उस आदर्श मूर्तिमान व्यक्ति की पूजा भी जैन धर्म से है। अर्थात् यहां नाम विशेषों की नहीं वल्कि गुण और गुणी की पूजा होती है।

पुष्पेन्दु पूजन परम्परा में कौन कौन से मुख्य उद्देश्य गर्भित हैं ?

कुमुद---दो उद्देश्य मुख्य रूप से गर्भित हैं।

(१) कृत्य विज्ञापन (२) परम आत्मीय गुणों की प्राप्ति।

विश्लेषण–

१—जो वीतराग विज्ञानी स्वयं रत्नत्रय के मोक्षमार्ग पर चलकर हमारे आदर्श नेता बने हैं, तथा जिन्होंने सर्वज्ञ होकर जीव मात्र को हित का उपदेश दिया है ऐसे वीतराग सर्वज्ञ, हितंकरों के प्रति आदर–सत्कार, भक्ति–विनय, वंदन-पूजन आदि के भाव आना स्वाभाविक है। इसलिये पूजन भक्त का कृत्य विज्ञापन है, अर्थात् कृतज्ञता प्रकट करना है।

"नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।"

२—परमात्मीय गुणों की प्राप्ति जिस आदर्श कैवल्य दर्पण के माध्यम से हमें होती है और अपने यथावस्थित स्वरूप का स्मरण हमें जिस माध्यम से होता है, उसकी उपासना भी हम आत्मीय स्वार्थ (परमार्थ) के लिये ही करते हैं। अर्थात्--

"वन्दे तद्गुणलब्धये।"

पुष्पेन्दु—पूजन से अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति भी क्या भक्त को होती है? यदि हां, तो उनकी प्रक्रियायें में क्या हैं?

कुमुद—१ वीतराग सर्वज्ञ हितंकर देव आदर–सत्कार, पूजा–भक्ति खुशामद से न तो प्रसन्न होते हैं और न निंदादिक नास्तिक कृत्यों से क्षुब्ध ही। निंदा-स्तुति दोनों ही उनके लिये समान हैं। परन्तु पुण्य गुणों के स्मरण से भक्त की पाप परिणति छूटती है अर्थात् पाप प्रकृतियों का रस (अनुभाग) सूखता जाता है। पुण्य प्रकृतियों

का रस बढ़ता जाता है। पांचों अन्तरायों की पाप-प्रकृतियें-विघ्न बाधायें, भग्नरस होकर निर्बल पड़ जाती हैं। इस भांति लौकिक प्रयोजन अपने आप सिद्ध होते हैं। मांगने नहीं पड़ते। यह अभ्युदय है।

२—वीतराग सर्वज्ञ भगवान जगत के कर्त्ता धर्ता हर्ता नहीं हैं। केवल ज्ञाता दृष्टामात्र हैं। उन्हें वैसा ही जानकर-मानकर यदि भक्त तद्रूप परिणति करता है तो उसकी आत्मा में संवर और निर्जरा रूप धर्म का उदय होता है अर्थात् शुद्धि और शुद्धि की वृद्धि होती है। ये संवर और निर्जरा साक्षात् मोक्ष-फल के कारण तत्त्व हैं। यह निःश्रेयस हैं।

पुष्पेन्दु—आज कल के भक्तों का पूजा करने का क्या उद्देश्य है ? इस उद्देश्य से उन्हें लाभ होता है या हानि ?

कुमुद—१-सांसारिक विषय कषायों की पुष्टि करने का।

२-लौकिक विभूतियों की चाह का।

३-फल प्राप्ति की शर्त पर बोल कबूलात करने का।

४-लोक-रूढ़ि के पालन करने का।

५-ख्याति प्राप्त करने का।

उपरोक्त मान्यताओं द्वारा पूजन करने से पुण्य-लाभ तो दूर रहा, उल्टे पाप का बंध ही धर्मायतनों में होता है।

पुष्पेन्दु—आज कल भक्तों को पूजा का फल अभ्युदय निःश्रेयस कोई भी क्यों प्राप्त नहीं हो रहा है ?

कुमुद– तथाकथित भक्तों की सब क्रियायें भाव-शून्य तथा जड़ मशीन जैसी हो रही हैं। जड़ क्रियाओं से ज्ञान चेतन का भला क्या संबंध ?

"यस्मात्क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।"

हमारे जप, तप, दान, पूजा आदि सभी अजागलस्तन वत् हैं।

पुष्पेन्दु—ज्ञानी भक्त और अज्ञानी भक्त की पूजा के भावों में क्या अन्तर है ?

कुमुद—१-ज्ञानी भक्त लौकिक लाभ से अपने आराध्य को नहीं पूजता, वल्कि उसको सहज ही ऐसा शुभ भाव आता है, क्योंकि ज्ञानी को तो ज्ञान की महिमा है और ऐसे महिमावन्त केवल सर्वज्ञ प्रभु ही हैं। शुभ भावों के फलस्वरूप उसे तीव्र पुण्यबंध होता है, पर उसे भी ज्ञानी भक्त अपने महिमावंत के आगे बिल्कुल तुच्छ मानता है।

२-इसके विपरीत अज्ञानी भक्त की भावना तथा क्रियायें पुण्यबंध तो दूर उल्टे पापबंध करा देती हैं, क्योंकि उसके परिणाम मूल में ही मोह, रागद्वेष आदि की मूर्च्छा से जड़ हो रहे हैं।

पुष्पेन्दु—निश्चय और व्यवहार के दृष्टिकोणों से पूजा कितने प्रकार की होती है ?

कुमुद—निश्चयभावपूजा, व्यवहार भावपूजा और द्रव्यपूजा, इस प्रकार पूजा के तीन भेद हैं।

विश्लेषण:—

(१) ज्ञानी भक्त की आंशिक शुद्धि निश्चय पूजा है।

(२) आराध्य का सच्चा स्वरूप समझकर उनका गुण-गायन आदि करना व्यवहार भाव पूजा है।

(३) ज्ञानी भक्त द्वारा भावपूर्वक की जाने वाली अष्ट द्रव्यों से आराध्य की जो पूजन होती है वह द्रव्य पूजा है।

पुष्पेन्दु—आध्यात्मिक दृष्टि से पूजा के भेदों का विश्लेषण करके बतलाइये।

कुमुद—प्रथम शक्ति पूजा=त्रिकाली परं पारणामिक ज्ञायिक भाव जो कि जीवमात्र में विद्यमान हैं। निगोद से लेकर सिद्ध दशा तक। द्वितीय एक देश भाव पूजा=आत्मा की आंशिक शुद्धि। चतुर्थ गुणस्थान से लेकर बारहवें गुण स्थान तक।

तृतीय द्रव्य पूजा=ज्ञानी भक्त को अपनी आंशिक शुद्धि के साथ रहने वाला जो शुभ भाव होता है, वह द्रव्य-पूजा है।

चतुर्थ जड़ पूजा=सामग्री चढ़ाना, पूजन बोलना आदि पुद्गल की क्रियायें हैं। (ज्ञानी की द्रव्य पूजा व जड़ पूजा में निमित्त नैमित्तिक का सम्बन्ध है।)

पंचम-पूर्ण देश भाव पूजा=आत्मा की परिपूर्ण शुद्धि अर्थात् अरिहंत और सिद्ध अवस्था।

पुष्पेन्दु—उपरोक्त पांचों पूजाओं का वर्गीकरण नौ पदार्थों में कीजिये।

कुमुद—शक्ति पूजा=जीव ।
एकदेश भावपूजा=संवर-निर्जरा ।
द्रव्य पूजा=आस्रव-बंध, पुण्य-पाप ।
जड़पूजा=अजीव ।
पूर्ण देश पूजा=मोक्ष ।

पुष्पेन्दु—भाव पूजन एवं द्रव्य पूजन का व्यावहारिक सुसंस्कृत एवं व्यवस्थित विधि-विधान क्या है? क्रमशः बतलाइये।

कुमुद—(१) ज्ञानी भक्त को सर्व प्रथम निश्चय भाव पूजन को समझना चाहिये, तदनुकूल जितनी भी व्यावहारिक क्रियायें (क्रियाकांड) वह करेगा सभी सार्थक होंगी ।

(२) फिर प्रातःकालीन देव वंदना कृति कर्म के विधान के अनुसार शौचादि से निवृत्त हो सामायिक करे।

(३) तदुपरान्त छने हुए जल से मुख-शुद्धि एवं जल-स्नान करे।

(४) फिर धुले हुए धवल, स्वच्छ एवं अस्पृश्य उत्तरीय तथा दक्षिणीय खादी के वस्त्र धारण करे।

(५) तदनन्तर चार हाथ आगे जमीन को देखते हुए श्री जिनमन्दिर जी पहुंचे। रास्ते में 'दृष्टाष्टक' स्तोत्र बोलता जावे ।

(६) श्री जिन मन्दिर के द्वार पर पहुंच कर हाथ-पांव धोकर ईर्यापथ शुद्धि करे (जाव अरिहंताणं बोलकर)।

(७) तदुपरान्त निःसहि, निःसहि, निःसहि बोलते हुए मन्दिर जी में प्रवेश करे ।

(८) देव-दर्शन की विधि विधान के अनुसार "अद्याष्टक स्तोत्र" आदि दर्शन-पाठ वोले ।

(६) फिर ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक सामायिक दंडक, त्थोस्मसामि दंडक, चैत्य भक्ति, पंचगुरु भक्ति आदि द्वारा देव वंदना करे।

(१०) पश्चात् समाधि भक्ति पाठ करे ।

उपरोक्त समस्त कार्यों में यथास्थान अष्टांग नमस्कार, तीन आवर्त, शिरोनतियें--प्रदक्षिणायें एवं कायोत्सर्ग आदि पाठों में वताये अनुसार करता जावे ।

(११) फिर प्रासुक जल कुएँ से छानकर लावे ।

(१२) तदनन्तार अष्ट द्रव्य की सामग्री शोध पूर्वक धोवे तथा तैयार करके थाल में सुसज्जित करे।

(१३) फिर प्रक्षाल के लिये नियत वस्त्र-खण्डों से वेदी एवं विम्व आदि का प्रक्षाल अथवा परिमार्जन करे ।

(१४) तत्पश्चात् स्वयं में इन्द्रादिक की स्थापना करता हुआ पुष्पवृष्टि पुरस्सर मंगलाष्टक पाठ पढ़े ।

(१५) उसी संकल्पानुसार विधि पूर्वक लघु अभिषेक पाठ पढ़ता जाये। तदुपरान्त पूजन-पात्र व सामग्रियों को यथावस्थित रखकर कायोत्सर्ग करे ।

(१६) फिर स्थापना निक्षेपके कर्म पूर्वक नित्य-नैमित्तिक पूजन का प्रारम्भ निम्न प्रकार करे –

(अ) णमोकार मन्त्र पूर्वक पुष्पाञ्जलि क्षेपण ।

(व) चत्तारि दंडक " " "

(स) अपवित्रः पवित्रो वा " "

(ड) जिन-सहस्रनाम का पाठ अथवा "उदक चन्दन तंदुल" आदि श्लोकपूर्वक अर्घ्य ।

(इ) स्वस्ति मंगल पाठ पूर्वक पुष्पाञ्जलि क्षेपण ।

१७--इसके पश्चात् देव शास्त्र गुरु की प्रथम पूजा प्रारम्भ करे ।

१८--विद्यमान विंशति तीर्थङ्कर पूजन ।

१९--कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय पूजन ।

२०--सिद्ध परमेष्ठी पूजन ।

२१--चौवीस तीर्थङ्कर पूजन ।

२२--तीर्थङ्कर विशेष पूजन यथा महावीर पूजन ।

२३--पर्वविशेष-पूजन यथा षोडश कारण-दशलक्षण धर्म आदि ।

२४--व्रत-विशेष पूजन, यथा क्षमावणी,रत्नत्रय, अनंत व्रत, रविव्रत, रोटतीज व्रत आदि ।

२५--सप्त ऋषीश्वर पूजन (गुरु पूजन)

२६--तीर्थक्षेत्र विशेषों की पूजन; यथा पंचमेरु, नंदीश्वर, सम्मेदशिखर, पावापुर, चम्पापुर आदि ।

२७--निर्वाण पूजन आदि यथावकाश करे । अथवा उपरोक्त पूजनों के मात्र अर्घ्य चढावे ।

२८--तदुपरान्त शान्ति पाठ पढ़े ।

२९--इसके अनन्तर विनती (प्रार्थना) पढ़ता हुआ परिक्रमा करे ।

३०--अन्त में विसर्जन पाठ पढ़े ।

३१--समाधि भक्ति भावना एवं कायोत्सर्ग करे ।

३२--इसके पश्चात् एकान्तस्थान में पद्मासन माड़कर सामायिक करना चाहिये ।

३३—शास्त्र स्वाध्याय करे।

पुष्पेन्दु—अष्ट द्रव्य की सामग्री कैसी होनी चाहिये ?

कुमुद—जीव जन्तु रहित अचित्त पदार्थ ही प्रासुक द्रव्य है। न ऊँगने योग्य अनाज और फल आदि, शुद्ध छना हुआ जल, ये सब प्रासुक माने गये हैं।

पुष्पेन्दु—क्या विना द्रव्य के भी पूजन हो सकती है ?

कुमुद—जैन धर्म में तो भावों की ही प्रधानता है, परन्तु चूंकि हम गृहस्थ लोग भोगोपभोग की सामग्रियों में ही निरन्तर मग्न रहते हैं इसलिये उन्हीं के माध्यम से हम अपना उपयोग स्थिर रखने का प्रयत्न करते हैं।

पुष्पेन्दु—अष्ट द्रव्य को चढ़ाने में कौन २ से उद्देश्य गर्भित हैं ?

कुमुद—मुख्यतया यही कि हे भगवन् ! मैं मूल्यवान से मूल्यवान (अर्घ्य) वस्तु भी आपके गुणों की प्राप्ति के लिये छोड़ सकता हूँ। लो, मैंने जल छोड़ा, चंदन छोड़ा, तंदुल छोड़ा, पुष्प का त्याग किया, नैवेद्य आदि पक्वान्नों का परित्याग किया, दीप-धूप-फल आदि का आश्रय छोड़ा और अन्त में अमूल्य से अमूल्य वस्तु भी छोड़ रहा हूँ, अर्थात् सारे के सारे पुण्य और पुण्य के फलों को मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए छोड़ने को तैयार हूं।

"पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि"

पुष्पेन्दु—जल क्या काम करता है ? इसे चढ़ाने में भक्त का क्या उद्देश्य गर्भित है ?

कुमुद—जल का कार्य मल का प्रक्षालन और तृषा का निवारण होना है। इस प्रतीक द्वारा हे जिनेन्द्र ! मैं मिथ्यात्व-मल

का प्रक्षालन कर रहा हूं। यह जल जिसे मैं त्याग रहा हूं आज तक हमारी प्यास नहीं बुझा सका, हमारी आत्मा की गंदगी को अब तक न धो सका। आपके गुण रूपी सम्यक्त्व जल से ही मेरा मिथ्यात्व-मल दूर हो सकता है।

पुष्पेन्दु--चंदन का क्या कार्य है ? इसे अर्पित करने में भक्त का क्या उद्देश्य निहित है ?

कुमुद--चन्दन शीतलता एवं सौरभ प्रदायक पदार्थ है। उसके माध्यम से भक्त कल्पना करता है कि हे वीतराग देव ! चन्दन के लेप में भी हमारा अपावन शरीर सुगंधित नहीं हो पाया। ज्वर संताप आधि व्याधियों से ग्रसित और नश्वर बना रहा। अतएव इस लौकिक चन्दन को आपके शीतल सुरभित गुणों के समक्ष छोड़ रहा हूं, क्योंकि अब इस पर मेरी श्रद्धा नहीं रही।

पुष्पेन्दु - तंदुल क्या काम करता है ? इसके अर्पण में क्या रहस्य गर्भित है ?

कुमुद—अक्षत अखंडता का प्रतीक है। धान्यविहीन होने से पुनर्जन्म के योग्य नहीं। आप अक्षय पद पर विराजमान हैं, इसलिये हे सर्वज्ञ देव ! उस पद की प्राप्ति के लिये मैं इस लौकिक और कल्पित अक्षतों को आपके चरणों में अर्पण करता हूं। और अपने अक्षय गुणों वाली आत्मा पर आस्था (श्रद्धा) लाता हूँ।

पुष्पेन्दु—पुष्प काहे का प्रतीक है ? इसमें कौन सा आध्यात्मिक रहस्य गर्भित है ?

कुमुद—पुष्प कामदेव का प्रतीक माना गया है। हे जिनेन्द्रदेव ! लौकिक पुष्प काम-वासना की तृप्ति आज तक न कर सके। आपके अखंड ब्रह्मचर्य के आदर्श के सम्मुख इन पुष्प-बाणों द्वारा कामनाओं-वासनाओं का नाश करना चाहता हूं।

पुष्पेन्दु—नैवेद्य काहे का प्रतीक है ? इसका आध्यात्मिक रहस्य बतलाइये।

कुमुद—नैवेद्य स्वाद और क्षुधा-शांति का प्रतीक है। हे त्रैलोक्यनाथ ! इस लौकिक-उपाय से आज तक मेरी भूख शान्त नहीं हुई, इसलिये इन पकवानों का आश्रय छोड़कर परमात्मीय गुणों का आश्रय ले रहा हूँ।

पुष्पेन्दु—पूजन में दीप द्वारा अर्चना करने से क्या प्रयोजन है ?

कुमुद—मृण्मय (मिट्टी का) दीपक अंधकार का नाश करने वाला एक छोटा सा माध्यम है, और स्व-परप्रकाशक ज्ञान का प्रतीक है। लोक में अज्ञान और मिथ्यात्व का घोर अंधेरा छाया हुआ है, वह अंधेरा मृण्मय दीपक से नहीं बल्कि चिन्मय दीपक से ही दूर हो सकता है। हे भगवन् ! आप में स्व-परप्रकाशक केवलज्ञान-ज्योति जगमगा रही है जिसके अलौकिक प्रकाश में सारा लोक आलोकित हो रहा है। हे सर्वज्ञदेव ! मैं मृण्मय दीपक का आश्रय छोड़कर आप जैसे केवलज्ञान की परं ज्योति स्वरूप चिन्मय दीपक का सहारा लेता हूँ।

पुष्पेन्दु—धूपायन किस तत्त्व का प्रतीक है ?

कुमुद—धूप समस्त अशुभ एवं दुर्गन्धित वातावरण को स्वाहा

करके वायु-मंडल को सुरभित एवं शुद्ध बनाती है। इसी भांति हे ऊर्ध्वगामी स्वभाव वाले परमात्मन् ! मैं चाहता हूँ कि समस्त शुभाशुभ विभावों को स्वाहा करके मैं भी आपके समान अपने जड़ कर्मों की रज उड़ा दूं और कर्मों को भस्मसात् करके धूप के धूम्र के समान ऊर्ध्वगामी बनजाऊँ।

पुष्पेन्दु—फल का अलौकिक अर्थ क्या है ?

कुमुद—हे भगवन् ! इन सांसारिक फलों की प्राप्ति से मेरे कोई भी कार्य सफल नहीं हुए। हे वीतराग देव ! अब मुझे इन पुण्य-पाप रूपी फलों की कोई आवश्यकता नहीं, ये तो शुभाशुभ के मधुर-कटुक फल हैं। मुझे तो अब शुभाशुभ से परे शुद्ध मोक्ष-फल की ही आवश्यकता है। इसलिये उस अलौकिक अवस्था के आगे मैं समस्त लौकिक फलों का महत्व हेय समझता हूं। और इनका आश्रय छोड़ता हूं।

पुष्पेन्दु—अर्घ्य का शाब्दिक अर्थ क्या है ? और उसमें कौनसा भावार्थ निहित है ?

कुमुद—अर्घ्य अर्थात् बहुमूल्य वस्तु। हे परमात्मन् ! जल से फल तक का सारा लौकिक वैभव मैं अपने आत्म-वैभव के सामने समर्पित कर रहा हूं, क्योंकि जिन चीजों को मैंने बहुमूल्य माना उन्होंने ही मुझे धोखा दिया, अब वीतराग दशा जैसे अनर्घ्य पद की प्राप्ति के लिए मैं सर्वस्व अर्पण करने को तैयार हुआ हूं।

पुष्पेन्दु—पूजन में जयमाला एवं गुणमाला से क्या तात्पर्य है ?

कुमुद—जयमाला में अपने आराध्य के गुणों की माला गूंथकर उनके चरणारविन्दों में अर्पित की जाती है। भक्त उन गुणों से अपने आत्मीय गुणों की तुलना करता हुआ अपने स्वरूप में मग्न होता है। शुभाशुभ उपयोग को छोड़कर शुद्धोपयोग में लीन होने का पुरुषार्थ करता है। दूसरे, जयमाला में जैन दर्शन का समूचा तत्वज्ञान संक्षेप में कवियों के द्वारा भर दिया जाता है।

पुष्पेन्दु—पूजा के अन्त में आशीर्वाद बोला जाता है। भला, उससे क्या तात्पर्य है ?

कुमुद—यद्यपि वीतराग देव वरदान फल या आशीर्वाद नहीं देते तो भी भक्त अपनी मंगल-कामना द्वारा यह कल्पना करता है कि मैं पूजा का फल प्राप्त कर रहा हूं। आराध्य का शुभाशीर्वाद धर्म का प्रत्यक्ष फल है। आशीर्वाद में भक्त की ओर से विश्व-शान्ति की मंगल-कामना भी रहती है।

पुष्पेन्दु—यदि यथाविधि सभी पूजनों के करने का अवकाश न हो तो उसका विकल्प क्या है ?

कुमुद-सभी प्रकार के पूजनों का भाव स्मरण कर उनके प्रति अर्घ्य अवश्य चढ़ाना चाहिये।

पुष्पेन्दु—अंत में समाधि भावना, शांति-पाठ और विसर्जन से क्या तात्पर्य है ?

कुमुद—(१) समाधि-भावना, और शान्ति पाठ में आत्मशांति और विश्वशान्ति की भावना भाई जाती है।

(२) विसर्जन द्वारा इस पूजनयज्ञ-समारोह में भाग

लेने वाले समस्त भव्यों व देवी देवताओं की यथाविधि बिदाई होती है तथा इस कृत्य संबंधी जो त्रुटियां अपने से हुई हैं उनकी आलोचना तथा क्षमायाचना भी भक्त द्वारा की जाती है।

पुष्पेन्दु—पुजारी कैसा होना चाहिये ? उसके मुख्य गुण और लक्षण बतलाइये।

कुमुद—सज्जन, शिक्षित, अवैतनिक। पारी से पूजा करने वाला नहीं, नौकरी से पूजा करने वाला नहीं, रूढ़ि से जकड़ा हुआ न हो, निराकुल हो, सांगोपांग हो, सुन्दर हो, परतंत्र एवं प्रमादी न हो, सदाचारी, विलोभी एवं सरल परिणामी हो।

पुष्पेन्दु—पूजन के वस्त्र, वस्त्रखंड सामग्री कैसी होनी चाहिये ?

कुमुद—अहिंसात्मकता का आधार लिये हुए सभी वस्तुएं शुद्ध और धवल होनी चाहिये।

पुष्पेन्दु—पूजन में मन्त्रोच्चारणों का क्या प्रयोजन है ?

कुमुद—ये शुद्धोपयोग रूप धर्म के फल हैं तथा शुभोपयोग रूप परोक्ष पुण्यफलों के भी प्रदाता हैं।

पुष्पेन्दु—स्थापना निक्षेप में आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरण से क्या तात्पर्य है ?

कुमुद—१ तीन लोक के नाथ को हृदयरूपी सिंहासन पर जिसका प्रतीक ठोना है बुलाते हैं, (संवौषट्)

२—सर्वोत्कृष्ट अतिथि के अभिनन्दन की भांति उन्हें उच्चासन पर विराजमान होने के लिए प्रार्थना करते है. (ठः ठः)

३—हे भगवन् ! आप मेरे स्वभाव भावों में एकमेक हो जाइये। (सन्निधिकरण)

४—विसर्जन में उन्हें आदर सत्कार पूर्वक विदा किया जाता है।

पुष्पेन्दु—पूजा-प्रतिष्ठा और विधि-विधानों में क्या अन्तर है ?

कुमुद—केवल संक्षेप-विस्तार का ही अन्तर है। राग, लय, ताल स्वर के माध्यम से वीतरागी तत्वज्ञान की प्राप्ति का रोचक उपाय विधान ही हैं। विधानों में पूजा प्रतिष्ठादि क्रिया-कांडों की सम्पूर्ण विधि आमूल-चूल सांगोपांग वर्णित रहती है। जब कि पूजन इन सबका लघु संस्करण मात्र है।

पुष्पेन्दु—संस्कृत पूजा करना चाहिये या भाषा रूपान्तर वाली ?

कुमुद—(१) संस्कृत की पूजन इसलिये सत्तम है कि उनके काव्यार्थों एवं भावार्थों में आचार्य एवं कवियों द्वारा आध्यात्मिक तत्व एवं मंत्रों की प्राणप्रतिष्ठा की गई है।

(२) भाषान्तर वाली पूजा इसलिये उत्तम है क्योंकि पूजा का भावार्थ भक्त की समझ में आता जाता है और पूजन करने में उपयोग जमा रहता है।

पुष्पेन्दु—हिन्दी की नई पूजन करें या पुरानी ?

कुमुद—युग-सत्य को पहिचानते हुये नई पूजन भी अधिक उपयोगी है। अधिकांश पुरानी पूजनों में जितना गुणगान अष्टद्रव्यों का है उतना आराध्य के गुणों का नहीं है। यही कारण है कि आज के बुद्धिवादी एवं तर्कवादी युग को पुरानी पूजनें रुचती नहीं हैं। क्योंकि उनमें वैज्ञा-

निकता नहीं है ।

पुष्पेन्दु—जिनकी पूजन की जाती है, ऐसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरुओं की परिभाषा शास्त्राधार पूर्वक संक्षेप में कहिये ।

कुमुद— **सच्चे देव—**

"आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥"
"क्षुत्पिपासाजरातंकजन्मांतकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥"

सच्चे-शास्त्रः—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्य, – मदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥

सच्चे गुरु—

"विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी स प्रशस्यते ॥"
(रत्नकरंड श्रावकाचार)

पुष्पेन्दु—अष्ट द्रव्यों के नाम क्या हैं ?

कुमुद—"उदकचंदनतंदुलपुष्पकैः चरुसुदीपसुधूपफलार्घ्यकैः ।"

पुष्पेन्दु—यह पूजन कहां पर करता हूं ? और किन की करता हूं ?

कुमुद—"धवलमंगलमानरवाकुलेः जिनगृहे जिननाथमहं यजे ।"

पुष्पेन्दु—जैनपूजनसंबंधी क्रियाकांड में क्या वैदिक धर्म की भी छाप है ?

कुमुद—भट्टारकीय युग की प्रधानता से हमारे पूजन-याग-यज्ञ क्रियाकांडों में आंशिक रूप से वैदिक धर्म की छाप अवश्य है। परन्तु भक्ति की सुन्दरतम व्यवस्था होवे से हमने इसे अपना लिया है। परन्तु अपना कर भी जैनधर्म के प्राण वीतरागता और अहिंसा तत्व को अक्षुण्ण अवश्य रखा है। गुण लेने में कोई हानि नहीं। इन्द्रों द्वारा जिनेन्द्र भगवान की पूजा शास्त्रोक्त विधि से की गई है। हम भी कल्पना के आधार पर उन्हीं का अनुसरण करते हैं।

पुष्पेन्दु—पूजन की पुण्यफल-प्राप्ति का कोई एक अति उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कीजिये।

कुमुद—"यदर्च्चाभावेन प्रमुदितमना दुर्दुर इह।
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः॥"

॥ इत्यलम् ॥

卐

जीवन में भक्ति की आवश्यकता

आत्मकल्याण के लिए भक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है। गृहस्थ को नित्य प्रति के ६ कार्य हैं—देव पूजा गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान। इन सब में 'दाणं पूजो मुक्खो' दान और पूजा मुख्य हैं।

आचार्य स्वामी समन्तभद्र ने अपने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में बताया है:—

देवाधिदेवचरणे परिचरणं, सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम्॥

देवाधिदेव जिनेन्द्रदेव के चरणों की पूजा सर्व प्रकार के दुःखों को नाश करने वाली है। और मनोवांछित फल को देने वाली है। और काम की पीड़ा को नाश करने वाली है। राजगृह नगर में जब भ० महावीर स्वामी का समवशरण आया तो पूर्व जन्म के स्मरण से एक मेंढक बावड़ी में से निकलकर कमल का पुष्प ले धीरे धीरे हर्ष से पुलकित हुआ वीर भगवान की पूजा के लिए चल दिया। रास्ते में राजा श्रेणिक के हाथी के पैर के नीचे आकर दब गया और स्वर्ग में देव हुआ। यह कथा पूजन के माहात्म्य को स्पष्ट बताती है।

भगवान के गुणानुवाद, चिंतन और स्तवन का अपूर्व प्रभाव है:—

मुख मयंक अवलोकि, रंक रजनीपति लाजै ।
नाम मंत्र परताप, पाप-पन्नग डर भाजै ॥
बाघ सिंह वश होहिं, विषम विषधर नहिं डंकै ।
भूत प्रेत बैताल, व्याल बैरी मन शंकै ॥
शाकिनि डाकिनि अगनि, चोर नहिं भय उपजावें ।
रोग शोक सब जाहिं, निकट नेरे नहिं आवें ॥

पंच परमेष्ठी की स्तुति, तीर्थंकरों का स्तवन, जिनेन्द्र देव का मंगलगान हमारे सभी प्रकार के संकटों को दूर करने का अमोघ साधन है ।

श्री पार्श्वदेव के पद कमल, हिये धरत निज एक मन ।
छूटैं अनादि बंधन बंधे, कौन कथा, विनशै विघन ॥
चहुँगति भ्रमत अनादि, वादि बहुकाल गमायो ।
रही सदा सुख आस, प्यास जल कहूँ न पायो ॥
सुख-करता जिनराज, आज लों हिये न आये ।
अब मुझ माथे भाग, चरन चिंतामनि पाये ॥
राखों संभाल उर बीच में, नहिं विसरों पल रंकधन ।
परमाद-चोर टालन निमित, करों पार्श्व जिन गुन कथन ॥

इसलिए गृहस्थ का कर्तव्य है कि नित्य प्रति जिनेन्द्र देव के गुणों का चिन्तवन करें ।

स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः ।
निष्ठितार्थो भवां स्तुत्य, फलं नैश्रेयसं ध्रुवं ॥

पवित्र गुणों के प्रशंसापूर्वक कथन करने को स्तुति कहते हैं । प्रसन्नबुद्धि वाला भव्य जीव स्तुति करने वाला होता है ।

जिसने समस्त पुरुषार्थ समाप्त कर दिए हैं, जो अनंतज्ञान, दर्शन, सुख और बल के भंडार हैं, वे अरहन्त देव पूजा के योग्य हैं, स्तुत्य हैं। और स्तुति का फल प्रेय सांसारिक सुख और श्रेय निर्वाण सुखस्तुति का फल है।

कोई उत्तम ज्ञानी है। निरतिचार चारित्र का पालन भी करता है। परन्तु वह वीतराग देव की सच्ची भक्ति से रहित है अर्थात् उसकी जिनदेव, जिन गुरु और जिन शास्त्र में श्रद्धा नहीं है, तो उसे मुक्ति रूपी दरवाजे का ताला खोलना अत्यंत कठिन है। उस ताले को खोलने के लिए सर्वज्ञ देव के सम्बन्ध में श्रद्धा ही ताली का कार्य करती है।

आचार्यों ने कहा है—विद्यमान गुणों की अल्पता को उल्लंघन करके जो उनके बहुत्व की कथा की जाती है, उन्हें बढ़ा चढ़ाकर कहा जाता है, उसे लोक में स्तुति कहते हैं। वह स्तुति आप में कैसे बन सकती है ? क्योंकि आपके गुण अनंत होने से पूरे तौर पर नहीं कहे जा सकते। यद्यपि आपके गुणों का कथन करना अशक्य है, फिर भी आप की पुण्य-कीर्ति का, भक्तिपूर्वक नाम का उच्चारण भी पवित्र करता है, इसलिए आपके गुणों का कुछ लेश मात्र कथन करते हैं।

स्तुतिः स्तोतुः साधो, कुशल परिणामाय स सदा।
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः॥
किमेव स्वाधीन्या जगति सुलभे श्रायस पथे।
स्तुयानत्वा विद्वान् सततमपि पूज्यं नमिजिनम्॥

स्तुति के समय स्तुत्य चाहे मौजूद हो या न हो। और फल की प्राप्ति भी चाहे सीधी उनके द्वारा होती हो या न होती

हो, परन्तु भली प्रकार की गई स्तुति कुशल परिणाम का कारण है, पुण्यवर्धक है, कर्मक्षय का कारण है। तब जगत में इस तरह स्वाधीनता से श्रेयोमार्ग सुलभ है ॥ इसलिए भगवान् की स्तुति करनी चाहिए।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी का स्वयंभू स्तोत्र, आचार्य भगवज्जिनसेन का सहस्रनाम, आचार्य मानतुंग का भक्तामर-स्तोत्र वादीभसिंह आचार्य का एकीभाव स्तोत्र, आचार्य कुमुदचंद्र का कल्याण मन्दिर, धनंजय महाकवि का विषापहार और महाकवि भूपाल का चतुर्विंशति स्तवन संस्कृत साहित्य में अपूर्व स्तोत्र हैं, जिनका नित्य प्रति पाठ करना मंगलकारी है।

हिन्दी साहित्य में पं० दौलतराम जी की सकल ज्ञेय ज्ञायक स्तुति, पं० भूधरदास जी का पार्श्वनाथ स्तवन, द्यानतराय की प्रारम्भिक सरल स्तुति, पं० वृन्दावनदास का हो दीनबन्धु श्रीपति करुणानिधान की स्तुति अति सुन्दर और आकर्षक है। पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार की मेरी भावना रोचक प्रार्थना है।

जिन-आगम में नव देवताओं की पूजा का महत्व है। अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा, जिन मन्दिर, ये नवदेव रत्नत्रय की अर्चना के कारण हैं—

यजेत देवं सेवेत, गुरूपात्राणि तर्पयेत्।
कर्मधर्मयशस्यं च यथा-लोकं सदा चरेत् ॥

पाक्षिक श्रावक अर्हन्तदेव की प्रतिदिन पूजन करे। गुरुओं की उपासना करे और पात्रों को संतुष्ट करे। और लोक-व्यवहार के अनुसार प्राप्त के उपदेश के अनुसार धर्म तथा यश

से युक्त कर्तव्य-कर्मों को सदैव प्रतिदिन करे। सम्यग्दर्शन से विभूषित अर्हन्त भगवान की पूजा करने वाले को 'मैं पहले मैं पहले' इस प्रकार से पूजा और ऐश्वर्यादि विभूतियां आश्रय करती हैं। तब व्रत से उस शोभायमान अर्हन्त भगवान की पूजा करने वाले को तो फिर कहना ही क्या है ? अर्थात् उसको तो विशेष रूप से वे संपत्तियां आश्रय करती हैं।

अर्हन्त भगवान के दोनों चरण-कमलों में विधिपूर्वक चढ़ाई गई जल की धार पूजा करने वाले के पापों की शान्ति के लिए होती है। उत्तम चन्दन शरीर की सुगन्धि के लिए होता है। अखंड तन्दुल विभूति के होने के लिए; उसकी निरन्तर प्रवृत्ति बनी रहने के लिए होते हैं। पुष्पमाला स्वर्ग में उत्पन्न होने वाले मन्दार वृक्ष की माला की प्राप्ति के लिए होती है। नैवेद्य लक्ष्मी के स्वामी के लिए, दीप कान्ति के लिए, धूप संसार के नेत्रों के उत्सव के लिए होती है। फल-मन चाही वस्तु के लिए और अर्घ विशेष मान प्रतिष्ठा और कर्मक्षय का कारण है।

न पूजयाऽर्थस्त्वपि वीतराग, न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः, पुनाति चित्तं दुरितां जनेभ्यः॥

हे भगवन् ! पूजा वन्दना से आपका कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि आप वीतरागी हैं। आप पूजा वन्दना से प्रसन्न नहीं होते। इसी प्रकार निन्दा से भी कोई प्रयोजन नहीं। क्योंकि आपकी आत्मा से बैर-भाव निकल गया है। आपके पुण्य गुणों का स्मरण हमारे चित्त को पाप-मलों से पवित्र करता है।

आपकी पूजा करते समय प्राणी के जो सावद्य लेश होता है, आरम्भादिक के द्वारा जो लेश मात्र पाप का आरंभ होता है,

यह भावपूवक की गई पूजा से बहु पुण्यराशि में दोष का कारण नहीं बनाती, विष की एक कणिका शीतल तथा कल्याणकारी जल से भरे हुए समुद्र को दूषित नहीं करती ।

भगवान की पूजा का मुख्य उद्देश्य जन्म, जरा और मृत्यु का नाश है । सांसारिक विभूतियां तो अनायास प्राप्त हो जाती हैं । भक्त प्रार्थना करता है—

अनुभव माणिक पारखी, जोहरि आप जिनेन्द्र ।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनंद ॥

पं० दौलतराम जी प्रार्थना करते हैं: —

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय ।
मैं रहूँ आप में आप लीन, सो करहु होऊँ जो निजाधीन ॥
मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश ।
मुझ कारज के काण सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप ॥

भगवान की भक्ति में गद्गद् होकर पं० वृन्दावनदास जी कहते हैं: —

चिन्तामनि पारस कल्पतरू, सुखदायक ये परवाना है ।
तव दासन के सब दास यही, हमरे मन में ठहराना है ॥
तुम भक्तन को सुर इन्द्रपती, फिर चक्रेश्वर पद पाना है ।
क्या बात कहीं विस्तार बढ़ै, वे पावें मुक्ति ठिकाना है ॥
गति चार चौरासी लाख विषें, चिन्मूरति मेरा भटका है ।
हो दीनबन्धु करुणानिधान, अबलौं न मिटा यह खटका है ॥
सब योग मिला शिव-साधन का, तब विघन कर्म ने हटका है ।
तुम विघन हमारे दूर करो, सुख देहु निराकुल घट का है ॥

भगवान की भक्ति से किस प्रकार फल की प्राप्ति होती है:—

गज ग्राह ग्रसित उद्धार किया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है।
ज्यों सागर गोपद रूप किया, मैना का संकट टारा है॥
ज्यों सूली तें सिंह भक्त की, बेढ़ी को काट बिड़ारा है।
त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है॥

इसी प्रकार—

पावक प्रचंड कुण्ड में उमंड जब रहा।
सीता से शपथ लेने को, तब राम ने कहा॥
तुम ध्यान धार जानकी, पग धारती तहां।
तत्काल ही सर स्वच्छ हुआ, कमल लह-लहा॥
हो दीनबन्धु श्रीपती, करुणानिधान जी।
यह मेरी व्यथा क्यों न हरो, बार क्या लगी॥

इसीलिए भक्ति-भावना से प्रेरित होकर यह—

पारस जिनेन्द्र गीताञ्जलि

स्वनामधन्य सोनीपत निवासी—

सेठ पारसदास जी श्रीपाल जी ने

छपवाकर भक्ति-भावना जागृत करने के लिए प्रस्तुत की है। आशा है आप सब इससे लाभ उठाकर आत्मा को समुज्वल बनायेंगे।

जिनपूजा का रहस्य

देवाधिदेव श्री जिनेन्द्र देव के दर्शन सभी प्रकार के सुख के साधन हैं। देव-दर्शन लक्ष्मी की लीला का स्थान है, बड़े वंश में उत्पन्न होने का साधन है। और कीर्ति को उत्पन्न करने वाला है। सरस्वती जिनके मुख मण्डल पर सदैव नृत्य करती है। उन्हें विजयश्री की सदैव प्राप्ति होती है। सभी प्रकार के महोत्सव जहां होते रहते हैं। जो प्रतिदिन जिनेन्द्र देव के दर्शन पूजन करता है उसकी सभी मनोकामनायें पूरी होती हैं।

श्रावक के ६ कर्त्तव्य हैं:—

देवपूजा गुरूपास्तिः, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने॥

देव पूजा, भगवान का दर्शन, अभिषेक, पूजन, गुरु पूजा, मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, त्यागी, साधु, संयमी की सेवा, स्वाध्याय (शास्त्र पढ़ना), संयम, (मन और इन्द्रियों को वश में करना), तप, इच्छाओं को रोकना, त्याग, दान देना ये श्रावक ६ के कर्त्तव्य हैं। उनमें दो मुख्य हैं—दान देना और पूजा करना।

३ प्रकार के भाव

जीवों के भाव तीन प्रकार के होते हैं-अशुभ, शुभ और शुद्ध। पांच पाप, चार कषाय, सप्त व्यसन और आर्त रौद्र ध्यान के कारण जीवों के भाव अशुभ होते हैं। जिसका फल नरक, निगोद, तिर्यंच गति है।

शुभ भाव पंच व्रत, दश धर्म, ६ आवश्यक और धर्मकाम से हैं, जिसका फल मनुष्य और देवगति है।

शुद्ध भाव रागद्वेष के त्याग से होते हैं, जिसका फल निर्वाण की प्राप्ति है।

मूर्तिपूजा का रहस्य

जैसे गर्भिणी स्त्री यदि सुन्दर, शिक्षित, वीर पुरुषों के चित्रों को देखे तो उसके गर्भस्थ बालक पर सच्चरित्रता आदि गुणों का समावेश हो जाता है। महाभारत की कथा में एकलव्य द्रोणाचार्य के चित्र को देखकर धनुर्विद्या में पारंगत हो गया था। उसी प्रकार वीतराग शांत धीर पद्मासन या खड्गासन नाशाग्रदृष्टि ध्यानस्थ मूर्ति के दर्शन कर चित्त में शांति का उदय होता है। मूर्ति जड़ हैं, परन्तु हम मूर्तिमान (आत्मा) की पूजा करते हैं। बाहुबलि, सुकुमाल, गजकुमार, सुकौशल जैसे दिव्य पुरुषों ने मूर्ति के आदर्श रूप को समझ कर ध्यान किया और सिद्धि पाई।

संसार के प्रायः समस्त धर्मों का अभीष्ट उद्देश्य सांसारिक सुख, राज्य, धन, स्वर्ग आदि प्राप्त करना है। किन्तु जैन धर्म का उद्देश्य सांसारिक विभूतियों को छोड़कर वीतराग पद प्राप्त करना है। जो अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न नहीं होते, निंदा करने पर अप्रसन्न नहीं होते। अर्हन्त भगवान की पूजा, दर्शन, उपासना करने से उपासना करने वालों को उनकी कोई कृपा प्राप्त नहीं होती, किन्तु वीतराग की पूजा उपासना करते समय पुजारी के मन, वचन, काय में सद्भाव होते हैं, शुभ राग होते हैं। इस कारण उस भक्त पुजारी को अनायास वीतराग देव की पूजा सुख-शांति प्रदान करती है। प्रसन्न मन से पूजा करने वाले भक्त के लिए भगवान प्रसन्न ही दिखाई देते हैं।

मन्दिर धर्म का किला है

मन्दिर समवशरण का रूप है। समवशरण का सौन्दर्य दिव्य रचना का परिणाम है। अतः वहां पर जिस तरह रत्न स्वर्णमय कोट, खाई, मानस्तम्भ, सिंहासन, चंवर, छत्र, भामण्डल आदि विभूति होती हैं, वैसी ही विभूति वाली रचना मनुष्यों द्वारा वनाये गये मन्दिर में आ नहीं सकती। किन्तु फिर भी जितनी सुन्दरता लाई जा सकती है, मन्दिर में लाई जाती है। मन्दिर में चार मुख्य वातें होती हैं—वीतराग भगवान के दर्शन, ध्यान का साधन, स्वाध्याय-शाला, जहां वैठकर स्वाध्याय कर सकें और मन्दिर के वड़े-वड़े चौक जहाँ बैठकर पंचायत (सभा) की जा सके। और सामाजिक उन्नति के सम्वन्ध में विचार कर सकें।

प्रतिमा का लक्षण

प्रतिमा में सौम्यता, शान्ति, प्रसन्नता, निर्भयता की छटा होनी चाहिए। वक्रता, क्रूरता, अभद्रता की झलक प्रतिमा में नहीं होनी चाहिए। किसी अस्त्र-शस्त्र, वस्त्राभूपण आदि का चिह्न नहीं होना चाहिए।

जैसे किसी राज्यपुत्र का राज्याभिषेक न हो, राजगद्दी न मिले तव तक वह राजा नहीं माना जाता, उसी प्रकार विना प्रतिष्ठा के मूर्ति भी पूज्य नहीं मानी जाती। वेदी, चरण-पादुका, मन्दिर की भी प्रतिष्ठा होती है।

पंच परमेष्ठी

आदरणीय-पूज्य व्यक्तियों में सबसे अधिक पूज्य पांच परमेष्ठी होते हैं। (परमपदे तिष्ठति इति परमेष्ठी) उनके नाम अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु हैं। इन पांचों परमेष्ठियों में आचार्य, उपाध्याय और साधु गुरु कहलाते हैं।

अर्हन्त और सिद्ध परमेष्ठी परमात्मा या देव कहलाते हैं। जिन्होंने चार कर्मों को नाश कर दिया है। वे अपनी जीवनमुक्त कैवल्य अवस्था में अपने दिव्य उपदेश द्वारा सांसारिक प्राणियों को सुमार्ग दिखाते हैं। अतः संसार के वे अधिक हितकारक हैं। इसी प्रकार लोककल्याण की दृष्टि से उनका पद सर्वोच्च हैं। जिन्होंने आठों कर्मों का नाश कर दिया है वे सिद्ध परमेष्ठी हैं। 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर हम उनका स्मरण करते हैं। सर्व साधारण संसारी जीव आत्मा कहलाते हैं। आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु ये तीन परमेष्ठी महात्मा महत्वशाली आत्मा हैं और अरहन्त सिद्ध ये दो परमेष्ठी परमात्मा सबमें उच्च आत्मा हैं।

यद्यपि देवगढ़ आदि तीर्थस्थानों पर आचार्य, उपाध्याय, साधु की मूर्तियां पाषाणों में उकेरी हुई भी पाई जाती हैं। परन्तु अधिकतर तीनों परमेष्ठियों के चरण चिह्न ही बनाकर पूजे जाते हैं।

आचार्य, उपाध्याय, साधु की प्रत्यक्ष में सेवा करना, नमस्कार, चरण छूना, उनके अंग उपांग दबाना, विधिपूर्वक आहार कराना,

अष्टद्रव्य से पूजा करना, स्तुति पढ़ना आदि गुरु पूजन है। हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, पंचांग घुटने टेक कर तथा अष्टांग सामने लेटकर नमस्कार करना, प्रदक्षिणा देना, स्तुति पढ़ना भी पूजा ही है।

मन्दिर में आने का ढंग

प्रातः सूर्योदय से पहले उठकर, हाथ पैर धोकर सामायिक करनी चाहिए, फिर २७ वार णमोकार मंत्र पढ़ना चाहिए। उसके पश्चात् शौच से निपट कर दन्तौन करके मुख धोना चाहिए। स्नान करने के पश्चात् धुली धोती दुपट्टा पहनकर मन्दिर में जाना चाहिए और पूजन करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति पूजन न करना चाहे तो उसे भी नहा धोकर शुद्ध वस्त्र पहनकर हाथ में लोंग, चावल आदि लेकर वड़ी भक्ति और विनय से मन्दिर जाना चाहिए। और अपने आपको धन्य मानना चाहिए।

दर्शनार्थी को मन्दिर जी के भवन में प्रवेश करते समय "ॐ जय जय जय, निःसहि,निःसहि,निःसहि" कहना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई मनुष्य देव दर्शन कर रहा है तो निःसहि शव्द सुनकर एक ओर हट जावे और दूसरा आशय यह है कि मैं मन्दिर जी में गृह सम्वन्धी सभी चिन्ताओं को दूर करके प्रवेश कर रहा हूँ।

तदनन्तर भगवान के सामने पहुंचकर वहुत विनय से हाथ जोड़कर तीन आवर्त जोड़े हुए हाथों को गोल रूप से घुमाना सर झुकाकर नमस्कार करना और णमोकार मन्त्र पढ़ना चाहिये। तथा—

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवल मंगलगान रवाकुले, जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥

यह पद्य पढ़कर अथवा अन्य पद्य पढ़कर भगवान के सम्मुख अर्घ चढ़ावे । मन्दिर समवशरण की नकल है । समवशरण में अर्हन्त भगवान का मुख चारों ओर दिखता है । और वेदी के चारों ओर परिक्रमा देने के लिए खुला हुआ स्थान होता है । अतः दर्शनार्थी समवशरण में चतुर्मुख भगवान का वेदी के चारों ओर घूमकर दर्शन करता है ।

तीन बार प्रदक्षिणा देने का अभिप्राय मन, वचन, काय से तीनों योगों की विनय को प्रकट करता है ।

प्रदक्षिणा देने के पश्चात् अन्य वेदियां हों तो उनके दर्शन करे । दर्शन कर लेने के बाद भगवान के अभिषेक के जल (गन्धोदक) को मस्तक, हृदय और आँखों पर लगावे ।

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पापनाशकम् ।
जिनगन्धोदकं वंदे, अष्टकर्म-विनाशकम् ॥

अथवा

निर्मल से निर्मल अती, अघनाशक सुख सीर ।
वंदू जिन अभिषेक कृत, यह गंधोदक नीर ॥

तीर्थङ्कर देव का शरीर सुगन्धित होता है । अतः उनके अभिषेक का जल भी सुगन्धित होता है । इसलिए अभिषेक के जल को गन्धोदक कहते हैं ।

भगवान के अभिषेक का उद्देश्य–जिस प्रकार इन्द्र ने १००८ कलशों से भगवान का अभिषेक करके जन्म कल्याणक का उत्सव मनाया, उसी प्रकार मैं आज भगवान का अभिषेक करता हूं ।

तदनन्तर जहां शास्त्र विराजमान हों वहां पर बहुत विनय से शास्त्रों को नमस्कार करें और स्वाध्याय करे ।

卐

सामायिक की विधि

प्रथम पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके तीन वार ॐ नमः सिद्धेभ्यः कहे । फिर नौ वार णमोकार मन्त्र पढ़कर पंचांग नमस्कार करें। फिर उसी दिशा में खड़े होकर नौ वार णमोकार मंत्र पढ़े, फिर तीन आवर्त और एक शिरोनति करे फिर दांये हाथ की ओर घूमकर तीनों दिशाओं में नौ नौ वार णमोकार मन्त्र पढ़कर नमस्कार करे। जिस दिशा में खड़े थे उसी दिशा में बैठकर पद्मासन से १०८ वार णमोकार मन्त्र पढ़े । सामायिक पाठ बारह भावनाओं का चिन्तवन करे । फिर उसी दिशा में खड़े होकर ९ वार णमोकार मन्त्र पढ़कर नमस्कार कर सामायिक पूरी करे।

यदि अधिक समय न हो तो णमोकार मन्त्र की जाप प्रातः और सायंकाल अवश्य करे । पूजा दो प्रकार की है—भाव पूजा

और द्रव्य पूजा । मन में भगवान के गुणों का स्तवन भाव पूजा है और अष्ट द्रव्यों से पूजा द्रव्य पूजा है।

पूजा के पांच अंग होते हैं । आह्वानन–पूज्य देव आदि को अत्र अवतर अवतर संवौषट् कहते हुये बुलाना । स्थापना–पूज्य जिसकी पूजा करनी है उसको अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः कहते हुए स्थापना करनी । सन्निधिकरण–अत्र मम सन्निहितो भव भव कहते हुए पूज्य को अपने हृदय के निकट करना ये। तीनों क्रियायें ठौना में पुष्प क्षेपण करते हुए की जाती हैं ।

पूजन–आठों द्रव्य चढ़ाते हुए पूजा करनी । विसर्जन—पूजा कर चुकने के पश्चात् शांति पाठ पढ़कर ज्ञानतोऽ ज्ञानतो वापि विसर्जन पाठ पढ़ते हुए पूजन विधि समाप्त करना।

विसर्जन के पश्चात् भगवान की स्तुति पढ़नी चाहिए । अन्य वेदियों पर अर्घ चढ़ना चाहिए । अन्त में आशिका ले । जो ठोड़े पर पुष्प चढ़ाये हैं उनको दोनों हाथ लगाकर बोले—

श्री जिनवर की आशिका, लीजे शीश चढ़ाय ।
भव भव के पातक कटें, विघन दूर हो जाय ॥

यह पढ़कर उन पुष्पों को भक्ति से और चावलों को किसी पवित्र स्थान पर रख दे अथवा धूपदान में रख देवे, जिससे उनका अविनय न हो ।

तत्पश्चात्

अभिषेक के पश्चात् विनयपाठ, स्वस्ति मंगल विधान, देव शास्त्र, गुरुपूजा, बीस तीर्थङ्करों की पूजा या अर्घ, कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयों का अर्घ, कायोत्सर्ग, सिद्ध भगवान की पूजा, चौबीस महाराज की पूजन के पश्चात् मूल नायक प्रतिमा जी की पूजन करे। समुच्चय अर्घ, शाँति पाठ, विसर्जन पढ़े। तत्पश्चात् कोई एक भजन पढ़े। आवश्यक सुविधानुसार पूजन कम या अधिक करे। गृहस्थ के लिए 'दाणं पूजा मुक्खो' दान और पूजा मुख्य कर्तव्य है।

* श्री *

पारस

जिनेन्द्र-गीताञ्जलि

अविस्मरणीय

अनादिनिधन जैन महामन्त्र

णमो अरिहंताणं,

णमो सिद्धाणं

णमो आइरियाणं,

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

मन्त्रं संसारसारं, त्रिजगदनुपमं सर्वपापारिमन्त्रम्।
संसारोच्छेदमन्त्रं, विषयविषहरं, कर्मनिर्मूलमन्त्रम् ॥
मन्त्रं सिद्धिप्रदानं, शिवसुखजननं, केवलज्ञानमन्त्रम्।
मन्त्रं श्रीजैनमन्त्रं, जप जपिजपितं, जन्मनिर्वाणमन्त्रम् ॥

मङ्गलाचरणम्

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुंदकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥१॥

नमः स्यादर्हद्भ्यो विततगुण-राड्भ्यस्त्रिभुवने।
नमः स्यात् सिद्धेभ्यो, विततगुणवद्भ्यः सविनयम् ॥
नमो ह्याचार्येभ्यः, सुरगुरुनिकारो भवति यैः।
उपाध्यायेभ्योऽथ, प्रवरमतिधृद्भ्योऽस्तु च नमः ॥२॥

नमः स्यात्साधुभ्यो, जगदुदधि-नौभ्यः सुरुचितः।
इदं तत्वं मन्त्रं, पठति शुभकार्ये यदि जनः।
असारे संसारे, तव पदयुगध्यान-निरतः।
सुसिद्धः सम्पन्नः, स हि भवति दीर्घायुररुजः ॥३॥

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वरा।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः ॥
श्रीसिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः।
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥४॥

सुप्रभात-स्तोत्रम्

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिल-ज्ञानप्रकाशोत्सवे ।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः, पूजाद्भुतं तद्भवैः,
सङ्गीतस्तुतिमङ्गलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ॥१॥

श्रीमन्नतामरकिरीट-मणिप्रभाभि-
रालीढपादयुग ! दुर्धरकर्मदूर !
श्रीनाभिनन्दन ! जिनाजित ! सम्भवाख्य !,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥२॥

छत्रत्रयप्रचलचामर—वीज्यमान !,
देवाभिनन्दन ! मुने ! सुमते ! जिनेन्द्र !
पद्मप्रभारुणमणिद्युतिभासुराङ्ग !,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥३॥

अर्हन् सुपार्श्व ! कदलीदलवर्णगात्र !
प्रालेयतारगिरि मौक्तिकवर्णगौर !
चन्द्रप्रभ ! स्फटिक-पाण्डुर-पुष्पदन्त !
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं म सुमप्रभातम् ॥४॥

सन्तप्तकाञ्चनरुचे ! जिन ! शीतलाख्य !
श्रेयान्विनष्टदुरिताष्ट—कलङ्कपङ्क !
बन्धूकबन्धुररुचे ! जिन ! वासुपूज्य !,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥५॥

उद्दण्डदर्पकरिपो ! विमलामलाङ्ग !

स्थेमन्ननन्तजिदनन्त-सुखाम्बुराशे !

दुष्कर्मकल्मषविवर्जित धर्मनाथ !

त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥६॥

देवामरीकुसुमसन्निभ शान्तिनाथ !

कुन्थो ! दयागुणविभूषणभूषिताङ्ग !

देवाधिदेव ! भगवन्नर ! तीर्थनाथ !

त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥७॥

यन्मोहमल्लमदभञ्जन ! मल्लिनाथ !

क्षेमङ्करावितथशासन ! सुव्रताख्य !

यत्सम्पदा प्रशमितो नमिनामधेय !

त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥८॥

तापिच्छगुच्छरुचिरोज्ज्वल नेमिनाथ !

घोरोपसर्गविजयिन् ! जिन पार्श्वनाथ !

स्याद्वादसूक्तिमणिदर्पण वर्धमान !

त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥९॥

प्रालेयनीलहरितारुण-पीतभासं,

यन्मूर्तिमव्ययसुखावसथं मुनीन्द्राः !

ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां,

त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥१०॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, माङ्गल्यं परिकीर्तितम्
चतुर्विंशतितीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने ॥११॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम् ।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने दिने ॥१२॥

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः ।
येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्वसुखावहम् १३

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम् ।
अज्ञानतिमिरान्धानां, नित्यमस्तमितो रविः ॥१४॥

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः ।
येन कर्माटवी दग्धा, शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥१५॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमङ्गलम् ।
त्रैलोक्यहितकर्तॄणां, जिनानामेव शासनम् ॥१६॥

॥ इति सुप्रभातस्तोत्रम् ॥

दृष्टाष्टकस्तोत्रम् (श्रीसकलचन्द्रयति)

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि,
भव्यात्मनां विभव-सम्भव--भूरिहेतुः ।
दुग्धाब्धि-फेन-धवलोज्ज्वलकूटकोटी-
नद्ध-ध्वज-प्रकर-राजि--विराजमानम् ॥१॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी -
धामर्द्धिवर्द्धित--महामुनि--सेव्यमानम् ।
विद्याधरामर -वधूजन-मुक्तदिव्य -
पुष्पाञ्जलि-प्रकर-शोभित-भूमिभागम् ॥२॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवास -
विख्यात-नाक गणिका-गण-गीयमानम् ।
नानामणि-प्रचय-भासुर-रश्मिजाल -
व्यालीढ- निर्मल--विशाल--गवाक्षजालम् ॥३॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुर-सिद्ध-यक्ष -
गन्धर्व-किन्नर करार्पित- वेणु- वीणा ।
सङ्गीत-मिश्रित नामस्कृत -धीरनादै -
रापूरिताम्बर --तलोरु--दिगन्तरालम् ॥४॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोल-
मालाकुलालि-ललितालक-विभ्रमाणम् ।
माधुर्यवाद्यलयनृत्य - विलासिनीनां,
लीला-चलद्वलय-नूपुर- नाद-रम्यम् ॥५॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणि-रत्न हेम —
सारोज्ज्वलैः कलश-चामर--दर्पणाद्यैः ।
सन्मङ्गलैः सततमष्टशत-प्रभेदै -
र्विभ्राजितं विमल-मौक्तिक-दामशोभम् ॥६॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारु -
कर्पूर-चन्दन-तरुष्क-सुगन्धिधूपैः ।
मेघायमानगगने पवनाभिघात -
चञ्चच्चलद्विमल-केतन-तुङ्ग शालम् ७।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनंधवलातपत्र -
च्छाया-निमग्न-तनु- यक्षकुमार-वृन्दैः ।
दोधूयमान सित-चामर-पङ्क्तिभास -
भामण्डल-द्युतियुत-प्रतिमाभिरामम् ॥८॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकार -
पुष्पोपहार-रमणीय-सुरत्नभूमिः ।
नित्यं वसन्ततिलकश्रियमादधानं,
सन्मङ्गलं 'सकलचन्द्र' मुनीन्द्र-वन्द्यम् ९॥

दृष्टं मयाद्य मणिकाञ्चन-चित्र-तुङ्ग—
सिंहासनादि-जिनबिम्ब-विभूतियुक्तम् ।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे,
सन्मङ्गलं 'सकलचन्द्र' मुनीन्द्र-वन्द्यम् ॥१०॥

इति दृष्टाष्टकस्तोत्रम् ।

अद्याष्टकस्तोत्रम्

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम ।
त्वामद्राक्षं यतो देव, हेतुमक्षयसम्पदः ॥१॥

अद्य संसार – गम्भीर – पारावारः सुदुस्तरः ।
सुतरोऽयं क्षणेनैव, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥२॥

अद्य मे क्षालितं गात्रं, नेत्रे च विमले कृते ।
स्नातोऽहं धर्म-तीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ।३॥

अद्य मे सफलं जन्म, प्रशस्तं सर्वमङ्गलम् ।
संसारार्णव-तीर्णोऽहं, जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् ।४॥

अद्य कर्माष्टक-ज्वालं विधूतं सकषायकम् ।
दुर्गते — र्विनिवृत्तोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥५॥

अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे, शुभाश्चैकादश स्थिताः ।
नष्टानि विघ्न-जालानि जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् ॥६॥

अद्य नष्टो महाबन्धः, कर्मणां दुःखदायकः ।
सुख सङ्ग-समापन्नो, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥७॥

अद्य कर्माष्टकं नष्टं, दुःखोत्पादनकारकम् ।
सुखाम्भोधि-निमग्नोऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥८॥

अद्य मिथ्यान्धकारस्य, हन्ता ज्ञानदिवाकरः ।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् ॥९॥

अद्याहं सुकृती भूतो, निर्धूताशेषकल्मषः ।
भुवन-त्रय पूज्योऽहं, जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् ॥१०॥

अद्याष्टक पठेद्यस्तु, गुणानंदित—मानसः ।
तस्य सर्वार्थसंसिद्धिः, जिनेद्र ! तव दर्शनात् ॥११॥

देव-दर्शन-स्तोत्रम्

दर्शनं देव-देवस्य, दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥ १ ॥

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च ।
न हि सन्तिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥ २ ॥

वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मरागसमप्रभम् ।
जन्म-जन्म कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥ ३ ॥

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्तनाशनम् ।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थप्रकाशनम् ॥ ४ ॥

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम् ।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः ॥ ५ ॥

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय ।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय॥६॥

चिदानन्दैकरूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥ ७ ॥

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ८ ॥

न हि त्राता न हि त्राता न हि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ ९ ॥

जिने भक्तिः जिने भक्तिः, जिने भक्तिर्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१०॥

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, माऽभूवञ्चक्रवर्त्यपि ।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥११॥

जन्म जन्म कृतं पापं, जन्मकोट्यामुपार्जितं ।
जन्ममृत्युजरारोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ॥१२॥

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देव ! त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोकतिलक ! प्रतिभासते मे,
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ॥१३॥

जिनेन्द्र-वन्दना

वन्दों श्री अरिहन्त को, वन्दों सिद्ध महान।
आचारज उवझाय मुनि, वन्दों करके ध्यान॥

जय वीतराग सर्वज्ञदेव, तुमही मंगलकर देवदेव।
तुम्ही अघहर्ता पूज्य देव, तुमरो शरणं सुखहेतु देव॥

तुम अक्षजीत तुम कामजीत, तुम द्वेषजीत तुम लोभजीत।
तुम रागजीत तुम कर्मजीत, तुम मोहजीत तुम मानजीत॥

तुम जगतदेव तुम सत्यध्यान, तुम ही निर्मल गुण के निधान।
तुम समदर्शी समता अधीश, भवि भक्ति करें निज नाय शीश॥

तुमही जगपावन हो उदार, तुमही दाता निज ज्ञानधार।
तुमही भवभ्रमण विनाशकार, तुमही भवदधि के पारकार॥

तुम हो प्रसन्न तुम नहिं निराश, तो भी भक्तन की पूर्ण आश।
यह महिमा कैसे कही जाय, तुम ध्यानगम्य योगी सहाय॥

वन्दे तव पद हम बारबार, यह कार्य होय निर्विघ्न पार।
अनुपम यह कार्य करन महान, उसगे हम तुमरी शरण आन॥

सब कार्य होय सुखशांतिकार, होवे मंगल दिनदिन उदार।
राजा परजा सब सुखी होय, जिनधर्म तनो उद्योत होय॥

हम ज्ञानहीन विधितें अजान, तव भक्ति करें हिय गुण पिछान।
जो भूलें चूकें क्षमो नाथ, विनती करते हम जोड़ हाथ॥

पञ्च मङ्गल–पाठ

(कविवर रूपचन्द जी)

पणिविवि पंच परमगुरु, गुरु जिनसासनो ।
सकलसिद्धिदातार सु विघन विनासनो ॥
सारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकासनो ।
मंगल कर चऊ संघहिं, पाप पणासनो ॥

पापहि प्रणासन गुणहिं-गरुआ, दोष अष्टादश-रहिउ ।
धरि ध्यान करम विनासि केवल-ज्ञान अविचल जिन लहिउ ।
प्रभु पञ्चकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं ।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मङ्गल गावहीं ॥१

गर्भ कल्याणक

जाके गरभकल्याणक, धनपति आइयो ।
अवधिज्ञान-परवान सु-इन्द्र पठाइयो ॥
रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी ।
कनकरयण-मणिमंडित, मंदिर अति बनी ॥

अति बनी पौरि पगार परिखा, सु-वन उपवन सोहये ।
नर नारि सुन्दर चतुर भेख, सु-देख जन-मन मोहये ॥
तहँ जनकगृह छह मास प्रथमहिं, रतन-धारा बरसियो ।
पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा, करहिं सबविधि हरसियो ॥२

सुरकुंजरसम कुंजर धवल धुरंधरो।
केहरि-केशर-शोभित नख-शिख-सुन्दरो ॥
कमला-कलस-न्हवन, दुइ दाम सुहावनी।
रवि-ससि-मंडल मधुर, मीन-जुग पावनी ॥

पावनि कनक-घट-जुगम पूरन कमल कलित सरोवरो।
कल्लोल माला कुलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो ॥
रमणीक अमर-विमान फणिपति, भवन रवि-छवि छाजई।
रुचि रतन-रासि दिपन्त दहन, सु-तेजपुंज विराजई ॥३॥

ये सखि सोलह सुपने, सूती सयन हीं।
देखे माय मनोहर पच्छिम रयन हीं ॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकासियो।
त्रिभुवनपति सुत होसी फल तिंह भासियो ॥

भासियो फल तिहिं चिंत दंपति परम आनन्दित भये।
छहमास परि नवमास पुनि तहँ, रैन दिन सुखसों गये।
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सु देव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥४॥

॥ इति गर्भकल्याणकम् ॥

जन्म-कल्याणक

मति–श्रुत–अवधि विराजित, जिन जब जनमियो।
तिहूँ लोक भयो छोभित, सुरगन भरमियो॥
कल्पवासि – घर घन्ट अनाहद बज्जिया।
जोतिषि — घर हरिनाद, सहज गल–गज्जिया॥

गज्जिया सहजहिं सङ्ख भावन, भुवन सबद सुहावने।
विन्तर-निलय पटु पटह बज्जहिं, कहत महिमा क्यों बने॥
कम्पित सुरासन अवधिबल जिन, जनम निहचै जानियो।
धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो॥५

जोजन लाख गयन्द, वदन–सौ निरमये।
वदन वदन वसु दन्त; दन्त सर संठये॥
सर–सर सौ पनवीस, कमलिनी छाजहीं।
कमलिनि-कमलिनि कमल पचीस विराजहीं॥

राजहीं कमलिनि कमलऽठोत्तर, सौ मनोहर दल बने।
दल–दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने॥
मणि कनक किंकिणि वर विचित्र, सु अमर मंडप सोहये।
घन घन्ट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये॥६

तिहिं करि हरि चढ़ि आयउ, सुर-परिवारियो।
पुरिहिं प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो॥
गुपत जाय जिन जननिहिं, सुख-निद्रा रची।
मायामय सिसु राखि तौ, जिन आन्यो सची॥
आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपित न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरिने, सहस लोचन पूजिये॥
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इन्द्र, उछङ्ग धरि प्रभु लीनऊ।
ईसान इन्द्र सु चन्द्र-छवि सिर, छत्र प्रभु के दीनऊ॥७

सनतकुमार महेन्द्र, चमर दुइ ढारहीं।
सेस सक्र जयकार, सबद उच्चारहीं॥
उच्छव-सहित चतुरविध, सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानवै, गगन उलँघि गये॥
लँघि गये सुरगिर जहां पांडुक, वन विचित्र विराजहीं।
पांडुक-शिला तहँ अर्द्ध चन्द्र, समान मणि-छवि छाजहीं॥
जोजन पचास विशाल दुगुणा-याम बसु ऊँची गनी।
वर अष्ट-मङ्गल कनक-कलसनि, सिंहपीठ सुहावनी॥८

रचि मणिमंडप सोभित, मध्य सिंहासनो।
थाप्यो पूरब-मुख तहँ, प्रभु कमलासनो॥
बाजहिं ताल मृदङ्ग, वेणु वीणा घने।
दुन्दुभि प्रमुख मधुर धुनि अवर जु बाजने॥

बाजने बाजहिं सची सब मिलि, धवल मंगल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुराङ्गना सब, देव कौतुक धावहीं॥
भरि छीरसागर-जल, जु हाथहिं हाथ सुरगिरि ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ईशान इन्द्र सु, कलस ले प्रभु न्हावहीं॥९॥

वदन-उदर अवगाह, कलसगत जानिये।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये॥
सहस-अठोतर कलसा, प्रभु के सिर ढरइँ।
पुनि सिंगार प्रमुख आचार सबै करइँ।

करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहिं दये।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति आप सुरलोकहिं गये॥
जनमाभिषेक महन्त महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मङ्गल गावहीं॥१०॥

॥ इति जन्मकल्याणकम् ॥

जिनेन्द्रस्नपनविधि (अभिषेक-पाठ)

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम् ।
श्रीमूलसङ्घ-सुदृशां सुकृतैकहेतुः,
जैनेन्द्र यज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥

इस श्लोक को पढ़कर श्री जिनेन्द्र के चरणों के अग्रभाग में पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे। तदुपरान्त २७ स्वासों में नौ बार नीचे लिखे महामंत्र की जाप जपे—

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं ।

एसो पंच णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥

(नमस्कार-विधि)

विज्ञानं विमलं यस्य, भासते विश्वगोचरं ।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय, सुरेन्द्राभ्यर्चिताङ्घ्रये ।
मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्या, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलं

इन श्लोकों को पढ़कर दोनों हाथों को जोड़कर श्री जिनेन्द्र देव को नमस्कार करना चाहिये ।

(पुष्पांजलि–क्षेपण–विधि)

श्रीमन्नतामरशिरस्तटरत्नदीप्ती –
तोये विभासिचरणाम्बुजयुग्ममीशं ।
अर्हन्तमुन्नतपद–प्रदमाभिनम्य,
त्वन्मूर्तिपूद्यदभिषेक-विधिं करिष्ये ॥

इस श्लोक को पढ़कर श्री जिनेन्द्र के चरणों के अग्रभाग में पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे ।

(यज्ञोपवीत धारण विधि)

श्रीमन्मंदर-सुन्दरे शुचिजलैर्धौते सदर्भाक्षते ।
पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितं त्वत्पाद-पद्मस्रजा ॥
इन्द्रोऽहं निज – भूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे ।
मुद्रा-कङ्कण–शेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ॥

ॐ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतायाहं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीत दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा । ॐ ह्रीं स्रग्धारणं च करोमि ।

ऊपर लिखा श्लोक पढ़ने के बाद मंत्रोच्चारण-पूर्वक यज्ञोपवीत पहिने तथा कंठ में हार धारण करे ।

(नव–तिलक–विधि)

सौगन्ध्य - सङ्गत - मधुव्रत - झङ्कृतेन,
संवर्ण्यमानमिव गन्धमनिन्द्यमादौ ।
आरोपयामि विबुधेश्वर - वृन्द–वन्द्य–
पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानाम् ॥

ॐ ह्रीं परमपवित्राय नमः आगमोक्तनवाङ्गेषु चन्दनानुलेपनं करोमि

इसे पढ़कर शरीर के ललाट, मस्तक, कंठ, नाभि, भुजा आदि नौ स्थानों पर चन्दन से तिकल करे।

(भूमि-प्रक्षालन-विधि)

ये सन्ति केचिदिह दिव्य-कुल-प्रसूता,
नागाः प्रभूत-बल-दर्पयुता विबोधाः।
संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां,
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम्॥

ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः भूः शुद्ध्यतु स्वाहा।

इसे पढ़कर नागसन्तर्पण-पूर्वक स्नपन भूमि का प्रक्षालन करे।

(पीठ-सिंहासन स्थापना-विधि)

पाण्डुकाख्यां शिलां पूतां, पीठमेतन्महीतले।
स्थापयामि जिनेन्द्रस्य, मज्जनाय महत्तरम्॥
कनकादिनिभं कम्रं पावनं पुण्यकारणम्।
स्थापयामि परं पीठं, जिनस्नानाय भक्तितः॥

ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्मं ठः ठः श्रीपीठं स्थापयामि स्वाहा।

इसे पढ़कर पाद-पीठ (सिंहासन) स्थापित किया जावे।

(पीठ-प्रक्षालन-विधि)

पाद-पीठ-कृत-स्पर्शं, पादमूलं जिनेशिनः।
शैलेन्द्र-स्नान-पीठस्य, पीठं प्रक्षालयाम्यहम्॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतर जलेन श्रीपीठप्रक्षालनं करोमि स्वाहा।

इसे पढ़कर पाद-पीठ का पवित्र जल से प्रक्षालन किया जावे।

(श्रीकार लेखन विधि)

श्रीपीठक्लृप्ते विततक्षतौघे, श्रीप्रस्तरे पूर्णशशाङ्ककल्पे ।
श्रीवर्तके चन्द्रमसीतिवार्तां, सत्यापयन्तीं श्रियमालिखामि ॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्रीकारलेखनं करोमि स्वाहा ।

इसे पढ़कर पादपीठ (सिंहासन) पर 'श्री' लिखे ।

(प्रतिमा स्थापना-विधि)

भृङ्गार-चामर-सुदर्पण-पीठ-कुम्भ—
तालध्वजातपनिवारक भूषिताग्रे ।
वर्धस्व नन्द जय पाठ पदावलीभिः,
सिंहासने जिनभवन्तमहं श्रयामि ॥

वृषभादि-सु-वीरान्तान्, जन्माप्तौ जिष्णुर्चितान् ।
स्थापयाम्यभिषेकाय, भक्त्या पीठे महोत्सवम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्री धर्मतीर्थाधिनाथ ! भगवन्निह पाण्डुकशिलापीठे तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा । जगतः सर्वशान्तिं करोतु ।

इसे पढ़कर जल-अक्षत और पुष्पों का क्षेपण कर श्रीवर्ण के ऊपर प्रतिमा विराजमान करना चाहिये ।

(आह्वानन-स्थापना-सन्निधिकरण-विधि)

आहूता भवनामरैरनुगता यं सर्वदेवास्तथा,
तस्थौ यस्त्रिजगत्सभान्तरमहापीठाग्रसिंहासने ।
यं हृद्यं हृदि सन्निधाप्य, सततं ध्यायन्ति योगीश्वराः ।
तं देवं जिनमर्चितं कृतधियामाह्वाननाद्यैर्यजे ॥

ॐ ह्रीं श्री क्लीं ऐं अर्हं अर्हन् अत्र एहि २ संवौषट् नमोऽर्हते स्वाहा। ॐ ह्रीं अत्र तिष्ठ ठः ठः नमोऽर्हते स्वाहा। ॐ ह्रीं अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् नमोऽर्हते स्वाहा।

याः कृत्रिमास्तदितराः प्रतिमा जिनस्य,
संस्नापयन्ति पुरुहूतमुखादयस्ताः।
सद्भावलब्धिसमयादिनिमित्तयोगात्,
तत्रैवमुज्ज्वलधिया कुसुमं क्षिपामि॥

इति अभिषेक प्रतिज्ञानाय पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्।

(कलश–स्थापन–विधि)

श्रीतीर्थकृत्स्नपनवर्यविधौ सुरेन्द्रः
क्षीराब्धिवारिभिरपूरयदर्थ–कुम्भान्॥
तांस्तादृशानिव विभाव्य यथार्हणीयान्,
संस्थापये कुसुम–चन्दन भूषिताग्रान्॥
शातकुम्भ–कुम्भौघान्, क्षीराब्धेस्तोयपूरितान्।
स्थापयामि जिन–स्नान–चन्दनादिसुचर्चितान्॥

ॐ ह्रीं स्वस्तये पल्लवसुशोभितमुखान् स्वर्णरजतनिर्मितान्
चतुःकलशान् पीठचतुःकोणेषु स्थापयेत्।

पल्लवों से सुशोभित मुखवाले स्वस्तिक सहित चांदी-सोने के चार सुन्दर कलश सिंहासन के चारों कोणों पर स्थापित किये जावें।

(जल-शुद्धि-विधि)

संस्थाप्याढकवारिपूर्णकलशान्, पद्मापिधानाननान् ।
प्रायोमध्यघटान्वितानुपहितान्, सद्गन्ध-चूर्णादिभिः ॥
द्रोणाम्भःपरिपूरितांश्चतुरशः, कोणेषु यज्ञक्षितेः ।
कुम्भान् न्यस्य सुमङ्गलेषु निदधे, तेषु प्रसूनं वरम् ॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्म-महापद्म-तिगिञ्छ-केशरी-महापुण्डरीक- पुण्डरीक-गङ्गा -सिन्धु-रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा-नारी नरकान्ता-सुवर्ण-रूप्यकूला - रक्ता - रक्तोदा-क्षीराम्भोधिजलं स्वर्ण घटप्रक्षिप्तं नवरत्नपुष्पाढ्यमामोदकं पवित्रं कुरु कुरु झं झं झ्वौं झ्वौं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं नेत्राय संवौषट् कोणकुम्भेषु पवित्रतरजलं क्षिपामि ।

इसे पढ़कर चारों कलशों में जल-धारा डालकर कलशों के जल को पवित्र किया जावे ।

(अर्घ्यावतरण-जयघोष-वाद्यघोष-विधि)

आनन्द-निर्भर-सुर-प्रमदादि-गानै -
वादित्रपूर-जय-शब्द-कलप्रशस्तैः ।
उद्गीयमान-जगतीपति-कीर्ति-मेनां,
पीठस्थलीं वसुविधार्चनयोल्लसामि ॥

ॐ ह्लीं श्रीस्नपनपीठाय अर्घ्यम् । वाद्यघोषण जय-जय शब्दोच्चारणम् ।

इसे पढ़कर सिंहासन पर विराजमान प्रतिमा के समक्ष अर्घ्य चढ़ाया जावे । घंटा-झालर बजावे, उपस्थित जन-समुदाय भगवान की जय बोले ।

कर्मप्रबन्ध - निगडैरपि हीनताप्तं,
ज्ञात्वापि भक्तिवशतः परमादिदेवम् ।
त्वां स्वीयकल्मष - गणोन्मथनाय देव !
शुद्धोदकैरभिनयामि नयार्थतत्त्वम् ॥

ओं ह्लीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं हं हं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

इसे पढ़कर शुद्ध जल की धारा श्रीजी पर छोड़ी जाय ।

दूरावनम्र-सुरनाथ-किरीट-कोटी-
संलग्न-रत्न-किरणच्छविधूसराङ्घ्रिम् ।
प्रस्वेदतापमल- मुक्तमपि प्रकृष्टै-
र्भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाभिषिञ्चे ॥

ओं ह्लीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि-वर्धमानान्तचतुर्विंशति तीर्थङ्करपरमदेवं मध्यलोके जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे भारतवर्षे मध्यप्रदेशे...........नाम्नि नगरे....जिनगृहे....वीरनिर्वाण संवत्सरे मासानामुत्तमे मासे....मासे....पक्षे शुभदिने मुनि आर्यिका श्रावकश्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषिञ्चे नमः ।

इसे बोलते हुये शुद्ध जल की धारा श्रीजी पर छोड़ते जाना चाहिये ।

तीर्थोत्तम—भवैर्नीरैः, क्षीर—वारिधि-रूपकैः ।
स्नपयामिसु जन्माप्तान्, जिनान् सर्वार्थसिद्धिदान् ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तान् तीर्थङ्करान् पवित्रतरजलेन स्नपयामि ।

इसे बोलकर शुद्ध जल की धारा श्रीजी पर छोड़ना चाहिये ।

नोट :—ऊपर लिखे "तीर्थोत्तमभवैर्नीरैः" आदि श्लोक तथा उसके नीचे लिखे मन्त्र को १०८ बार पढ़ते हुए श्री जी पर जलाभिषेक करे । अर्थात् एकबार श्लोक और मंत्र पढ़कर एक धारा छोड़े इस प्रकार १०८ धारा पूरी करे ।

(शान्तिमन्त्र द्वारा अभिषेक)

सकल भुवननाथं, तं जिनेन्द्रं सुरेन्द्रैः,
अभिषव-विधिमाप्तं, स्नातकं स्नापयामः ।
यदभिषवणवारां, बिन्दुरेकोऽपि नृणां,
प्रभवति हि विधातुं, भुक्ति-सन्मुक्तिलक्ष्मीः ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं झं झ्वीं झ्वीं हं सः झं वं हः यः सः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रीं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः ।

इति बृहत्-शान्तिमन्त्रेण अभिषेकं करोमि ।

इति बृहत्-शन्तिमन्त्र को पढ़कर पवित्रतर जल से श्रीजी का अभिषेक किया जावे ।

(कोणकुम्भजलस्नपन-विधि)

चत्वारः सारतोयाम्बुधय उत घनाः, पुष्करावर्तकाद्याः,
वियद्द्रुग्धाः स्तना वा, किमुसुरसुरभेरित्थमाशङ्क्यमानैः ।

अच्छाच्छ - स्वादुदीव्यत्परिमलविलसत्तीर्थ - वारिप्रवाहैः,
कुम्भैरेभिश्चतुर्भियु गपदभिषवं, कुर्महे भव्यबन्धोः ॥

चत्तारि मंगलं - अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा - अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं, पव्वजामि - अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा नमोऽर्हते भगवते श्रीमते मङ्गललोकोत्तमशरणाय दिव्यपवित्रतरचतुःकोणकुम्भपरिपूर्णजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

इसे पढ़कर क्रमशः एक साथ दो दो कोण कलशों से श्रीजी पर जल की धारा छोड़ी जावे ।

पानीयचन्दनसदक्षतपुष्पपुञ्ज-
नैवेद्य-दीपक-सुधूप-फलव्रजेन ।
कर्माष्टक-क्रथन-वीरमनन्त-शक्तिं,
सम्पूजयामि सहसा महसां निधानम् ।

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्यः अर्घ्यम् ।

हे तीर्थपा निजयशो-धवली-कृताशाः,
सिद्धौषधाश्च भवदुःख - महागदानाम् ।

सद्भव्यहृज्जनित- पङ्कज-बन्ध कल्पा,
यूयं जिनाः सततशान्तिकरा भवन्तु ॥

इत्युक्त्वा शान्त्यर्थं पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

नत्वा परीत्य निजनेत्र - ललाटयोश्च,
व्याप्तं क्षणेन हरतादघसञ्चयं मे ।
शुद्धोदकं जिनपते ! तव पादयोगाद्,
भूयाद्भवातपहरं धृतमादरेण ॥

इत्युक्त्वा प्रदक्षिणां नमस्कारं च करोमि ।

(जिनविम्बमार्जन-विधि)

नत्वा मुहु-र्निजकरै - रमृतोयमेयैः,
स्वच्छैर्जिनेन्द्र ! तव चन्द्रकरावदातैः ।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितान्तरम्ये,
देहे स्थितान् जलकणान् परिमार्जयामि ॥

ॐ ह्रीं अमलांशुकेन जिनविम्बमार्जनं करोमि ।
इसे पढ़कर निर्मल वस्त्र से जिनविम्ब पर स्थित जलकणों को पोंछा जावे ।

स्नानं विधाय भवतोऽष्टसहस्रनाम्ना-
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम् ।
जिघृक्षुरिष्टिमिन तेऽष्टतयीं विधातुं,
सिंहासने विधिवदत्र निवेशयामि ॥

श्रीजिनविम्बं वेदिकामध्ये सिंहासने स्थापयित्वा पूजनप्रतिज्ञानाय पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

इसे पढ़कर श्रीजीको वेदी में विराजमान कर पूजन के हेतु पुष्पक्षेपण किये जावें ।

जलगन्धाक्षतैः पुष्पैः, चरुदीप-सुधूपकैः ।
फलैरर्घैं—जिनमर्चे, जन्मदुःखापहानये ॥

ॐ ह्रीं श्रीपीठस्थितजिनाय अर्घ्यम् ।

(गन्धोदकवन्दनमन्त्र)

मुक्तिश्री—वनिता-करोदकमिदं, पुण्याङ्कुरोत्पादकं,
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्रचक्रपदवी - राज्याभिषे-कोदकम् ।
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शन - लता-संवृद्धिसम्पादकं,
कीर्ति-श्री-जयसाधकं तव जिन ! स्नानस्य गन्धोकदम् ॥

श्लोकमिमं पठित्वा गन्धोदकं गृह्णीयात् ।

इस श्लोक को पढ़कर गन्धोदक ग्रहण किया जावे ।

(इष्टप्रार्थना)

इमे नेत्रे जाते, सुकृतजलसिक्ते, सफलिते,
ममेदं मानुष्यं, कृतिजनगणादेयमभवत् ।
मदीयाद् भल्लाटा - दशुभकर्माटनमभूत्,
सदेदृक् पुण्यार्हं मम भवतु ते पूजनविधौ ॥

श्लोकमिमं पठित्वा जिनचरणयोः पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिपेत् ।

इस श्लोक को पढ़कर श्रीजिनेशके चरणों के अग्रभागमें पुष्पांञ्जलि क्षेपण की जावे ।

॥ इति जिनेन्द्रस्नपनविधि समाप्तः ॥

सूचना :—यदि शान्तिधारापाठ पढ़ना हो तो थाल में सिंहासन पर विनायक-यन्त्र विराजमान कर अग्रिम मंत्र पढ़ते हुये अखण्ड जल-धारा देना चाहिये ।

शान्तिधारा–मन्त्र–पाठ

तीर्थोत्तम-भवै र्नीरे–क्षीर–वारिधि-रूपकैः ।
स्नपयामि सुजन्माप्तान्, जिनान् सर्वार्थसिद्धिदान् ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ए अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ।

ॐ ह्रीं क्रौं मम पापं खण्ड खण्ड हन हन दह दह पच पच पाचय पाचय शीघ्रं कुरु कुरु ।

ॐ नमोऽर्हं झः झ्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्वः पः हः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः । श्रीरस्तु वृद्धिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु शान्तिरस्तु कान्तिरस्तु कल्याणमस्तु स्वाहा । एवं कार्य-सिद्ध्यर्थं सर्वविघ्ननिवारणार्थं श्रीमद्भगवदर्हत्सर्वज्ञपरमेष्ठि परमपवित्राय नमो नमः ।

श्रीशान्तिभट्टारकपादपद्मप्रसादात् सद्धर्म-श्रीबलायु-रारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तुस्वशिष्यपरशिष्यवर्गाःप्रसीदन्तुनः ।

ॐ वृषभादयः श्रीवर्धमानपर्यन्ताश्चतुर्विंशत्यर्हन्तो भगवन्तः सर्वज्ञाः परममङ्गलनामधेयाः नः इहामुत्र च सिद्धिं तन्वन्तु तथा सद्धर्मकार्येषु इहामुत्र च सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्रीमत्पार्श्वतीर्थङ्कराय

श्रीमद्रत्नत्रयरूपाय दिव्यतेजोमूर्तये प्रभामण्डलमण्डिताय द्वादशगणसहिताय अनन्तचतुष्टयसहिताय समवसरणकेवल-ज्ञानलक्ष्मीशोभिताय अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद् गुणसंयुक्ताय परमपवित्राय सम्यग्ज्ञानाय स्वयम्भुवे सिद्धाय बुद्धाय परमात्मने परमसुखाय त्रैलोक्यमहिताय अनन्त-संसारचक्रप्रमर्दनाय अनन्तज्ञानदर्शनवीर्यसुखास्पदाय त्रैलो-क्यवशङ्कराय सत्यज्ञानाय सत्यब्रह्मणे उपसर्गविनाशनाय घातिकर्मक्षयङ्कराय अजराय अभवाय अस्माकं 'अमुक-राशिनामधेयानां" व्याधिं हन्तु ! श्रीजिनपूजन प्रसादात् सेवकानाँ, सर्वदोषरोगशोकभयपीडाविनाशनं भवतु ।

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये श्री शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्न-प्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रव-विनाशनाय सर्वडामरविनाशनाय सर्वारिष्टशान्तिकराय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा नमः सर्वविघ्न-शान्तिं कुरु कुरु। तुष्टिं पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा। अति कामं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द। रतिकामं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द। बलिकामं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द। क्रोधं पापं वैरंच छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द। अग्निवायुभयं छिन्द छिंद भिंद भिंद। सर्वशत्रुविघ्नं छिंद छिंद। भिंद भिंद सर्वोपसर्गं छिंद छिंद भिंद भिंद।

सर्वविघ्नं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वराज्यभयं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वचौरदुष्टभयं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वसर्पवृश्चिकसिंहादिभयं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वग्रहभयं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द ।

सर्वदोषव्याधिं डामरं च छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वपरमन्त्रं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वात्मघातं परघातं च छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वशूलरोगं कुक्षिरोगं अक्षिरोगं शिरोरोगं ज्वररोगं च छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वनरमारिं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द ।

सर्वगजाश्वमहिषाजमारिं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वसस्यधान्यवृक्षलतागुल्मपत्रपुष्पफलमारिं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वराष्ट्रमारिं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वविषभयं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वक्रूरवेताल-शाकिनी–डाकिनीभयं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्ववेदनीयं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वमोहनीयं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वापस्मारिं छिन्द छिन्द ।

सर्व भगवती-दुर्भगवतीभयं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । अशुभकर्मजनितदुःखानि छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वदुष्टजनकृतान् मन्त्र–तन्त्रदृष्टि–मुष्टिछलछिद्रदोषान् छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वदुष्टदेवदानववीर व्याघ्रसिंहयोगिनीकृतदोषान् छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द ।

सर्वारिष्टकुली-रनागजनितविषभयान् सर्वस्थावरजङ्गम-वृश्चिकसर्पादिकृतदोषान् वा छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द। सर्वसिंहाष्टापदादिकृतदोषान् छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द। परशत्रुकृतमारणोच्चाटनविद्वेषणमोहनवशीकरणादिदोषान् छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द।

ॐ ह्रीं चक्रविक्रमसत्त्वतेजोबलशौर्यशान्ति पूरय पूरय। सर्वजीवानन्दनं जनानंदनं भव्यानन्दनं गोकुलानंदनं च कुरु कुरु। सर्वराजानंदनं कुरु कुरु। सर्वग्राम-नगरखेटखर्वडमण्डल- द्रोणामुखसंवाहनानंदनं कुरु कुरु। सर्वानंदनं कुरु कुरु स्वाहा।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु, व्याधिव्यसनवर्जितं।
अभयं क्षेममारोग्यं, स्वस्तिरस्तु विधायिने॥

श्री शांतिरस्तु! शिवमस्तु! जयोऽस्तु! नित्यमारोग्यमस्तु सर्वपुष्टिसमृद्धिरस्तु! कल्याणमस्तु! सुखमस्तु! अभिवृद्धिरस्तु! दीर्घायुरस्तु। कुलगोत्रधनं सदास्तु! सद्धर्मश्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं असिआउसा सर्वशांतिं
कुरुत कुरुत स्वाहा।

आयुर्वल्लीविलासं, सकलसुखफलैः, द्राघयित्वाश्वनल्पं,
धीरं हीरं गहीरं, निरुपममुपनयत्वातनोत्वच्छकीर्तिम्।
सिद्धिं वृद्धिं समृद्धिं प्रथयतु तरणि-स्फूर्यदुच्चैः प्रतापं,
कान्तिं शांतिं समाधिं, वितरतु भवतामुत्तमा शान्तिधारा॥

॥ इति शान्तिधारा पाठः॥

जन्माभिषेक आरती

सुरपति ले अपने शीस, जगत के ईश, गये गिरिराजा।
जा पाण्डुक शिला विराजा ॥टेक॥
शिल्पी कुवेर वहाँ आकर के, क्षीरोदधि मेरु लगाकर के।
रचि पैढ़ि ले आये, सागर का जल ताजा ॥
फिर नहुन कियो जिनराजा ॥ टेक ॥ १ ॥
नीलम पन्ना वैडूर्यमणी, कलशा ले करके देवगणी।
इक सहस आठ कलशा लेकर नभराजा ॥
फिर नहुन कियो जिनराजा ॥ टेक ॥ २ ॥
वसु योजन गहराई वाले, चउ योजन चौड़ाई वाले।
इक योजन मुख के, कलश ढ़रे जिन माथा ॥
नहिं जरा डिगे शिशु नाथा ॥ टेक ॥ ३ ॥
सौधर्म इन्द्र अरु ईशाना, प्रभु कलश करें घर युग पाना।
अरु सनतकुमार महा इन्द्र दोय जिन-राजा ॥
शिर चमर ढुरावें साजा ॥ टेक ॥ ४ ॥
शेष दिविज जयकार किया, इन्द्राणी प्रभुतन पोंछ लिया।
शुभ तिलक दृगाञ्जन, शची किया शिशुराजा ॥
नाना-भूषण से साजा ॥ टेक ॥ ५ ॥
ऐरावत पुनि प्रभु लाकर के, माता की गोद विठा करके।
अति अचरज ताण्डव, नृत्य कियो दिविराजा ॥
स्तुति करके जिनराजा ॥ टेक ॥ ६ ॥
चाहत मन 'मुन्नालाल' शरण वसु कर्मजाल दुठ दूर करण।
शुभ आशिष मय वर दान-देउ जिन राजा ॥
मम नहुन होय गिरिराजा ॥ टेक ॥ ७ ॥

विनय-गान

इहि विधि ठांड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ ॥१॥
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सिरताज।
मुक्तिवधू के कन्त तुम, तीन भुवन के राज़ ॥२॥
तिहुं जग की पीड़ा हरण, भवदधि शोषनहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, करता धर्म - प्रकाश ॥३॥
हरता अघ अँधियार के, करता धर्म प्रकाश।
थिरता - पद दातार हो, धरता निज गुणराश ॥४॥
धर्मामृत उर जलधि सों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण - सरोज को, नावत तिहुं जग भूप ॥५॥
मैं वन्दों जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव।
कर्मबन्ध के छेदने, और न कोउ उपाव ॥६॥
भविजन को भव-कूपतें, तुम ही काढ़नहार।
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुण भण्डार ॥७॥
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म रज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिवगैल ॥८॥
तुम पद - पंकज पूजते, विघ्न रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय ॥९॥
चक्री खगधर इन्द्र पद, मिलें आपतें आप।
अनुक्रम कर शिवपद लहें, नेम सकल हन पाप ॥१०॥

तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन ।
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥११॥
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव ।
अंजन से तारे कुधी, जय-जय-जय जिनदेव ॥१२॥
थकी नाव भवदधि विषे, तुम प्रभु ! पार करेव ।
खेवटिया तुम हो प्रभू, जय-जय-जय जिनदेव ॥१३॥
राग-सहित जग में रुले, मिले सरागी देव ।
वीतराग भेंटो अबै, मेंटो राग कुटेव ॥१४॥
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अज्ञान ।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥१५॥
तुमको पूजें सुरपती, अहिपति नरपति देव ।
धन्य भाग मेरो भयो, करन लगो तुम सेव ॥१६॥
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार ।
खेवटिया तुम हो प्रभू, खेव लगाओ पार ॥१७॥
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान ।
अपनो विरद निहारिकैं, कीजे आप समान ॥१८॥
तुमरी नेक सुदृष्टि सों, जग उतरत है पार ।
हा हा डूबो जात हों, नेक निहारि निकार ॥१९॥
जो मैं कहहूँ और सों, तो न मिटे उर झार ।
मेरी तो तोसों बने, तातें करत पुकार ॥२०॥

वन्दों पांचों परम गुरु सुरगुरु, वन्दत जास ।
विघन हरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश ॥२१॥

चौवीसों जिन पद नमों, नमों शारदा माय ।
शिवमग साधक साधु नमि, रचों पाठ सुखदाय ॥२२॥

मंगल मूरति परम पद, पञ्च धरों नित ध्यान ।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान ॥२३॥

मंगल जिनवरपद नमों, मंगल अर्हत देव ।
मंगलकारी सिद्ध – पद, सो वन्दों स्वयमेव ॥२४॥

मंगल आचारज मुनी, मंगल गुरु उवझाय ।
सर्वसाधु मंलल करो, वन्दों मन वच काय ॥२५॥

मंगल सरस्वति मात का, मंगल जिनवर धर्म ।
मंगल मय मंगल करो, हरो असाता कर्म ॥२६॥

या विधि मंगल करन से, जग में मंगल होत ।
मंगल "नाथूराम" यह, भव–सागर दृढ़ पोत ॥२७॥

卐 卐

श्री जिन-सहस्रनाम-स्तोत्रम्

(भगवज्जिनसेनाचार्य)

स्वयम्भुवे नमस्तुभ्य - मुत्पाद्यात्मानमात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोद्भूत - वृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये ॥१॥
नमस्ते जगतां पत्ये, लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते ।
विदाम्वर नमस्तुभ्यं, नमस्ते वदताम्वर ॥२॥
कर्मशत्रुहणं देव - मामनन्ति मनीषिणः ।
त्वामा-नमत्सुरेणमौलि - भामालाभ्यर्चित - क्रमम् ॥३॥
ध्यान - दुर्घण - विभिन्न - घन-घाति - महातरुः ।
अनन्त - भव - सन्तान - जयोऽप्यासीरनन्तजित् ॥४॥
त्रैलोक्य - निर्जयावाप्त - दुर्दर्पमतिदुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासी - ज्जिनमत्युञ्जयो भवान् ॥५॥
विधूताशेष - संसार - बन्धनो भव्य-बान्धवः ।
त्रिपुरारिस्त्व - मीशोऽसि, जन्म - मृत्युजरान्तकृत् ॥६॥
त्रिकाल - विजयाशेष - तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्चक्षुः, त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशिता ॥७॥
त्वामन्धकान्तकं प्राहुः, मोहान्धासुर - मर्दनात् ।
अर्धं ते नारयो यस्मा - दर्ध - नारीश्वरोऽस्यतः ॥८॥
शिवः शिव - पदाध्यासाद् दुरितारि - हरोः हरः ।
शङ्करः कृतशं लोके, सम्भवस्त्वं भवन्सुखे ॥९॥

वृषभोऽसि जगज्जेष्ठः, गुरुः गुरु – गुणोदयैः ।
नाभेयो नाभि – सम्भूते - रिक्ष्वाकु-कुल–नन्दनः ॥१०॥
त्वमेकः पुरुषस्कन्धः, त्वं द्वे लोकस्य लोचने ।
त्वं त्रिधा बुद्ध - सन्मार्गः, त्रिज्ञस्त्रिज्ञान–धारकः ॥११॥
चतुः शरण - माङ्गल्य – मूर्तिस्त्वं चतुरस्रधीः ।
पञ्च – ब्रह्ममयो देवः, पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥
स्वर्गावतारिणे तुभ्यं, सद्योजातात्मने नमः ।
जन्माभिषेक – वामाय वामदेव ! नमोऽस्तु ते ॥१३॥
सन्निष्क्रान्तावरोधाय, परं प्रशममीयुषे ।
केवलज्ञान – संसिद्धा वीशानाय नमोऽस्तु ते ॥१४॥
पुरुस्तत्पुरुषत्वेन, विमुक्त – पद - भागिने ।
नमस्तत्पुरुषावास्थां, भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते ॥१५॥
ज्ञानावरणनिर्ह्रासात् नमस्ते ऽ नन्त–चक्षुषे ।
दर्शनावरणोच्छेदात्, नमस्ते विश्वदृश्वने ॥१६॥
नमो दर्शनमोहघ्ने, क्षायिका – मलदृष्टये ।
नमश्चारित्र – मोहघ्ने, विरागाय महौजसे ॥१७॥
नमस्तेऽनन्त – वीर्याय, नमोऽनन्त - सुखात्मने ।
नमस्तेऽनन्त – लोकाय. लोकालोकावलोकिने ॥१८॥
नमस्तेऽनन्त – दानाय, नमस्तेऽनन्त - लब्धये ।
नमस्तेऽनन्त – भोगाय, नमोऽनन्तो – पभोगिने ॥१९॥

नमः परम-योगाय, नमस्तुभ्य-मयोनये ।
नमः परम-पूताय, नमस्ते परमर्षये ॥२०॥
नमः परम-विद्याय, नमः पर-मतच्छिदे ।
नमः परम-तत्त्वाय, नमस्ते परमात्मने ॥२१॥
नमः परमरूपाय, नमः परम-तेजसे ।
नमः परम-मार्गाय, नमस्ते परमेष्ठिने ॥२२॥
परमर्द्धिजुषे धाम्ने, परम-ज्योतिषे नमः ।
नमः पारेतमः प्राप्त-धाम्ने परतरात्मने ॥२३॥
नमः क्षीण-कलङ्काय, क्षीण-बन्ध! नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते क्षीण-मोहाय, क्षीण-दोषाय ते नमः ॥२४॥
नमः सुगतये तुभ्यं, शोभनां गतिमीयुषे ।
नमस्तेऽतीन्द्रिय-ज्ञान - सुखायानिन्द्रियात्मने ॥२५॥
काय-बन्धन-निर्मोक्षा-दकायाय नमोऽस्तु ते ।
नमस्तुभ्यमयोगाय, योगिना - मधियोगिने ॥२६॥
अवेदाय नमस्तुभ्य-मकषायाय ते नमः ।
नमः परम-योगीन्द्र-वन्दिताङ्घ्रि-द्वयाय ते ॥२७॥
नमः परम - विज्ञान; नमः परम - संयम ।
नमः परम - दृग्दृष्ट - परमार्थाय तायिने ॥२८॥
नमस्तुभ्यम-लेश्याय, शुक्ललेश्यांशक-स्पृशे ।
नमो भव्येतरावस्था - व्यतीताय विमोक्षिणे ॥२९॥

संज्ञसंज्ञिद्वयावस्था – व्यतिरिक्तामलात्मने ।
नमस्ते वीतसंज्ञाय, नमः क्षायिकदृष्टये ॥३०॥
अनाहाराय तृप्ताय, नमः परमभाजुषे ।
व्यतीताशेष - दोषाय, भवाब्धेः पारमीयुषे ॥३१॥
अजराय नमस्तुभ्यं, नमस्ते स्यादजन्मने ।
अमृत्यवे नमस्तुभ्य – मचलायाक्षरात्मने ॥३२॥
अलमास्तां गुणस्तोत्र-मनन्तास्तावका गुणाः ।
त्वां नामस्मृति-मात्रेण, पर्युपासिसिषामहे ॥३३॥
एवं स्तुत्वा जिनं देवं, भक्त्या परमया सुधीः ।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां, सहस्रं पाप-शान्तये ॥३४॥

॥ इति–प्रस्तावना ॥

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्ध - लक्षणं त्वां गिरां पतिम् ।
नाम्ना – मष्टसहस्रेण, तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥१॥
श्रीमान् स्वयंभू वृषभः, शंभवः शंभुरात्मभूः ।
स्वयम्प्रभः प्रभुर्भोक्ता, विश्वभू-रपुनर्भवः ॥२॥
विश्वात्मा विश्वलोकेशो, विश्वतश्चक्षुरक्षरः ।
विश्वविद्विश्व–विद्येशो, विश्वयोनिरनीश्वरः ॥३॥
विश्वदृश्वा, विभुर्धाता, विश्वेशो विश्वलोचनः ।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः, शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥४॥
विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठः, विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः ।
विश्वदृग् विश्वभूतेशो, विश्वज्योति-रनीश्वरः ॥५॥

जिनो जिष्णु-रमेयात्मा, विश्वरीशो-जगत्पतिः ।
अनन्तजिद्-चिन्त्यात्मा - भव्यबन्धु-रबन्धनः ॥६॥
युगादिपुरुषो ब्रह्मा, पञ्चब्रह्ममयः शिवः ।
परः परतरः सूक्ष्मः, परमेष्ठी सनातनः ॥७॥
स्वयंज्योति-रजोऽजन्मा, ब्रह्मयोनि--रयोनिजः ।
मोहारिविजयी जेता, धर्मचक्री दयाध्वजः ॥८॥
प्रशान्तारि--रनन्तात्मा, योगी योगीश्वरार्चितः ।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो, ब्रह्मोद्या विद्यतीश्वरः ॥९॥
सिद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा, सिद्धार्थः सिद्धशासनः ।
सिद्धः सिद्धान्तविद् ध्येयः, सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥
सहिष्णु-रच्युतोऽनन्तः, प्रभविष्णु - र्भवोद्भवः ।
प्रभूष्णु - रजरोऽजर्यो, भ्राजिष्णु र्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥
विभावसु-रसम्भूष्णुः, स्वयम्भूष्णुः पुरातनः ।
परमात्मा परंज्योतिः, त्रिजगत्पर - मेश्वरः ॥१२॥

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैः, चरुसुदीपसुधूपफलार्घ्यकैः ।
धवलमङ्गलगानरवाकुले, जिनगृहे जिननामशतं यजे ॥
ओं ह्रीं भगवज्जिनस्य श्रीमदादिशतनामभ्यः अर्घ्यम् ।

इति प्रथम श्रीमदादिशतम् ॥१॥

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः, पूतवाक् पूतशासनः ।
पूतात्मा परमज्योति,-र्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१॥
श्रीप-तिर्भगवानर्हन्, अरजा विरजाः शुचिः ।
तीर्थंकृत् केवलीशानः, पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥२॥

अनन्तदीप्ति-र्ज्ञानात्मा, स्वयम्बुद्धः प्रजापतिः ।
मुक्तः शक्तो निराबाधो, निष्कलो भुवनेश्वरः ॥३॥
निरञ्जनो जगज्ज्योतिः, निरुक्तोक्तिर्निरामयः ।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः, कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥४॥
अग्रणी-र्ग्रामणीर्नेता, प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् ।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो, धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥५॥
वृषध्वजो वृषाधीशो, वृषकेतु -- र्वृषायुधः ।
वृषो वृषपतिर्भर्ता, वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥६॥
हिरण्यनाभिर्भूतात्मा, भूतभृद् भूतभावनः ।
प्रभवो विभवो भास्वान्, भवो भावो भवान्तकः ॥७॥
हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः, प्रभूत—विभवोऽभवः ।
स्वयम्प्रभः प्रभूतात्मा, भूतनाथो जगत्पतिः ॥८॥
सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः, सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः, सर्ववित् सर्वलोकजित् ॥९॥
सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुक्, सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः ।
विश्रुतो विश्वतः पादो, विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥१०॥
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः, सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
भत--भव्य--भवद्भर्ता, विश्वविद्या—महेश्वर ॥११॥

इति द्वितीयं दिव्यादिशतम् अर्घ्यम् ॥२॥

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः, प्रेष्ठः पृष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः, श्रेष्ठोऽनिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥

विश्वमुद्विश्वसृट् ,विश्वेट्, विश्वभुग् विश्वनायकः ।
विश्वाशी विश्वरूपात्मा, विश्वजिद्विजितान्तकः ॥२॥
विभवो विभयो वीरो, विशोको विजरो जरन् ।
विरागो विरतोऽसङ्गो, विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥
विनेयजनता – बन्धु – र्विलोनाशोष–कल्मषः ।
वियोगो योगविद्विद्वान्, विधाता सुविधिः सुधीः ॥४॥
क्षान्तिभाक् पृथिवीमूर्तिः, शन्तिभाक् सलिलात्मकः ।
वायुमूर्ति – रसंगात्मा, वह्निमूर्तिरधर्मधक् ॥५॥
सुयज्वा यजमानात्मा, सुत्वा सुत्रामपूजितः ।
ऋत्विग् यज्ञपतिर्यज्ञो, यज्ञांग–ममृतं हविः ॥६॥
व्योममूर्ति – रमूर्तात्मा, निर्लेपो निर्मलोऽचलः ।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा, सूर्यमूर्तिः महाप्रभः ॥७॥
मन्त्रविन् मन्त्रकृन्मन्त्री, मन्त्रमूर्ति–रनन्तगः ।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वान्तः, कृतान्तान्तःकृतान्तकृत् ॥८॥
कृती कृतार्थः सत्कृत्यः, कृतकृत्यः कृतक्रतुः ।
नित्यो मृत्युञ्जयो मृत्यु,--रमृतात्मामृतोद्भवः ॥९॥
ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म, ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः ।
महाब्रह्मपति र्ब्रह्मेट्, महाब्रह्म – पदेश्वरः ॥१०॥
सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा, ज्ञानधर्म – दमप्रभुः ।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा, पुराण – पुरुषोत्तमः ॥११॥

इति तृतीयं स्थविष्ठादिशतम् अर्घ्यम् ॥ ३ ॥

महाशोकध्वजोऽशोकः, कः स्रष्टा पद्मविष्टरः ।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः, पद्मनाभि-रनुत्तरः ॥१॥
पद्मयोनि र्जगद्योनि, रित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः ।
स्तवनार्हो हृषीकेशो, जितजेयः कृतक्रियः ॥२॥
गणाधिपो गणज्येष्ठो, गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः ।
गुणाकरो गुणाम्भोधि, र्गुणज्ञो गुणनायकः ॥३॥
गुणादरी गुणोच्छेदी, निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः ।
शरण्यः पुण्यवाक् पूतो, वरेण्य पुण्यनायकः ॥४॥
अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः, पुण्यकृत् पुण्यशासनः ।
धर्मारामो गुणग्रामः, पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥५॥
पापापेतो विपापात्मा, विपात्मा वीतकल्मषः ।
निर्द्वन्दो निर्मदः शान्तो, निर्मोहो निरुपद्रवः ॥६॥
निर्निमेषो निराहारो, निष्क्रियो निरुपप्लवः ।
निष्कलङ्को निरस्तैनाः, निर्धूतांगो निरास्रवः ॥७॥
विशालो विपुलज्योति - रतुलोऽचिन्त्यवैभवः ।
सुसम्वृत्तः सुगुप्तात्मा, सुभृत् सुनयतत्त्ववित् ॥८॥
एकविद्यो महाविद्यो, मुनिः परिदृढः पतिः ।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी, विनेता विहतान्तकः ॥९॥
पिता पितामहः पाता, पवित्रः पावनो गतिः ।
त्राता भिषग्वरो वर्यो, वरदः परमः पुमान् ॥१०॥

कविः पुराणपुरुषो, वर्षीयान् वृषभः पुरुः ।
प्रतिष्ठाप्रसवो हेतु,-र्भुवनैक - पितामहः ॥११॥

इति चतुर्थे महाशोकादिशतम् अर्घ्यम् ॥४॥

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो, लक्षण्यः शुभलक्षणः ।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः, पुष्कलः पुष्कलेक्षणः ॥१॥
सिद्धिदः सिद्धसङ्कल्पः, सिद्धात्मा सिद्धसाधनः ।
बुद्धबोध्यो महाबोधिः, वर्धमानो महार्द्धिकः ॥२॥
वेदाङ्गो वेदविद् वेद्यो, जातरूपो विदाम्वरः ।
वेदवेद्यः स्वसम्वेद्यो, विवेदो वदताम्वर ॥३॥
अनादिनिधनोऽव्यक्तो, व्यक्तवाग् व्यक्तशासनः ।
युगादिकृद् युगाधारो, युगादि-र्जगदादिजः ॥४॥
अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो, महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक् ।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो, महेन्द्रमहितो महान् ॥५॥
उद्भवः कारणं कर्ता, पारगो भवतारकः ।
अगाह्यो गहनं गुह्यं, परार्घ्यः परमेश्वरः ॥६॥
अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धि - रचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः ।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्र्यः,प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः ॥७॥
महातपा महातेजा, महोदर्को महोदयः ।
महायशा महाधामा, महासत्त्वो महाधृतिः ॥८॥
महाधैर्यो महावीर्यो, महासम्पन्महा--बलः ।
महाशक्तिर्महाज्योति, - र्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥९॥

महामति - र्महानीति, - र्महाक्षान्ति-र्महोदयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो, महानन्दो महाकविः ॥१०॥
महामहा -महाकीर्ति, र्महाकान्ति - र्महावपुः ।
महादानो महाज्ञानो, महायोगो महागुणः ॥११॥
महामहपतिः प्राप्त, महाकल्याणपञ्चकः ।
महा - प्रभुर्महाप्राति-हार्याधीशो - महेश्वरः ॥१२॥

इति पञ्चमं श्रीवृक्षादिशतम् अर्घ्यम् ॥ ५ ॥

महामुनिर्महामौनी, महाध्यानी महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो, महायज्ञो महामखः ॥१॥
महाव्रतपति - र्मह्यो, महाकान्तिधरोऽधिपः ।
महामैत्री - महामेयो, महोपायो महोदयः ॥२॥
महाकारुण्यको मन्ता, महामन्त्रो महायतिः ।
महानादो महाघोषो, महेज्यो महसांपतिः ॥३॥
महाध्वरधुरो धुर्यो, महौदार्यो महिष्ठवाक् ।
महात्मा महसांधाम, महर्षिर्महितोदयः ॥४॥
महाक्लेशांकुशः शूरो, महाभूतपतिर्गुरुः ।
महापराक्रमोऽनन्तो , महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५॥
महाभवाब्धिसन्तारि, - र्महामोहाद्रिसूदनः ।
महागुणाकरः क्षान्तो, महायोगीश्वरः शमी ॥६॥
महाध्यानपतिर्ध्याता, महाधर्मा महाव्रतः ।
महाकर्मारिहाऽऽत्मज्ञो, महादेवो महेशिता ॥७॥

सर्वक्लेशापहः साधुः, सर्वदोषहरो हरः ।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा, शमात्मा प्रशमाकरः ॥८॥
सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः ।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो, योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥ ९॥
प्रधानमात्मा प्रकृतिः, परमः परमोदयः ।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः, क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥१०॥
प्रणवः प्रणयः प्राणः, प्राणदः प्रणतेश्वरः ।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो, दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११॥
आनन्दो नन्दनो नन्दो, वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः ।
कामहा कामदः काम्यः, कामधेनुररिञ्जयः ॥१२॥

इति षष्ठं महामुन्यादिशतम् अर्घ्यम् ॥ ६ ॥

असंस्कृतः सुसंस्कारः, प्राकृतो वैकृतान्तकृत् ।
अन्तकृत् कान्तगुः कान्तः, चिन्तामणिरभीष्टदः ॥१॥
अजितो जितकामारि-रमितोऽमितशासनः ।
जितक्रोधो जिताभित्रो, जितक्लेशो जितान्तकः ॥२॥
जिनेन्द्रः परमानन्दो, यतीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः ।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो, यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥
नाभेयो नाभिजोऽजातः, सुव्रतो मनुरुत्तमः ।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वान्, अधिकोऽधिगुरुः सुधीः ॥४॥
सुमेधा विक्रमी स्वामी, दुराधर्षो निरुत्सुकः ।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः, प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥५॥

क्षेमी क्षेमङ्करोऽक्षय्यः, क्षेमधर्मपतिः क्षमी ।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो, ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥६।
सुकृती धातुरिज्यार्हः, सुनय--श्चतुराननः ।
श्रीनिवासः चतुर्वक्त्रः, चतुरास्य -- श्चतुर्मुखः ॥७॥
सत्यात्मा सत्यविज्ञानः, सत्यवाक्सत्यशासनः ।
सत्याशीः सत्यसन्धानः, सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥
स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्, दवीयान् दूरदर्शनः ।
अणोरणी-- यानणुः, गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥
सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः ।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥
सुघोषः सुमुखः सौम्यः, सुखदः सुहितः सुहृत् ।
सुगुप्तागुप्तभृद् गोप्ता, लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

इति सप्तमम् असंस्कृतादिशतम् अर्घ्यम् ॥ ७ ॥

बृहन्बृहस्पति -- र्वाग्मी, वाचस्पतिरुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमान्, शेमुषीशो गिराम्पतिः ॥१॥
नैकरूपो नयोत्तुङ्गो, नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा, कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥
ज्ञानगर्भो दयागर्भः रत्नगर्भः प्रभास्वरः ।
पद्मगर्भः जगद्गर्भः हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥
लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो, दृढीयानिन ईशिता ।
मनोहरो मनोज्ञाङ्गो, धीरो गम्भीरशासनः ॥४॥

धर्मयूपो दयायागो, धर्मनेमिर्मुनीश्वरः।
धर्मचक्रायुधो देवः, कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥
अमोघवाग -मोघाज्ञो, निर्मलोऽमोघशासनः।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥
सुस्थितः स्वास्थ्यभाक् स्वस्थो, नीरजस्को निरुद्धवः।
अलेपो निष्कलङ्कात्मा, वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥
वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा, निःसपत्नो जितेन्द्रियः।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिः, मङ्गलं मलहानघः ॥८॥
अनीदृगुपमा -भूतो, दृष्टिर्दैव -मगोचरः।
अमूर्तः मूर्तिमानेको, नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥
अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा, योगविद्योगिवन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावी, त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१०॥
शङ्करः शंवदो दान्तो, दमी क्षान्तिपरायणः।
अधिपः परमानन्दः, परात्मज्ञः परात्परः ॥११॥
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यः, त्रिजगन्मङ्गलोदयः।
त्रिजगत्पतिपूजाङ्घ्रिः, त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥१२॥

इति अष्टमं बृहदादिशतम् अर्घ्यम् ॥ ॥

त्रिकालदर्शी लोकेशो, लोकधाता दृढव्रतः।
सर्वलोकातिगः पूज्यः, सर्वलोकैक -सारथिः ॥१॥
पुराणपुरुषः पूर्वः, कृतपूर्वाङ्ग -विस्तरः।
आदिदेवः पुराणाद्यः, पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२॥

युगमुख्यो युगज्येष्ठः, युगादिस्थिति-देशकः ।
कल्याणवर्णः कल्याणः, कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥
कल्याणप्रकृति - र्दीप्तः, कल्याणात्माविकल्मषः ।
विकलङ्कः कलातीतः, कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥
देवदेवो जगन्नाथो, जगद्‌बन्धु - र्जगद्विभुः ।
जगद्धितैषी लोकज्ञः, सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥
चराचरगुरुः गोप्यो, गूढात्मा गूढगोचरः ।
सद्योजातः प्रकाशात्मा, ज्वलज्ज्वलन-सप्रभः ॥६॥
आदित्यवर्णः भर्माभः, सुप्रभः कनकप्रभः ।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः, सूर्यकोटि - समप्रभः ॥७॥
तपनीय - निभस्तुङ्गः, बालार्काभोऽनलप्रभः ।
सन्ध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभः, तप्तचामीकरच्छविः ॥ ८ ॥
निष्टप्त - कनकच्छायः, कनकाञ्चन-सन्निभः ।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भ-निभप्रभः ॥६॥
द्युम्नभः जातरूपाभो, दीप्तजाम्बूनद - द्युतिः ।
सुधौत - कलधौतश्रीः, प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१०॥
शिष्टेष्ट पुष्टिदःपुष्ट, स्पष्टः स्पष्टाक्षरक्षमः ।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः, प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥११॥
शान्तिनिष्ठः मुनिज्येष्ठः, शिवतातिः शिवप्रदः ।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः, कान्तिमान् कामितप्रदः ॥१२॥

श्रेयोनिधि-रधिष्ठानम्, अप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः ।
सुस्थितः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥

इति नवमं त्रिकालदर्श्यादिशतम् अर्घ्यम् ॥ ९ ॥

दिग्वासा वातरसनः, निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः ।
निष्किञ्चनो निराशंसः, ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥ १ ॥
तेजोराशि-रनन्तौजाः, ज्ञानाब्धिः शीलसागरः ।
तेजोमयोऽमितज्योतिः, ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ॥ २ ॥
जगच्चूडामणि - र्दीप्तः, सर्वविघ्नविनाशकः ।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो, लोकालोकप्रकाशकः ॥ ३ ॥
अनिद्रालुरतन्द्रालुः, जागरूकः प्रमामयः ।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिः, धर्मराजः प्रजाहितः ॥ ४ ॥
मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो, जिताक्षो जितमन्मथः ।
प्रशान्तरस - शैलूषो, भव्यपेटकनायकः ॥ ५ ॥
मूलकर्ताखिलज्योतिः, मलघ्नो मूलकारणः ।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयान्, श्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥
प्रवक्ता वचसामीशो, मारजिद्विश्वभाववित् ।
सुतनुस्तनु - निर्मुक्तः, सुगतो हतदुर्नयः ॥ ७ ॥
श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो, वीतभी-रभयङ्करः ।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो, निश्चलो लोकवत्सलः ॥ ८ ॥
लोकोत्तरो लोकपतिः, लोकचक्षुरपारधीः ।
धीरधीः बुद्धसन्मार्गः, शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥ ९ ॥

प्रज्ञापारिमितः प्राज्ञो, यतिर्नियमितेन्द्रियः ।
भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥
समुन्मूलित – कर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः ।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुः, हेयादेयविचक्षणः ॥११॥
अनन्तशक्ति – रच्छेद्यः, त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बक-स्त्र्यक्षः, केवलज्ञान-वीक्षणः ॥१२॥
समन्तभद्रः शान्तारिः, धर्माचार्यो दयानिधिः ।
सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः, कृपालुर्धर्मदेशकः ॥१३॥
शुभंयुः सुखसाद्भूतः, पुण्यराशिरनामयः ।
धर्मपालो जगत्पालो, धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

इति दशमं दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् अर्घ्यम् ॥१०॥

धाम्नाम्पते तवामूनि, नामान्यागमकोविदैः ।
समुच्चितान्य–नुध्यायन्, पुमान् पूतस्मृतिर्भवेत् ॥१॥
गोचरोऽपि गिरामासां, त्वमवाग्गोचरो मतः ।
स्तोता तथाप्यसन्दिग्धं, त्वत्तोऽभीष्टफलं लभे ॥२॥
त्वमतोऽसि जगद्बन्धुः, त्वमतोऽसि जगद्भिषक् ।
त्वमतोऽसि जगद्धाता, त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥३॥
त्वमेकं जगतां ज्योतिः, त्वं द्विरूपोपयोगभाक् ।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यङ्गं, सोत्थानन्तचतुष्टयः ॥४॥
त्वं पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा, पञ्चकल्याणनायकः ।
षड् भेदभावतत्त्वज्ञः, त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥

दिव्याष्टगुण--मूर्तिस्त्वं, नवकेवललब्धिकः ।
दशावतार – निर्धार्यो, मां पाहि परमेश्वर ! ॥६॥

युष्मन्नामा–वलीदृब्ध–विलसत्स्तोत्र–मालया ।
भवन्तं वरिवस्यामः, प्रसीदा –नुग्रहाण नः ॥७॥

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य, पूतो भवति भाक्तिकः ।
यः स पाठं पठत्येनं, सः स्यात्कल्याणभाजनम् ॥८॥

ततः सदेदं पुण्यार्थी, पुमान्पठति पुण्यधीः ।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं, परमा–मभिलाषुकः ॥९॥

इति भगवज्जिनसेनाचार्यविरचितादिपुराणान्तर्गतं
जिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् पूर्णार्घ्यम् वा ।

———

स्वस्ति-वाचन

पंच परमेष्ठी नमस्कार

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ॐ जय जय जय

नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।

आर्या-छन्द

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।

चत्तारि-मंगलं--१-अरिहंता मंगलं, २-सिद्धा मंगलं, ३-साहू मंगलं, ४-केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा--१-अरिहंता लोगुत्तमा, २-सिद्धा लोगुत्तमा, ३-साहू लोगुत्तमा, ४-केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि--१-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, २-सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, ३-साहू सरणं पव्वज्जामि, ४-केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

[ॐ नमोऽर्हते स्वाहा । पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

संस्कृत मंगलमय महामन्त्र महात्म्य

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पञ्च-नमस्कारं, सर्व-पापैः प्रमुच्यते ॥१॥

अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥ २ ॥

अपराजित-मन्त्रोऽयं, सर्व - विघ्न - विनाशनः ।
मङ्गलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मङ्गलं मतः ॥ ३ ॥

एसो पंच - णमोयारो, सव्व - पावप्प-णासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥ ४ ॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म - वाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥

कर्माष्टक - विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी - निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

विघ्नौघाः प्रलय यान्ति, शाकिनी - भूत-पन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ ७ ॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

सहस्रनाम स्तोत्र पढ़ते हुए क्रम से दश अर्घ्य चढावे ।
यदि अवकाश न हो तो, निम्न श्लोक पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।

श्री जिनसहस्रनाम का अर्घ्य

स्वयम्भुवे नमस्तुभ्य-मुत्पाद्यात्मानमात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोभद्भूत-वृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये ॥

वाग्भटी—जिनसेनेन, जिननामार्थ-सार्थकं ।
अष्टाधिकसहस्राणि, सर्वाभीष्टकराणि च ॥

भाषा-मङ्गलमय महामन्त्र महात्म्य

हो अशुद्ध वा शुद्ध नर; सुस्थित दुस्थित कोय ।
पञ्च नमस्कारहिं जपे, सर्व पाप क्षय होय ॥१॥
हो पवित्र अपवित्र वा, सर्व अवस्था माँहि ।
जो सुमरहिं परमात्म--पद, सर्वशुद्धि ता माँहि ॥२॥
यह अपराजित मन्त्र है, विघ्न--विनाशक सर्व ।
सर्व मङ्गलों में प्रथम, मङ्गलदायक पर्व ॥३॥
सर्व पापनाशक महा, मन्त्र पञ्च नवकार ।
सर्व मङ्गलों में प्रथम; मङ्गलदायक सार ॥४॥
अर्हं अक्षर ब्रह्ममय, वाचक पन--परमेश ।
सिद्धचक्रमद् बीज यह; नमूँ सदा सर्वेश ॥५॥
सिद्धचक्र वर्णन करों, वसु-विध कर्मविहीन ।
मोक्ष-लक्ष्मी वास थल, समकितादि गुणलीन ६॥

विघ्नवर्ग झट भागते, शाकिनि भूत विलाय ।
हालाहल निर्विप बने, जिनवर के गुण गांय ॥७॥
जल-चन्दन अक्षत पुष्परु नेवज सुखकारी ।
दीप धूप फल अर्घ्य लेय कञ्चन मणिथारी ॥
मङ्गलीक रव पूरित, श्रीजिन मन्दिर माँही ।
जजूँ सहस वसु नाम महित जिननाम सदा ही ॥

ॐ ह्रीं भगवज्जिमसहस्रनामधेयेभ्यः अर्घ्यम् ।

उदक-चन्दन-तन्दुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः ।
धवल-मङ्गल-गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाम यजामहे ॥
ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पञ्च कल्याणक-अर्घ्य

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक् ।
यः कैवल्यपुरप्रवेश-महिमा, सम्पादितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥
ॐ ह्रीं श्रीभगवतः तीर्थङ्करस्य गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण पञ्चकल्याणकेभ्यः अर्घ्यम् ।

तत्त्वार्थ-सूत्र-अर्घ्य

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥
तत्त्वार्थसूत्र--कर्त्तारं, गृद्ध्रपिच्छोपलक्षितम् ।
वन्दे गणीन्द्रसञ्जातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ॥
ॐ ह्रीं श्रीमदुमास्वामि (आचार्यगृध्रपिच्छ) विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः अर्घ्यम् ।

श्रीभक्तामरस्तोत्र-अर्घ्य

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्रं,
तं 'मानतुङ्ग' मवशा समुपैति लक्ष्मीः ।

ॐ ह्रीं श्रीमानतुङ्गाचार्यविरचितसमस्तभक्तामरकाव्याय
श्रीआदिजिनेन्द्राय वा अर्घ्यम् ।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम् ।
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु-
र्जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥१॥

श्रीमान लोकाधीश जिन, अरिहंत शिव भगवन्त को ।
स्याद्वादनायकऽनन्तदरशन, ज्ञान सुख बलवन्त को ॥
कर नमन युगकर जोड़ श्री जिनयज्ञविधि वरनन करूँ ।
श्री मूलसंघी समकिती जिय, पुण्यहित सब चित धरूँ ॥

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुङ्गवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय ।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्जित-दृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय ॥२॥

त्रैलोक्यगुरु जिनपुङ्गवों के, लिए स्वस्ति रहो सदा ।
हो स्वस्ति उनके लिये जो निज, आत्मगुणरत सर्वदा ॥
निज आत्म सहज प्रकाशमय, सत् दृष्टियों को स्वस्ति हो ।
सुन्दर प्रसन्न अपूर्व वैभव,-शालियों को स्वस्ति हो ॥

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोध-सुधा-प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय ।
स्वस्ति त्रिलोकविततैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय ॥४॥

निर्मल प्रदीपित बोध अम्मृत,-सेवियों को स्वस्ति हो ।
निजभाव अरु परभाव पूर्ण, विभासकों को स्वस्ति हो ॥
त्रैलोक्यव्यापक आत्मा के लिए, स्वस्ति रहे सदा ।
त्रैकाल विस्तृत आतमा के, लिये स्वस्ती सर्वदा ॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥४॥

करके यथा अनुकूल विधि से, द्रव्य की अब शुद्धता ।
चाहूँ यथाविधि नाथ निश्चय, भाव की भी शुद्धता ॥
नाना सुभग अवलम्बनों का, ले सहारा अब यहां ।
परमार्थ यज्ञ सुपुरुप जिनका, यज्ञ करता हूँ यहां ॥

अर्हत्पुराण-पुरुषोत्तम-पावनानि,
वस्तून्यनून-मखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिञ्ज्वलद्विमल-केवल-बोध वन्हौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥

[इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

अरिहंत और पुराण पुरुषो-त्तम सुपावन देव हैं।
इत्यादि नाना वस्तु मय, जिननाथ तू इकमेव है ॥
जाज्वल्यमान सुविमल केवल,-ज्ञान वैश्वानर महां।
ले पुण्य वैभव एकचित से करूँ यज्ञविधी यहाँ ॥

[यहां पुष्पों की वर्षा करना चाहिये]

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः।
श्री सम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दनः।
हों स्वस्ति दाता जिन आदिदेव,
हों स्वस्ति-दाताऽजितनाथ देव।
हों स्वस्ति दाता जिन सभवेश,
हों स्वस्ति दाता अभिनन्दनेश ॥१॥

श्री सुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्री सुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः ॥
हों स्वस्ति दाता सुमती जिनेन्द्र,
हों स्वस्ति दाता पद्मप्रभ महेन्द्र।
हों स्वस्ति दाता प्रभु-पार्श्वनाथ,
हों स्वस्ति दाता जिनचन्द्रनाथ ॥२॥

श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतलः।
श्री श्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः।
हों स्वस्ति दाता विभु पुष्पदन्त,
हों स्वस्तिदा शीतल मोक्षकान्त

हों स्वस्ति दाता जिन श्रेयनाथ,
हों स्वस्ति दाता वसुपूज्यनाथ ॥३॥
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति, श्री अनन्तः ।
श्री धर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शान्तिः ।
हों स्वस्ति दाता विमलेश देव,
हों स्वस्ति दाता सु अनन्त देव ।
हों स्वस्ति दाता प्रभु धर्मनाथ,
हों स्वस्ति दाता जिन शान्तिनाथ ॥४॥
श्री कुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथः ।
श्री मल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रतः ।
हों स्वस्ति दाता विभु कुन्थुदेव,
हों स्वस्ति दाता अरनाथ देव ।
हों स्वस्ति दाता शिव मल्लि ईश,
हों स्वस्ति दाता मुनिसुव्रतेश ॥५॥
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथः ।
श्री पार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्धमानः ।
[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]
हों स्वस्ति दाता नमिनाथ नाथ,
हों स्वस्तिदा नेमि जिनेन्द्रनाथ ।
हों स्वस्ति दाता मम पार्श्वनाथ,
हों स्वस्ति दाता अतिवीर नाथ ॥६॥
(प्रत्येक छन्द के अन्त में पुष्पवर्षा करना चाहिये)

नित्याप्रकम्पाद्भुत-केवलौघाः, स्फुरन्मनःपर्यय-शुद्धबोधाः ।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
कोष्ठस्थ-धान्योपम-मेकबीजं, संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि ।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरा- दास्वादन-घ्राण-विलोकनानि ।
दिव्यान्मतिज्ञान-बलाद्वहन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रवणाःसमृद्धाः, प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः ।
प्रवादिनोऽष्टाङ्ग-निमित्तविज्ञाः,स्वस्तिक्रियासुः परमर्षयो नः ॥
जङ्घावलि-श्रेणि-फलाम्बु-तन्तु-प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वः ।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
अणिम्निदक्षाः कुशलामहिम्नि,लघिम्नि-सक्ता-कृतिनो गरिम्णि ।
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं, प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः ।
तथाऽप्रतीघात-गुणप्रधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः ।
ब्रह्मापरं घोरगुणा-श्चरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
आमर्ष - सर्वौषधयस्तथाशी - विषंविषा दृष्टिविषंविषाश्च ।
सखिल्ल-विड्-जल्लमलौषधीशाः, स्वस्तिक्रियासुःपरमर्षयो नः ॥
क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो, मधु स्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः ।
अक्षीणसंवास-महानसाश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥

उपरिलिखित प्रत्येक श्लोक के बाद पुष्पांजलिक्षेपण किया जावे ।

भाषा परम-ऋषि स्वस्ति मङ्गल-विधान

अविचल केवलज्ञान धर, शुध – मनपर्यय ज्ञान ।
दिव्य अवधिज्ञानी हमें; करहु ऋषी कल्यान ॥१॥
कोष्ठ भिन्न संश्रोतृ रिधि, बीज ऋद्धि धर जान ।
पद अनुसारी बुद्धिधर; करहु ऋषी कल्यान ॥२॥
स्वादन घ्राण विलोकनरु, श्रवण स्पर्शन ज्ञान ।
अक्ष ऋद्धिधारक हमें, करहु ऋषी कल्यान ॥३॥
प्रज्ञा श्रमण प्रत्येक बुध, दश सब पूर्वि बखान ।
वाद अंग वसु निमित धर, करहु ऋषी कल्यान ॥४॥
जङ्घावलि फल फूल जल, बीजांकुर नभ – यान ।
तन्तु श्रेणि गन ऋद्धिवर, करहु ऋषी कल्यान ॥५॥
अणिमा महिमा लघीमा, गरिमा ऋद्धि प्रमान ।
मन वच तन बल धर हमें, करहु ऋषी कल्यान ॥६॥
कामरूप वश ईशता, प्राप्ति सु अन्तर्धान ।
प्राकाम्या – प्रतिघात धर, करहु ऋषी कल्यान ॥७॥
दीप्त तप्त तप घोर अरु, उग्र पराक्रम जान ।
महाघोर गुण ब्रह्मधर, करहु ऋषी कल्यान ॥८॥
क्ष्वेल जल्ल मल सर्वविट् आमर्षौषधि मान ।
विष विषहर मुखदृष्टिधर, करहु ऋषी कल्यान ॥९॥
अक्षीणालय महानस, ऋद्धि धारि पहिचान ।
क्षीरामृत मधुघृतस्रवी; करहु ऋषी कल्यान ॥१०॥

[प्रत्येक छन्द के अन्त में पुष्पवर्षा करना चाहिये]

अथ संस्कृत देवशास्त्रगुरु पूजा

सार्वः सर्वज्ञनाथः, सकलतनुभृतां, पापसन्तापहर्ता,
त्रैलोक्याक्रान्तकीर्तिः, क्षतमदनरिपुर्घातिकर्मप्रणाशः ।
श्रीमन्निर्वाणसम्पद्वरयुवतिकरा—लीढकण्ठैः सुकण्ठै—
र्देवेन्द्रैर्वन्द्यपादो, जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजः ॥

जय जय जय श्रीसत्कान्तिप्रभो ! जगतां पते !
जय जय भवानेव स्वामी, भवाम्भसि मज्जताम् ।
जय जय महामोह — ध्वान्तप्रभातकृतेऽर्चनं,
जय जय जिनेश ! त्वं नाथ ! प्रसीद करोम्यहम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव
वषट् सन्निधिकरणम् । परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

देवि श्री श्रुतदेवते ! भगवति ! त्वत्पादपङ्केरुह—
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं, भक्त्या मया प्रार्थ्यते ।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते ! सदा त्राहि मां,
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं, सम्पूजयामोऽधुना ॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान ! अत्र अवतर अवतर
संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव
भव वषट् सन्निधिकरणम् । परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

सम्पूजयामि पूज्यस्य, पादपद्मयुगं गुरोः ।
तपःप्राप्तप्रतिष्ठस्य, गरिष्ठस्य महात्मनः ॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्रावतरावतर ।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह अत्र मम सन्निहितो
भव भव वषट् सन्निधापनम् पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

अथाष्टकम्

देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रवन्द्यान् शुम्भत्पदान् शोभितसारवर्णान् ।
दुग्धाब्धि-संस्पर्धिगुणैर्जलौघैं जिनेन्द्र-सिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय
षट्चत्वारिंशद् गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने जलम् ।
ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्गश्रुतज्ञानाय
जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-
सर्वसाधुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ।

ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्ति-समस्तसत्त्वाऽहितहारिवाक्यान् ।
श्रीचन्दनैर्गन्धविलुब्धभृंगैं - जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥

ॐ ह्रीं संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामि स्वाहा ।

"जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् " के स्थान में "संसारताप-विनाशनाय चन्दनम्" बोलकर इसी तरह पृथक पृथक मन्त्र ऊपर लिखे अनुसार तीन बार बोलकर देवशास्त्रगुरु को अक्षतादि द्रव्य तीन बार चढ़ाना चाहिये ।

अपारसंसारमहासमुद्र - प्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षताङ्गैर्धवलाक्षतौघैं - जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥

ॐ ह्रीं अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान्, वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान्।
कुन्दारविन्दप्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥

ओं ह्रीं कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम्।

कुदर्पकन्दर्पविसर्पसर्प्पत् - प्रसह्य निर्णाशनवैनतेयान्।
प्राज्याज्यसारैश्चरुभी रसाढ्यै-र्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन्यजेऽहम् ॥

ओं ह्रीं क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।

ध्वस्तोद्यमान्धीकृतविश्वविश्व - मोहान्धकारप्रतिघातिदीपान्।
दीपैः कनत्काञ्चनभाजनस्थै-र्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥

ओं ह्रीं मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजाल -- सन्धूपने भासुरधूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्यसुगन्धगन्धै - र्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥

ओं ह्रीं अष्टकर्मदहनाय धूपम्।

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसामगम्यान्, कुवादिवादास्खलितप्रभावान्।
फलैरलं मोक्षफलाभिसारै - र्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥

ओं ह्रीं मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

सद्वारिगन्धाक्षतपुष्पजातै - र्नैवेद्यदीपामल - धूपधूम्रैः।
फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोग्यान्, जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥

ओं ह्रीं अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम्।

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां, भक्त्या सदा कुर्वते,
त्रैसन्ध्यं सुविचित्रकाव्यरचना-मुच्चारयन्तो नराः।
पुण्याढ्या मुनिराज-कीर्तिसहिता, भूत्वा तपोभूषणा-
स्ते भव्याः सकलावबोधरुचिरां, सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥

इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

वृषभोऽजितनामा च, सम्भवश्चाभिनन्दनः।
सुमतिः पद्मभासश्च, सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥१॥
चन्द्राभः पुष्पदन्तश्च, शीतलो भगवान्मुनिः।
श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च, विमलो विमलद्युतिः ॥२॥
अनन्तो धर्मनामा च, शान्तिः कुन्थुर्जिनोत्तमः।
अरिहो मल्लिनाथश्च, सुव्रतो नमितीर्थकृत्। ३॥
हरिवंश-समुद्भूतोऽ, — रिष्टनेमिर्जिनेश्वरः।
ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः, पार्श्वो नागेन्द्रपूजितः ॥४॥
कर्म्मान्तकृन्महावीरः, सिद्धार्थकुल-सम्भवः।
एते सुराः सुरौघेण, पूजिता विमलत्विषः ॥५
पूजिता भरताद्यैश्च, भूपेन्द्रै—भूरिभूतिभिः।
चतुर्विधस्य सङ्घस्य, शान्ति कुर्वन्तु शाश्वतीम् ॥६॥
जिने भक्तिर्जिने भक्तिः, जिने भक्तिः सदास्तु मे।
सम्यक्त्वमेव संसार,— वारणं मोक्षकारणम् ॥७॥
श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः, श्रुते भक्तिः सदाऽस्तु मे।
सज्ज्ञानमेव संसार—, वारणं मोक्षकारणम् ॥८॥
गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्ति-, गुरौ भक्तिः सदास्तु मे।
चारित्रमेव संसार—, वारणं मोक्षकारणम् ॥९॥

देवजयमाला (प्राकृत)

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे, पइपोसिउ तुहु खत्तधरु ।
तुहु चरणविहाणे केवलणाणे, तुहु परमप्पउ परमपरु ।
जय रिसहरिसीसरणमियपाय, जयअजियजियंगमरोसराय ।
जय संभव संभव कय विओय, जय अहिणंदणणंदियपओय ॥
जय सुमइ सुमइ सम्मयपयास,जय पउमप्पह पउमाणि वास ।
जय जयहि सुपास सुपासगत्त, जय चन्दप्पह चन्दाहवत्त ॥
जय पुप्फयन्त दंतंतरंग, जय सीयल सीयल वयणभंग ।
जय सेय सेय किरणोह सुज्ज, जय वासुपुज्ज पुज्जाण पुज्ज ॥
जयविमलविमलगुणसेढिठाण, जय जयहिं अणंताणंतणाण ।
जय धम्म धम्मतित्थयर संत, जयसांतिसांति विहियायवत्त ॥
जय कुन्थुकुन्थुपहुअंगिसदय, जय अरअरमाहर विहियसमय ।
जय मल्लि मल्लि आदाम गन्ध,जय मुणिसुव्वय सुव्वयणिबन्ध ॥
जय णमिणमियामरणियरसामि, जय णेमिधम्मरहचक्कणेमि ।
जय पासपास छिंदणकिणाण,जयवड्ढमाण जस वड्ढमाण ॥

घत्ता

इह जाणियणामहि, दुरियविरामहिं, परहिंविणमि सुरावलिहिं ।
अणहणहिंअणाइहिं, समियकुवाइहिं,पणविवि अरिहंतावलिहिं ॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

शास्त्रजयमाला (प्राकृत)

संपइ सुहकारण, कम्मवियारण, भवसमुद्द तारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्समि, सत्तपयस्समि, सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥
जिणंदमुहाउ विणिग्गयतार, गणिंदविगुंफिय-गन्थपयार ।
तिलोयहिमंडण धम्महखाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥
अवग्गह ईह अवाय जु एहि, सुधारणभेयहिं तिण्णसएहि ।
मई छत्तीस बहुप्पमुहाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥
सुदं पुण दोण्णि अणेयपयार, सुबारहभेय जगत्तयसार ।
सुरिंद णरिंदसमुच्चिय जाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥
जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि, पयासइ पुण्णपुरा किउ लद्धि ।
णिउग्गु पहिल्लउ एहु वियाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥
जु लोय अलोयह जुत्ति जणेइ, जु तिण्णविकाल सरूव भणेइ ।
चउग्गइलक्खण दुज्जउ जाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥
जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ, सुसावयधम्महि जुत्ति जणेइ ।
णिउग्गुवितिज्जउइत्थुवियाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥
सुजीव अजीवह तच्चह चक्खु, सुपुण्णविपावविबंधविमुक्खु ।
चउत्थुणिउग्गुविभासियणाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥
तिभेयवहिंओहिविणाणुविचित्तु, चउत्थरिजोविउ लंभइ उत्तु ।
सुखाइय केवलणाण वियाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥

जिणिंदह णाणु जगत्तयभाणु, महातमणासियसुक्खणिहाणु ।
पयच्चउ भत्तिभरेण वियाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥
पयाणि सुबारसकोटिसयेण, सुलक्खतिरासिय जुत्ति भरेण ।
सहस्स अठावण पंच वियाणि,सयापणमामि जिणिंदहवाणि ।
इकावण कोडिउ लक्ख अठेव, सहस चुलसी दसया छक्केव ।
सढाइगवीसह गन्थ पयाणि, सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥

घत्ता

इह जिणवरवाणि विसुद्ध मई, जो भवियण णियमण धरई ।
सो सुरणरिंदसंपइ लहई, केवलणाण विउत्तरई ॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्गश्रुतज्ञानाय अर्घ्यम्

गुरु जयमाला (प्राकृत)

भवियहभवतारण सोलहकारण, अज्जवितित्थय रत्तणहं ।
तव कम्म असंगइ दयधम्मंगइ, पालवि पञ्च महव्वयहं ॥
वंदामि महारिसि शीलवंत, पंचिंदियसंजम जोगजुत्त ।
जे ग्यारह अंगह अणुसरंति,जे चौदह पुव्वह मुणि थुणंति ॥
पादाणुसार वर कुट्ठबुद्धि, उप्पण्णजाह आयासरिद्धि ।
जे पाणाहारी तोरणीय, जे रुक्खमूल आतावणीय ॥
जे मोणिधाय चन्दाहणीय, जे जत्थत्थवणिणिवासणीय ।
जे पञ्चमहव्वय धरणधीर, जे समिदिगुत्तिपालणहिं वीर ॥

जे वड्डहिं देहविरत्तचित्त, जे रायरोस-भयमोहचित्त ।
जे कुगइहि संवरु विगयलोह, जे दुरियविणासण कामकोह ॥
जे जल्लमल्ल तणलत्तगत्त, आरम्भ परिग्गह जे विरत्त ।
जे तिण्णकाल बाहिर गमंति, छट्ठट्ठम दसमउ तउ चरंति ॥
जे इक्कगास दुइगास लिंति, जे णीरसभोयण रइ करंति ।
जे मुणिवर वन्दिउ ठियमसाण, जे कम्म डहइ वरसुक्कझाण ॥
बारहविह संजम जे धरंति, जे चारिउ विकहा परिहरंति ।
बावीस परीसह जे सहंति, संसारमहण्णव ते तरंति ॥
जे धम्मबुद्धि महियल थुणंति, जे काउस्सग्गे णिसि गमंति ।
जे सिद्धिविलासिणिअहिलसंति, जे पक्खमास आहार लिंति ॥
गोदूहण जे वीरासणीय, जे धणुह सेज वज्जासणीय ।
जे तवबलेण आयास जंति, जे गिरिगुहकंदर विवर थंति ॥
जे सत्तु मित्त समभावचित्त, ते मुणिवरवंदिउ दिढचरित्त ।
चउवीसह गंथह जे विरत्त, ते मुणिवरवंदिउ जगपवित्त ॥
जे सुज्झा णिज्झा एक्कचित्त, वंदामि महारिसि मोक्खपत्त ।
रयणत्तयरंजिय सुद्धभाव, ते मुणिवर वंदिउ ठिदिसहाव ॥

घत्ता

जे तपसूरा संजमधीरा, सिद्धवधू अणुराईया ।
रयणत्तयरंजिय कम्मह गंजिय, ते रिसिवर मइ झाईया ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय
सर्वसाधुभ्यः महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

भाषा देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(कविवर द्यानतराय जी)

प्रथम देव अरिहन्त, सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निरग्रन्थ महंत, मुकतिपुर पन्थ जू॥
तीन रतन जगमाहिं, सो ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्तिप्रसाद, परम-पद पाइये॥१॥

दोहा-पूजों पद अरिहन्त के, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार।२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सुरपति उरग नरनाथ तिनकरि, वन्दनीक सु-पदप्रभा।
अति शोभनीक सुवर्ण उज्जवल, देख छवि मोहित सभा॥
वर नीर क्षीरसमुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरिहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥

दोहा-मलिन वस्तु हर लेत सब, जल-स्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥१॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम्।

जे त्रिजग-उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहितहरन सो वचन जिनके, परम शीतलता भरे॥
तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घिसि सचूँ।
अरिहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥

दोहा—चन्दन शीतलता करे, तपत वस्तु परवीन ।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनम् ।

यह भवसमुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठही ।
अतिदृढ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही ॥
उज्ज्वल अखण्डित शालि तन्दुल, पुञ्ज धरि त्रयगुण जचूँ ।
अरिहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥
दोहा—तन्दुल शालि सुगन्ध अति, परम अखण्डित बीन ।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् ।

जे विनयवन्त सुभव्य-उर-अम्बुजप्रकाशन भान हैं ।
जे एक मुख चारित्र भाषित, त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥
लहि कुन्दकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदन सों बचूँ ।
अरिहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥
दोहा—विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन ।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ॥४॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः काम-बाणविध्वंसनाय पुष्पम् ।

अति सबल मदकंदर्प जाको; क्षुधा-उरग अमान है ।
दुस्सह भयानक तासु नाशन को, सुगरुड़समान है ॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्य करि घृतमें पचों ।
अरिहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचों ॥

दोहा—नानाविध संयुक्त रस, व्यञ्जन सरस नवीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥५॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविध्वंसनाय नैवेद्यम् ।

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने, मोह-तिमिर महा बली ।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप, प्रकाशजोति प्रभावली ॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचों ।
अरिहन्त श्रु त-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचों ॥

दोहा—स्वपर प्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥६॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् ।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्नि; समूह सम उद्धत लसे ।
वर धूप तासु सुगन्धिताकरि, सकल परिमलता हँसे ॥
यह भांति धूप चढ़ाय नित भव, ज्वलन मांहिं नहीं पचों ।
अरिहन्त श्रु त-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचों ॥

दोहा—अग्निमांहिं परिमल दहन; चन्दनादि गुणलीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥७॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपम् ।

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साह के करतार हैं ।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं ॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अम्मृतरस सचों ।
अरिहंत श्रु त-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचों ॥

दोहा—जे प्रधान फल फलविषैं, पञ्चकरण—रस-लीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥८॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

जल परम उज्जवल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरों।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु, जनम के पातक हरों॥
इह भाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिव पङ्कति मचों।
अरिहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर,-ग्रन्थ नित पूजा रचों॥
दोहा—वसुविधि अर्घ सञ्जोयके, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥९॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यम्।

जयमाला

दोहा—देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार॥१॥

करमनकी त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनन्त धीर, कहवतके छ्यालिस गुण गँभीर॥
शुभ समवसरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर सीसधार।
देवाधिदेव अरिहन्त देव, वन्दों मन वच तन करि सुसेव॥
जिनकी धुनि ह्वै ओंकाररूप, निरअक्षर मय महिमा अनूप।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत॥
सो स्याद्वादमय सप्तभङ्ग, गणधर गूंथे बारह सुअङ्ग।
रवि शशि न हरे सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय॥

गुरु आचारज उवझाय साध,तननगन रतनत्रयनिधि अगाध ।
संसार-देह वैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस, भवतारनतरन जिहाज ईस ।
गुरुकी महिमा बरनी न जाय,गुरुनाम जपों मन वचन काय॥
सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरे ।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमर पद भोगवे ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य: महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

आशीर्वाद:

लोपै दुरित हरै दुख संकट, पावे रोगरहित नर देह ।
पुण्यभंडार भरे जस प्रगटे, मुकतिपंथ सों जुरै सनेह ॥
रचै सुहाग, देय शोभादिक, परभव पहुँचावे सुरगेह ।
कुगतिपंथ दलमलै बनारसि, वीतराग पूजा-फल येह ॥
सद्धर्म प्रकाशै, पाप विनाशै, कुगति उथप्पन हार ।
मिथ्यामत खंडे, कुनय विहंडे, मंडे दया अपार ॥
तृष्णा मद मारे, राग विडारे, यही जिनागम सार ।
जो पूजें ध्यावें, पढें पढ़ावें, ते जग मांहि उदार ॥
मिथ्यातदलन सिद्धान्त सागर, मुकत मारग जानिये ।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति, पुण्य पाप बखानिये ॥
संसार-सागर तरण तारण, गुरु जिहाज विशेखिये ।
जगमांहि गुरुसम कहैं बनारसि, और न दूजो पेखिये ॥

इत्याशीर्वादाय पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।

नवीन देव, शास्त्र, गुरु पूजा

(रचयिता—श्री युगल बी. ए., साहित्यरत्न, कोटा)

केवल रवि किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
जिस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन ॥
सद्दर्शन बोध चरण पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगन।
उन देव परम आगम गुरु को, शत-शतवंदन, शत शत वंदन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्रावतरावतर संवौषट् आव्हाननम्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

इन्द्रिय के भोग मधुर विषसम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया ॥
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता में अटकाया हूं।
अब निर्मल सम्यक नीर लिये, मिथ्या-मल धोने आया हूं ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मिथ्यात्वमलविनाशनाय जलम्।

जड़ चेतन की सब परिणति, प्रभु अपने अपने में होती है।
अनुकूल कहे प्रतिकूल कहे, यह झूठी मन की वृत्ती है ॥
प्रतिकूल सँयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु ! चन्दन सम शीतलता पाने आया है ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्रोधकषायमलविनाशनाय चन्दनम्।

उज्वल हूँ कुन्दधवल हूँ प्रभु ! पर से न लगा हूं किंचित् भी।
फिर भी अनुकूल लगे उन पर, करता अभिमान निरंतर ही ॥
जड़ पर झुक झुक जाता चेतन, की मार्दव की खंडित काया।

निज शाश्वत अक्षय-निधि पाने,अब दास चरणरज में आया ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मानकषायमलविनाशनाय अक्षतम् ।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं ।
निज अन्तर का प्रभु ! भेद कहूँ उसमें ऋजुता का लेश नहीं ॥
चिंतन कुछ फिर सम्भाषण कुछ,किरिया कुछ की कुछ होती है ।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर का कालुष धोती है ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मायाकषायमलविनाशनाय पुष्पम् ।

अब तक अगणित जड़द्रव्यों से,प्रभु ! भूख न मेरी शाँत हुई ।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही ॥
युग-युग से इच्छासागर में; प्रभु ! गोते खाता आया हूँ ।
पंचेन्द्रिय मन के षट् रस तज,अनुपम रस पीने आया हूँ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः लोभकषायमलविनाशनाय नैवेद्यम् ।

जगके जड़ दीपकको अब तक, समझा था मैंने उजियारा ।
झंझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर कारा ॥
अतएव प्रभो ! यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हूँ ।
तेरी अन्तर लौ से निजअंतर, दीप जलाने आया हूँ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अज्ञानविनाशनाय दीपम् ।

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी ।
मैं राग-द्वेष किया करता, जब परिणति होती जड़ केरी ॥
यों भाव करम या भाव मरण; सदियों से करता आया हूँ ।
नित अनुपम गंध अनल से प्रभु,पर-गन्ध जलाने आया हूँ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः विभावपरिणतिविनाशनाय धूपम् ।

जगमें जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है॥
मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्तिरमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षपदप्राप्तये फलम्।

क्षणभर निजरस को पी चेतन, मिथ्यामल को धो देता है।
काषायिक-भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शनबल पूर्ण प्रगट होता; यह ही अरिहन्त अवस्था है॥
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु! निज गुण का अर्घ बनाऊँगा।
औ निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अरिहन्त अवस्था पाऊँगा॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम्।

जयमाला (बारह भावना)

भव वन में जी भर घूम चुका, कण कणको जी भर भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा॥
झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएँ।
तन जीवन यौवन अस्थिर है, क्षणभंगुर पलमें मुरझाएँ॥
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या।
अशरण मृतकाया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या॥
संसार महा दुखसागर के, प्रभु दुखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन कामिनि प्रासादों में॥

मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सबही आते।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते॥
मेरे न हुये ये मैं इनसे अति, भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीने वाला हूँ॥
जिसके शृङ्गारों में मेरा यह, महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता॥
दिन रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानव वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता॥
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल॥
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वाङ्ग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के झरने फूट पड़ें॥
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकांत विराजें क्षण में जा।
निजलोक हमारा वासा हो, लोकांत बनें फिर हमको क्या॥
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो, दुर्नयतम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊँ, मद मत्सर मोह विनश जावे॥
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जगमें न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी॥

देव शास्त्र गुरु स्तुति

चरणों में आया हूँ प्रभुवर, शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे॥
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला।

परिणाम निकलता है लेकिन, मानों पावक में घी डाला ॥
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख को ही अभिलाषा ।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुखकी मैं परिभाषा ॥
तुमतो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे ।
अतएव झुकें तव चरणों में, जग के माणिक मोती सारे ॥
स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभ नय के झरने झरते हैं ।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भववारिधि तिरते हैं ॥
हे गुरुवर शाश्वत सुखदर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है ।
जगकी नश्वरताका सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है ॥
जब जग विषयों में रच पचकर, गाफिल निद्रा में सोता हो ।
अथवा वह शिवके निष्कंटक, पथ में विषकंटक बोता हो ॥
हो अर्धनिशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों ।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो ॥
करते तप शैल नदी तट पर, तरुतल वर्षाकी झड़ियों में ।
समतारस पान किया करते, सुख दुख दोनों की घड़ियों में ॥
अन्तर ज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझड़ियाँ ।
भवबन्धन तड़ तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अन्तर की कलियाँ ॥
तुम सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियां ।
दिन रात लुटाया करते हो, समशम की अविनश्वर मणियां ॥
हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञानदीप आगम! प्रणाम ।
हे शान्ति त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यम् ।

विदेहक्षेत्रीय विद्यमानविंशतितीर्थङ्करपूजा

[कविवर द्यानतराय कृत]

दीप अढ़ाई मेरु पन, सब तीर्थङ्कर बीस ।
तिन सबकी पूजा करों, मनवचतन धरि सीस ॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्कराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत, ठः ठः । अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।

इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र वंद्य, पद निरमल धारी ।
शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधिसम नीरसों(हो), पूजों तृषा निवार ।
सीमन्धर जिन आदि दे, बीस विदेह मँझार ॥
श्री जिनराज हो, भव तारणतरण जिहाज ॥सीम०

ॐ ह्रीं श्रीविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः जलम् ।

तीन लोक के जीव, पाप आताप सताये ।
तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये ॥
बावन चंदनसों जजों(हो), भ्रमन तपन निरवार ॥सी०

ॐ ह्रीं श्रीविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः चन्दनम् ।

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी ।
तातें तारे बड़ी, भक्ति-नौका जगनामी ॥
तंदुल अमल सुगंधसों(हो), पूजों तुम गुनसार ॥बीस०

ॐ ह्रीं श्रीविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः अक्षतम् ।

भविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रवि से हो ।
यति श्रावक आचार, कथनको तुमहिं बड़े हो ॥

फूल सुवास अनेकसों (हो) पूजों मदन प्रहार ।। सीम०

ॐ ह्रीं श्रीविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः पुष्पम् ।

काम नाग विषधाम, नाश को गरुड़ कहे हो ।

क्षुधा महादव-ज्वाल, तास को मेघ लहे हो ।।

नेवज बहुघृत मिष्ट सों (हो) पूजों भूखविडार ।।सीम०

ॐ ह्रीं श्रीविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः नैवेद्यम् ।

उद्यम होन न देत, सर्व जगमांहि भरयो है ।

मोह महातम घोर, नाश परकाश करयो है ।।

पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योति करतार ।।सीम०

ॐ ह्रीं श्रीविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः दीपम् ।

कर्म आठ सब काठ, भार विस्तार निहारा ।

ध्यान अगनि कर प्रकट, सरब कीनों निरवारा ।।

धूप अनूपम खेवतैं (हो) दुःख जलें निरधार ।।सीम०

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः धूपम् ।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं ।

सबको छिन में जीत, जैन के मेरु खरे हैं ।।

फल अति उत्तमसों जजों(हो) वांछित फल दातार ।।सी०

ओं ह्रीं श्रीविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः फलम् ।

जल फल आठों दर्व, अरघ कर प्रीति धरी है ।

गणधर इन्द्रनिहू तैं, थुति पूरी न करी है ।

'द्यानत' सेवक जानिके (हो) जगतैं लेहु निकार ।।सीम०

ओं ह्रीं श्रीविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः अर्घ्यम् ।

अथ जयमाला

सोरठा--ज्ञान सुधाकर चन्द, भविकखेतहित मेघ हो ।
भ्रमतम भान अमन्द, तीर्थङ्कर वीसों नमों ॥

(चौपाई १६ मात्रा)

सीमन्धर सीमन्धर स्वामी, जुगमंधर जुगमंधर नामी ।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥
जात सुजात केवलज्ञानं, स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं ।
ऋषभानन ऋषिभानन दोषं, अनंतवीरज वीरज कोषं ॥
सौरीप्रभ सौरी गुणमालं, सुगुणविशाल विशालदयालं ।
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चंद्रानन चंद्रानन वर हैं ॥
भद्रबाहु भद्रनि के करता, श्रीभुजङ्ग भुजङ्गम भरता ।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजें, नेमिप्रभ जस नेमि विराजें ॥
वीरसेन वीरं जग जाने, महाभद्र महाभद्र बखाने ।
नमों जसोधर जसधरकारी, नमों अजित वीरजबलधारी ॥
धनुष पांचसै काय विराजें, आयु कोड़ि पूरब सब छाजें ।
समवसरण शोभित जिनराजा, भवजल तारनतरन जिहाजा ॥
सम्यक रत्नत्रयनिधि दानी, लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी ।
शत इन्द्रनि करि वंदित सोहें, सुर नर पशु सबके मन मोहें ॥

दोहा--तुम को पूजे; वन्दना करे, धन्य नर सोय ।
'द्यानत' सरधा मन धरे, सो भी धरमी होय ॥

ओं ह्रीं श्रीविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः महार्घ्यम् ।

विद्यमान बीस तीर्थङ्करों का अर्घ्य

जलैः सुगन्धाक्षतपुष्पचरुभिः, दीपैश्च धूपफलकैः सह चार्घ्यपात्रैः ।
अर्घ्यं करोमि जिनपूजनशांतिहेतोः, शुष्कं भवाब्धि कुरु सेवकानाम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरबाहुसुबाहुसञ्जातस्वयम्प्रभऋषभानना-
नन्तवीर्यसूरप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचन्द्राननभद्रबाहुभुजङ्गमेश्वर
नेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशोऽजितवीर्यश्चेति विंशति-
विद्यमानतीर्थङ्करेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तीसों चौबीसी का अर्घ्य

द्रव्य आठों जु लीना है, अरघ करमें नवीना है ।
पूजतां पाप छीना है, भानुमल जोर कीना है ॥
दीप अढ़ाई सरस राजे, क्षेत्र दश ता विषैं छाजे ।
सातशत बीस जिनराजे, पूजतां पाप सब भाजे ॥

ओं ह्रीं ३० चौबीसी के ७२० जिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यम् ।

अकृत्रिम जिनबिम्बों का अर्घ्य

कृत्याकृत्रिम जिनभवन, तिनमें बिम्ब अनेक ।
तिन सबको स्थाप के, पूज करें सविवेक ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्रावतरावतर संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्, नित्यं त्रिलोकीं गतान् ।
वन्दे भावनव्यन्तरान्द्युतिवरान्, स्वर्गामरा-वासगान् ॥
सद्गन्धाक्षत-पुष्पदाम--चरुकैः, सद्दीप--धूपैः फलैः ।
द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं, दुष्कर्मणां शान्तये ॥

सात करोड़ बहत्तर लाख, सुजिनभवन-पातालमें ।
मध्यलोक में चारसौ अट्ठावन, जजों अघमल टालके ॥
अब लखचौरासीसहससत्यावन, अधिक तेईसरु कहे ।
बिन संख ज्योतिष व्यन्तरालय,जजों सब मन वच ठहे ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यायलस्थजिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यम् ।

वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु, नन्दीश्वरे यानि च मन्दिरेषु ।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके, सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानां ॥

अवनि--तलगतानां, कृत्रिमाकृत्रिमाणां,
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानां ।
इह मनुजकृतानां, देवराजार्चितानां,
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥

जम्बूधातकि-पुष्करार्धवसुधा--क्षेत्रत्रये ये भवाश्-
चन्द्राम्भोजशिखण्डिकण्ठकनक-प्रावृड्घनाभा जिनाः ॥
सम्यग्ज्ञानचरित्र--लक्षणधरा, दग्धाष्ट-कर्मेन्धनाः ।
भूतानागतवर्तमानसमये, तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥
श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ, रजतगिरिवरे, शाल्मलौ जम्बुवृक्षे ।
वक्षारे चैत्यवृक्षे, रतिकररुचके, कुण्डले मानुषाङ्के ॥
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ, दधिमुखशिखरे, व्यन्तरे स्वर्गलोके ।
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे, भुवनमहितले,यानि चैत्यालयानि ॥
द्वौ कुन्देन्दुतुषारहारधवलौ, द्वाविन्द्रनीलप्रभौ ।
द्वौ बन्धूकसमप्रभौ जिनवृषौ, द्वौ च प्रियङ्गुप्रभौ ॥

शेषाः षोडशजन्ममृत्युरहिताः, सन्तप्त--हेमप्रभाः ।
ते सज्ज्ञानदिवाकराः सुरनुताः, सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ॥
नौकोडिसया पणवीसा, तेपणलक्खाण सहससत्तईसा।
नौसेदे अडताला, जिणपडिमाऽकिट्टिमा वन्दे ॥
ओं ह्रीं त्रिलोकसम्बन्ध्यकृत्रिमचैत्यालयजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

इच्छामि भंते चेइयभत्ति काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं अहलोयतिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिण चेइयाणि ताणि सव्वाणि, तीसुवि लोयेसु भवणवासियवाणविंतरजोयसियकप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दव्वेण गन्धेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ह्लाणेण, णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति । अहमवि इह सन्तो तत्थ संताइं णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वन्दामि णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं ।

(इत्याशीर्वादः । यह पढ़ते समय थाल में पुष्प छोड़ता जाय)

अथ पौर्वाह्णिक-माध्याह्निक-आपराह्णिक देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीपञ्चमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(यहां पर नौ बार णमोकार मन्त्र जपना चाहिये)

वर्तमान चतुर्विंशति जिनपूजा

[कविवर विन्द्रावनकृत]

ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय।
चन्द्र पुष्प शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय॥
विमल अनन्त धरम जस उज्ज्वल, शांति कुन्थु अरि मल्ल मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्वप्रभु, वर्धमान पद पुष्प चढ़ाय॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्त-वर्तमानचतुर्विंश-जिनसमूह !
अत्रावतरावतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्।

मुनिमनसम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनक कटोरी धीर, दीनी धार धरा॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्दकन्द सही।
पद जजत हरत भवफन्द, पावत मोक्ष मही॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः जलम्।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रङ्ग भरी।
जिन चरनन देत चढ़ाय, भव आताप हरी॥चौ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः चन्दनम्।

तन्दुल सित सोमसमान, सुन्दर अनियारे।
मुक्ताफल की उनमान, पुञ्ज धरों प्यारे॥चौ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः अक्षतम्।

वर कञ्ज कदम्ब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे।
जिन अग्र धरों गुणमण्ड, कामकलङ्क हरे॥चौ०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः पुष्पम्।

मनमोहन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने ।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधारि हने ॥ चौ०
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः नैवेद्यम् ।

तमखण्डन दीप जगाय,-धारों तुम आगे ।
सब तिमिर मोह क्षय जाय, ज्ञानकला जागे ॥ चौ०
ॐ ह्रीं श्रीवृपभादिवीरान्तेभ्यः दीपम् ।

दश गन्ध हुताशन मांहि, हे प्रभु खेवत हों ।
मिसधूम कर्म जर जांहि, तुम पद सेवत हों ॥ चौ०
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः धूपम् ।

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के लायो ।
देखत दृग मन को प्यार, पूजत सुख पायो ॥ चौ०
ॐ ह्रीं श्रीवृपभादिवीरान्तेभ्यः फलम् ।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों ।
तुमको अरपों भवतार, भवतरि मोक्ष वरों ॥ चौ०
ॐ ह्रीं श्रीवृपभादिवीरान्तेभ्यः अर्घ्यम् ।

जयमाला

श्रीमत तीरथनाथ पद, माथ नाय हित हेत ।
गाऊं गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ॥
य भवतमभंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छकरा ।
१ रकाशक अरिगननाशक, चौबीसों जिनराज वरा ॥

पद्धरिछन्द

जय ऋषभदेव रिषिगण नमन्त, जय अजित जीतवसुअरि तुरंत।
जय संभव भवभय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्दपूर॥
जय सुमति सुमतिदायक दयाल, जय पद्म पद्मद्युतितन रसाल।
जय जय सुपार्श्व भवपाशनाश, जय चंद्र चंद्रद्युतितन प्रकाश॥
जय पुष्पदन्त द्युतिदन्त सेत, जय शीतल शीतल गुणनिकेत।
जय श्रेयनाथ नुत सहजभुज्ज, जय वासवपूजित वासुपुज्ज॥
जय विमल विमलपद देनहार, जयजय अनंत गुणगण अपार।
जय धर्म धर्म शिवशर्म देत, जय शांति शांति-पुष्टी करेत॥
जय कुन्थु कुन्थु आदिक रखेय, जाय अरजिन वसुअरि छयकरेय।
जाय मल्लि मल्ल हत मोहमल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रतशल्ल दल्ल॥
जाय नमि नितवासवनुतसप्रेम, जाय नेमिनाथ वृषचक्र नेम।
जाय पारसनाथ अनाथनाथ, जाय वर्धमान शिवनगर साथ॥

घत्ता

चौबीस जिनन्दा, आनंदकन्दा, पापनिकन्दा, सुखकारी।
तिन पद जुगचन्दा उदय अमन्दा, वासववन्दा, हितधारी॥

ओं ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यः महार्घ्यम्।

सोरठा

भुक्ति मुक्ति दातार, चौवीसों जिनराजवर।
तिन पद मन वच धार, जो पूजै सो शिव लहैं॥

इत्याशीर्वादः, परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

सिद्धपूजा द्रव्याष्टक भावाष्टक व अंचलिका सहित

ऊर्ध्वाधोर-युतं सबिन्दु-सपरं, ब्रह्मस्वरा-वेष्टितं ॥
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं, तत्सन्धितत्त्वान्वितम् ।
अन्तःपत्र-तटेष्व - नाहत-युतं, ह्रींकार-संवेष्ठितं ॥
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः ।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्रावतरावतर संवौषट् इत्याह्वाननम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्

निरस्तकर्म-सम्बन्धं, सूक्ष्मं नित्यं निरामयं ।
वन्देऽहं परमात्मान - ममूर्तमनुपद्रवम् ॥

(सिद्धयन्त्र स्थापित कर थाल में पुष्प छोड़ना चाहिये)

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्मगम्यं हीनादिभावरहितं भववीतकायं
रेवापगावरसरोयमुनोद्भवानां, नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्धचक्रम् ॥

निजमनोमणिभाजनभारया, शमरसैकसुधारसधारया ।
सकलबोधकला-रमणीयकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥

देत तृषा दुख मोह, सो तुमने जीती प्रभू ।
जलसों पूजों मैं तोह, मेरो रोग मिटाइयो ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने धूपम् ।

आनंदकंदजनकं घनकर्ममुक्तं,सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्तिवीतम्
सौरभ्यवासितभुवं हरिचन्दनानां,गंधैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम्

सहजकर्म-कलङ्कविनाशनै-रमलभावसुवासितचन्दनैः ।
अनुपमान-गुणावलिनायकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥

हम भव आतप मांह, तुम न्यारे संसार सों।
कीजे शीतल छांह, चन्दन से पूजा करों॥
ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने पुष्पम्।

सर्वावगाहनगुणं – सुसमाधिनिष्ठं,
सिद्धं स्वरूपनिपुणं कमलं विशालं।
सौगन्ध्यशालि–वनशालि–वराक्षतानां,
पुञ्जैर्यजेशशिनिभै – र्वरसिद्धचक्रम्॥

सहजभावसुनिर्मलतन्दुलैः, सकलदोषविशालविशोधनैः।
अनुपरोधसुबोधनिधानकं, सहजसिद्ध – महं परिपूजये॥

हम औगुण समुदाय, तुम अक्षय सब गुण भरे।
पूजों अक्षत लाय, दोष नाश गुण कीजिये॥
ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षतम्।

नित्यं स्वदेहपरिमाणमनादिसंज्ञं,
द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम्।
मन्दारकुन्दकमलादिवनस्पतीनां,
पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम्॥

समयसारसुपुष्पसुमालया, सहजकर्मकरेण विशोधया।
परमयोगबलेन वशीकृतं, सहजसिद्धमहं परिपूजये॥

काम अग्नितन मोहि, निश्चय शील स्वभाव तुम।
फूल चढ़ाऊँ मैं तोहि, सेवक की बाधा हरो॥
ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने पुष्पम्।

ऊर्ध्वस्वभावगमनं सुमनोऽव्यपेतं ॥
ब्रह्मादिबीजसहितं गगनावभासम् ।
क्षीरान्नमाज्यवटकैः रसपूर्णगर्भै-
र्नित्यं यजे चरुवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥
अकृतबोधसुदिव्यनैवेद्यकै,- र्विहतजन्मजरामरणान्तकैः ।
निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥
हमें क्षुधा दुख भूरि, ज्ञानखड्ग करि तुम हनी ।
मम भवबाधा चूरि, नेवज से पूजा करों ॥
ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने नैवेद्यम् ।
आतङ्कशोकभयरोगमदप्रशांतं,निर्द्वन्द्वभावधरणं महिमानिवेशम् ।
कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै,-र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥
सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकैः रुचिविभूतितमः प्रविनाशनैः ।
निरवधिस्वविकाशप्रकाशनं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥
मोह-तिमिर हम पास, तुम चेतनमय ज्योति हो ।
पूजों दीप प्रकाश, मेरो तिमिर निवारियो ॥
ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने दीपम् ।
पश्यन्समस्त भुवनं युगपन्नितांतं त्रैकाल्यवस्तुविषये निवडप्रदीपं ।
सद्द्रव्यगंधघनसारविमिश्रितानां,धूपैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥
निजगुणाक्षय-रूपसुधूपनैः, स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः ।
विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥
सकल कर्मवन जाल, मुक्तिमांहि सब सुख करैं ।
खेऊँ धूप रसाल, अष्ट कर्म मम जारिये ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने धूपम् ।

सिद्धा सुरादिपतियक्षनरेन्द्रचक्रै,र्ध्येयं शिवं सकलभव्यजनैः सुवंद्यम्

नारिङ्गपूगकदलीफलनारिकेलैः सोऽहं यजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रम्

परमभावफलावलि – सम्पदा,सहज–भाव-कुभावविशोधया ।

निजगुणास्फुरणात्मनिरञ्जनं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥

अन्तराय दुख टार, तुम अनन्त थिरता लहो ।

पूजों फल धर सार, विघन टार शिवसुख करो ॥

ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने फलम् ।

गन्धाढ्यं सुपयोमधुव्रत–गणैः, सङ्गं वरं, चन्दनम् ।

पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं, रम्यं चरुं दीपकम् ॥

धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं, श्रेष्ठं फलं लब्धये ।

सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं, सेनोत्तरं वाँछितम् ॥

नेत्रोल्मीलिविकाश –– भावनिवहैरत्यन्तबोधाय वै ।

वार्गन्धाक्षतपुष्पदाम–चरुकैः, सद्दीप–धूपैः फलैः ।

यश्चिन्तामणिशुद्धभावपरमं, ज्ञानात्मकै–रर्चयेत् ।

सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं, संचर्चयामो वयम् ॥

हम में आठों दोष, भजों अर्घ ले सिद्ध जी ।

दीजे वसु गुण मोय, कर जोड़े द्यानत खड़े ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं, सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनंतवीर्यम्

कर्मौघकक्षदहनं सुखसस्यबीजम् ,वन्दे सदानिरुपमं वरसिद्धचक्रम्

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

त्रैलोक्येश्वरवन्दनीय-चरणाः, प्रापुः श्रियं शाश्वतीम् ।
यानाराध्य निरुद्धचण्डमनसः, सन्तोऽपि तीर्थङ्कराः ॥
सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदा — व्याबाधताद्यै – गुणैः ।
युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

जयमाला

विराग सनातन शान्त निरंश, निरामय निर्भय निर्मल हंस ।
सुधाम विबोधनिधान विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥
विदूरित-संसृतिभाव निरङ्ग, समामृतपूरित देव विसङ्ग ।
अबन्ध कषाय-विहीन विमोह, प्रसीद विशुद्ध-सुसिद्धसमूह ॥
निवारिति दुष्कृत कर्म-विपाश, सदामलकेवल–केलिनिवास ।
भवोदधिपारग शान्त विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥
अनन्तसुखामृतसागर धीर, कलङ्क-रजो–मल-भूरि-समीर ।
विखण्डितकाम विराम विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥
विकारविवर्जित तर्जितशोक, विबोध सुनेत्र-विलोकितलोक ।
विहार विराव विरङ्गविमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥
रजोमल-खेदविमुक्त विगात्र, निरन्तर नित्य सुखामृतपात्र ।
सुदर्शन-राजित-नाथ विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥
नरामर-वन्दित निर्मल-भाव, अनन्त मुनीश्वर पूज्य विहाव ।
सदोदय विश्वमहेश विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥
विदम्भ वितृष्ण विदोष विनिद्र, परापर शङ्करसार वितन्द्र ।
विकोप विरूप विशङ्क विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥

जरामरणोज्झित वीतविहार, विचिन्तित निर्मल निरहङ्कार।
अचिन्त्यचरित्र विदर्प विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥
विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विशोभ।
अनाकुल केवल सार्व विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥

घत्ता—असम–समय–सार, चारुचैतन्य–चिह्नं।
परपरिणति–मुक्तं, पद्मनन्दी–न्द्रवन्द्यम् ॥
निखिलगुण–निकेतं, सिद्धचक्रं विशुद्धं।
स्मरति नमति यो वा, स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम् ॥

ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम्।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनन्त हो।
जगतशिरोमणि सिद्ध सदा जयवन्त हो ॥
ध्यान अगनिकर कर्म कलङ्क सबै दहे।
नित्य निरञ्जन देव सरूपी ह्वै रहे ॥
ज्ञायक ज्ञेयाकार ममत्व निवारकें।
सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकें ॥

दोहा—अविचल ज्ञान प्रकाशतें, गुण अनन्त की खान।
ध्यान धरे सोई पाइये, परम सिद्ध भगवान ॥

[इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपः]

पञ्च परमेष्ठी अर्घ्य

मनमाहिं भक्ति अनादि नमि हों, देव अरिहंत को सही।
श्री सिद्ध पूजों अष्ट - गुणमय, सूरि गुण छत्तीस ही॥
अँग-पूर्वधारी जजों उपाध्याय, साधुगुण अठवीस जी।
ये पंच गुरु निरग्रन्थ मंगल, - दाय श्री जगदीश जी॥

ॐ ह्रीं अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु पञ्चपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यम्।

सप्त ऋषि-अर्घ्य

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु वर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ्य कीजे पावना॥
मन्वादि चारण ऋद्धि धारक, मुनिन की पूजा करों।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरों॥

ॐ ह्रीं श्रीमनु-सुरमनु-श्रीनिचय-सर्वसुन्दर-जयवान-विनय लालस-जयमित्रेति सप्तऋषिभ्य: अर्घ्यम्।

निर्वाणक्षेत्र अर्घ्य

जल गन्ध अच्छत फूल चरु, फल दीप धूपायन धरों।
"द्यानत" करो निरभय जगततैं, जोर कर विनती करों॥
सम्मेदगिरि गिरनार चम्पा, पावापुर कैलाश को।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि निवास को॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्य: अर्घ्यम्।

महार्घ्य

गीता-छन्द

मैं देव श्री अरिहन्त पूजों, सिद्ध पूजों चाव सों ।
आचार्य श्री उवझाय पूजों, साधु पूजों, भाव सों ॥
अरिहन्त-भाषित वैन पूजों, द्वादशांग रचे गनी ।
पूजों दिगम्बर गुरु-चरन, शिवहेत सब आशा हनी ॥
सर्वज्ञ--भाषित धर्म दशविध, दया-मय पूजों सदा ।
जजि भावना षोडस रतनत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा ॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम, चैत्य चैत्यालय जजों ।
पन मेरु नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजों ॥
कैलास श्री सम्मेद श्री, गिरनार गिरि पूजों सदा ।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा ॥
चौबीस श्री जिनराज पूजों, बीस क्षेत्र विदेह के ।
नामावली इक सहस वसु, जय होय पति शिवगेह के ॥

दोहा—जल गन्धाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय ।
सर्वपूज्य पद पूजहूँ, बहुविध भक्ति बढ़ाय ॥

ओं ह्रीं सर्वनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
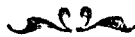
शान्तिपाठ (संस्कृत)

[शान्ति-भक्ति]

शान्तिजिनं शशि-निर्मल-वक्त्रं, शील-गुण-व्रत-संयम-पात्रम् ।
अष्टशतार्चित-लक्षण-गात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम् ॥
पञ्चमभीप्सित-चक्रधराणां, पूजितमिन्द्र-नरेन्द्र-गणैश्च ।
शान्तिकरं गण-शान्तिमभीप्सुः, षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥
दिव्य-तरुः सुर-पुष्प-सुवृष्टिः, दुन्दुभिरासन-योजन--घोषौ ।
आतपवारण-चामर-युग्मे, यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥
तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं, शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि ।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं, मह्यमरं पठते परमां च ॥

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः,
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पाद-पद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपा--
स्तीर्थङ्कराः सतत-शान्तिकरा भवन्तु ॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥
क्षेमं सर्वप्रजानां, प्रभवतु बलवान्, धार्मिको भूमिपालः ।
काले काले च सम्यक्, वर्षतु मघवा, व्याधयो यान्तु नाशम् ॥
दुर्भिक्षं चौर-मारी, क्षणमपि जगतां, मास्मभूज्जीवलोके ।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं, प्रभवतु सततं, सर्वसौख्य-प्रदायि ॥

प्रध्वस्त - घाति - कर्माणः, केवलज्ञान-भास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥

इच्छामि भंते शांतिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्याणसंपरणाणं अट्ठमहापडिहेरसहियाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं वत्तीसदेवेंदमणिमयमउडमत्थयमहियाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जदि-अणगारोवगूढाणं थुइसयसहस्सणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिम-मंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं ।

आत्मपवित्रीकरणार्थं सकलदोषनिराकरणार्थं सर्वमलातिचारविशुद्ध्यर्थं सर्वशान्त्यर्थं शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(नौ वार णमोकार मन्त्र पढ़ने के बाद इष्ट प्रार्थना पढ़े)

इष्ट-प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः, सङ्गतिः सर्वदार्य्यैः ।
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा, दोषवादे च मौनम् ॥
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो, भावना चात्मतत्त्वे ।
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे, यावदेतेऽपवर्गाः ॥

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पद-द्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावत्, यावन्निर्वाण -- सम्प्राप्तिः ॥
अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ता-हीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य, मज्झवि दुक्ख--क्खयं दिन्तु ॥
दुःक्ख-खओ कम्म-खओ, समाहिमरणं च बोहि-लाहो य ।
मम होउ जगद्-बन्धव, तव जिणवर चरण -- सरणेण ॥

स्तुति

[श्री पद्मनन्दी यतिः]

त्रिभुवन-गुरो जिनेश्वर ! परमानन्दैक-कारण ! कुरुष्व ।
मयि किङ्करेऽत्र करुणां, यथा--तथा जायते मुक्तिः ॥
निर्विण्णोऽहं नितरा--मर्हन् ! बहु-दुक्खया भवस्थित्या ।
अपुनर्भवाय भवहर ! कुरु करुणामत्र मयि दीने ॥
उद्धर मां पतितमतो, विषमाद् भवकूपतः कृपां कृत्वा ।
अर्हन्नलमुद्धरणे, त्वमसीति पुनः पुनः वच्मि ॥
त्वं कारुणिकः स्वामी, त्वमेव शरणं जिनेश ! तेनाहम् ।
मोह--रिपु--दलित--मानं, फूत्करणं तव पुरः कुर्वे ॥
ग्रामपतेरपि करुणा, परेण केनाप्युपद्रिते पुंसि ।
जगतां प्रभो ! न किं तव, जिन ! मयि खलु कर्मभिः प्रहते ॥
अपहर मम जन्म, दयां--कृत्वा चेत्येकवचसि वक्तव्ये ।
तेनातिदग्ध इति मे, देव ! बभूव प्रलापित्वम् ॥

तव जिनवर ! चरणाब्ज-युगं, करुणामृत-शीतलं यावत् ।
संसार - ताप - तप्तः, करोमि हृदि तावदेव सुखी ॥
जगदेक-शरण ! भगवन् ! नौमि श्रीपद्मनन्दितगुणौघ !
किं बहुना ? कुरु करुणा-मत्र जने शरणमापन्ने ॥

ठोना में पुष्प क्षेप कर नौ वार णमोकार मन्त्र पढ़ना ।
परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।

विसर्जन-पाठः

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि, शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु, त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥ १ ॥
आह्वानं नैव जानामि, नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि, क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥
मन्त्र-हीनं क्रिया-हीनं, द्रव्य-हीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ३ ॥
आहूता ये पुरा देवा, लब्धभागा यथाक्रमम् ।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या, सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥४॥

अथ शान्तिपाठ भाषा

[अनुवादक–पं० नाथूराम प्रेमी]

शान्तिपाठ वोलते समय थाल में पुष्पक्षेपण करते रहना चाहिये।

चौपाई १६ मात्रा

शान्तिनाथ मुख शशि उनहारी, शील गुणव्रत संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजें, निरखत नयन कमलदल लाजें॥
पंचम चक्रवर्ति पद धारी, सोलम तीर्थङ्कर सुखकारी।
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिननायक, नमों शांतिहित शांतिविधायक॥
दिव्य विटप पुहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी॥
शान्तिजिनेश शान्ति सुखदाई, जगतपूज्य पूजों शिर नाई।
परम शान्ति दीजे हम सबको, पढ़ें जिन्हें पुनि चार संघ को॥

वसन्ततिलका छन्द

पूजें जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके।
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके॥
सो शान्तिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप।
मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप॥

इन्द्रवज्रा छन्द

संपूजकों को, प्रतिपालकों को।
यतीन को औ, यतिनायकों को॥
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले।
कीजे सुखी हे जिन! शान्ति को दे॥

स्रग्धरा छन्द

होवे सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समै पै, तिल भर न रहे, व्याधियों का अँदेशा॥
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरते, हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारें, जिनवर वृषको, जो सदा सौख्यकारी॥
दोहा—घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवल-राज॥
शान्ति करें सब जगत में, वृषभादिक जिनराज॥

मन्दाक्रान्ता छन्द

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का।
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाँकूँ सभी का॥
बोलूँ प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तौलों सेऊँ चरण जिनके मोक्ष जौलों न पाऊँ॥

आर्या छन्द

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तबलों लीन रहे प्रभु, जबलों पाया न मुक्तिपद मैंने॥
अक्षर पद मात्रा से, दूषित जो कछु कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणाकरि पुनि छुड़ाहु भवदुखसे॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी।
मरण-समाधि-सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय हो सुबोध सुखकारी॥

❀ अथ भाषा स्तुति ❀

तुम तरणतारण भवनिवारण, भविकमन आनन्दनो ।
श्रीनाभिनन्दन जगतवन्दन, आदिनाथ निरञ्जनो ॥
तुम आदिनाथ अनादि सेऊँ, सेय पद पूजा करूँ ।
कैलाश गिरि पर रिषभजिनवर, पद-कमल हृदये धरूँ ॥
तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्ट-कर्म महाबली ।
यह विरद सुनकर शरण आयो, कृपा कीजे नाथ जी ॥
तुम चन्द्रवदन सुचन्द्रलच्छन, चन्द्रपुर परमेश्वरो ।
महासेन-नन्दन, जगत-वन्दन, चन्द्रनाथ जिनेश्वरो ॥
तुम शांति पांचकल्याण पूजों, शुद्ध मन वच काय जू ।
दुर्भिक्ष चोरी पाप नाशन, विघन जाय पलाय जू ॥
तुम बालब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमल विकाशनो ।
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ॥
जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसेन्या वश करी ।
चारित्ररथ चढ़ि भये दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥
कन्दर्प दर्प सुसर्प लच्छण, कमठ शठ निर्मद कियो ।
अश्वसेननन्दन जगतवन्दन, सकल सङ्घ मङ्गल कियो ॥
जिन धरी बालकपने दीक्षा, कमठ मान विदारके ।
श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र के पद, मैं नमों शिर धारके ॥
तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जान दया करो ।
सिद्धार्थनन्दन जगत-वन्दन, महावीर जिनेश्वरो ॥

छत्र तीन सोहैं, सुर नर मोहैं, वीनती अब धारिये।
कर जोड़ि सेवक वीनवें प्रभु आवागमन निवारिये॥
अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहों।
कर जोड़ यों वरदान मांगों, मोक्षथल जावत लहों॥
जो एक माहीं एक राजे, एक मांहि अनेकनो।
इक अनेक की नहीं संख्या, नमों सिद्ध निरञ्जनो॥

मैं तुम चरणकमल गुणगाय, बहुविधि भक्ति करों मनलाय।
जनम जनम प्रभु पाऊँ तोहि, यह सेवाफल दीजे मोहि॥
कृपा तिहारी ऐसी होय, जामन मरन मिटावो मोय।
बार बार मैं विनती करों, तुम सेये भवसागर तरों॥
नाम लेत सब दुख मिटजाय, तुम दर्शन देखो प्रभु आय।
तुम हो प्रभु देवन के देव, मैं तो करों चरण तव सेव॥
जिनपूजा तें सब सुख होय, जिनपूजा सम और न कोय।
जिनपूजा तें स्वर्गविमान, अनुक्रम तैं पावे निर्वान॥
मैं आयो पूजन के काज, मेरो जन्म सफल भयो आज।
पूजा करके नवाऊँ शीश, मुझ अपराध क्षमहु जगदीश॥

सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान।
मो गरीब की वीनती, सुन लीजे भगवान॥
पूजन करते देव की, आदि मध्य अवसान।
सुरगन के सुख भोगकर, पावे मोक्ष निदान॥

जैसी महिमा तुम विषैं; और धरे नहिं कोय ।
ज्यों सूरज में जोति है, नहिं तारागण सोय ॥
नाथ तिहारे नाम तें, अघ छिन मांहि पलाय ।
ज्यों दिनकर परकाश तें,अन्धकार विनशाय ॥
बहुत प्रशंसा क्या करूँ,मैं प्रभु बहुत अजान ।
पूजाविधि जानूँ नहीं शरण राखि भगवान ॥

विसर्जन पाठ–भाषा

विन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय ।
तुव प्रसाद तें परमगुरु; सो सब पूरन होय ।
पूजनविधि जानों नहीं, नहिं जानों आह्वान ।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करो भगवान ॥
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव ।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव ॥
आये जो जो देवगण, पूजे भक्ति–प्रमान ।
ते सब जावहु कृपाकर, अपने अपने थान ॥

[पुष्पांजलिं क्षिपेत्]

ठोना में पुष्प क्षेपकर नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ना ।

पार्श्व भक्ति

भक्ती बेकरार है, आनंद अपार है ॥
आजा प्रभु पारस, तेरी जय-जयकार है ॥टेक॥

मङ्गल आरति लेकर स्वामी, आया तेरे द्वार जी ।
दर्शन देना पारस प्रभुजी, होवे आतमज्ञान जी ॥टेक॥

देव सभी दुनियां के देखे, देखे देश विदेश जी ।
तुम सम उत्तम देव न देखा, हे पारस परमेश जी ॥टेक॥

चन्दा देखे सूरज देखे, वा देखे तारागण जी ।
तुम सम ज्ञानज्योति ना देखा, हे पारस परमेश जी ॥टेक॥

यह तन तेरा इकदिन चेतन, मिट्टी में मिल जायगा ।
तन्मय कर प्रभु पार्श्वध्यान में, तो पारस बन जायगा ॥टेक॥

श्री सोलहकरण पूजा

[कविवर द्यानतराय जी]

अडिल्ल छन्द

सोलह कारण भाय, तीर्थङ्कर जे भये;
हरषे इन्द्र अपार, मेरु पर ले गये।
पूजा करि निज धन्य, लखो बहु चावसों,
हम हूँ षोडशकारण भावें भावसों ॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणानि अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् इत्याव्हाननम्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत वषट् सन्निधीकरणम्।

अथाष्टकम्।

कंचनझारी निर्मल नीर, पूजों जिनवर गुण गम्भीर।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरश विशुद्ध भावना भाय; सोलह तीर्थङ्कर पद पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः जलम्।

चन्दन घसों कपूर मिलाय, पूजों श्री जिनवर के पाय।
परम गुरु हो; जय जय नाथ परम गुरु हो ॥द०॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः चन्दनम्।

तन्दुल धवल अखण्ड अनूप, पूजों जिनवर तिहुं जगभूप।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो। द०॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः अक्षतम्।

फूल सुगन्ध मधुप गुंजार, पूजों जिनवर जग आधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥द॥
ओं ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः पुष्पम्।

सद नेवज बहुविध पकवान, पूजों श्री जिनवर गुणखान।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥द०॥
ओं ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः नैवेद्यम्।

दीपकज्योति तिमिर चयकार, पूजों श्री जिन केवलधार।
परम गुरु हो, जज जय नाथ परम गुरु हो ॥द०॥
ओं ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः दीपम्।

अगर कपूर गन्ध शुभ खेय श्री जिनवर आगें महकेय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥द०॥
ओं ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः धूपम्।

श्रीफल आदि बहुत फल सार, पूजों जिन वांछित दातार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥द०॥
ओं ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः फलम्।

जल फल आठों द्रव्य चढ़ाय,'द्यानत' वरत करों मन लाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥द०॥
ओं ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः अर्घ्यम्।

जयमाला

दोहा-षोडशकारण जे करें, हरें चतुरगति वास।
पाप पुण्य सब नाश के, ज्ञान-भानु परकाश ॥

चौपाई छन्द

दरश विशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महा धारे जो प्रानो, शिव वनिताकी सखी बखानी॥
शील सदा दृढ़ जो नर पाले, सो औरन की आपद टाले।
ज्ञानाभ्यास करे मन माहीं, ताके मोह महातम नाहीं॥
जो संवेग भाव विस्तारे, स्वर्गमुक्तिपद आप निहारे।
दान देय मन हर्ष विशेषै, इस भव यश परभव सुख देखै॥
जो तप तपै खपै अभिलाषा, चूरे कर्मशिखर गुरु भाषा।
साधुसमाधि सदा मन लावे, तिहुँजग भोग भोगि शिव जावे॥
निशदिन वैयावृत्य करैया, सो निश्चय भवनीर तरैया।
जो अरिहन्त भक्ति मन आने, सो जन विषयकषाय न जाने॥
जो आचारज भक्ति करै हैं, सो निरमल आचार धरे हैं।
बहुश्रुतवन्त भक्ति जो करई, सो नर संपूरण श्रुत धरई॥
प्रवचनभक्ति करे जो ज्ञाता, लहे ज्ञान परमानंद दाता।
षट् आवश्यक काल जो साधे, सोई रत्नत्रय आराधे॥
धर्मप्रभाव करे जो ज्ञानी, तिन शिवमारग रीति पिछानी॥
वत्सल अंग सदा जो ध्यावे, सो तीर्थङ्कर पदवी पावे॥

दोहा—ये ही षोडश भावना, सहित धरे व्रत जोय।
देव इन्द्र नागेन्द्र पद, 'द्यानत' शिवपद होय॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः अर्घ्यम्।

———

श्री दशलक्षणधर्म पूजा

[कविवर द्यानतरायजी]

अडिल्ल छन्द--उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं।
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं॥
आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं।
चहुँ गति दुखतें काढ़ि मुकति करतार हैं॥१॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्रावतरावतर संवौषट् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

सोरठा—हेमाचल की धार, मुनिचितसम शीतल सुरभि।
भव आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा॥१॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः जलम्।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा॥२॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः चन्दनम्।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्रसमान शुभ।
भव आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा॥३॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः अक्षतम्।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरधलोक लों।
भव आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा॥४॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः पुष्पम्।

नेवज विविध निहार, उत्तम षटरस संजुगत।
भव आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा॥५॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः नैवेद्यम्।

बाति कर्पूर सुधार, दीपक जोति सुहावनी।
भव आताप निवार, दशलच्छण पूजों सदा ॥६॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः दीपम्।
अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।
भव आताप निवार, दशलच्छण पूजों सदा ॥७॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः धूपम्।
फल की जाति अपार, घ्राण नयन मन मोहने।
भव आताप निवार, दशलच्छण पूजों सदा ॥८॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः फलम्।
आठों दरब सँवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।
भव आताप निवार, दशलच्छण पूजों सदा ॥९॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः अर्घ्यम्।

छमा धर्म

दोहा—पीड़ैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविध करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीता छन्द

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इहभव जस परभव सुखदाई।
गाली सुन मन खेद न आनो, गुनको औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीने, बांध मार बहुविध करे।
घरतें निकारे तन विदारे, वैर जो न तहां धरे ॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध अग्नि बुझाय प्रानी, साम्यजल ले सीयरा ॥१॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

मार्दव धर्म

मान महा विषरूप, करहि नीचगति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावे प्रानी सदा ॥२॥

उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करन को कौन ठिकाना।
वस्यो निगोद मांहि तैं आया, दमरी रूंकन भाग बिकाया ॥
रूंकन बिकाया भाग वशतैं, देव एकेन्द्रिय भया।
उत्तम मुआ चांडाल हूआ, भूप कीड़ी में गया ॥
जीतव्य-जोवन--धन-गुमान, कहा करे जल-बुदबुदा।
करि विनय बहुगुन बड़े जन की, ज्ञान का पावे उदा ॥२॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

आर्जव धर्म

कपट न कीजे कोय, चोरन के पुर ना वसे।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा ॥३॥

उत्तम आर्जव रीति बखानी; रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मनमें हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तनसों करिये ॥
करिये सरल तिहुं जोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करे जैसा लखे तैसा, कपट -- प्रीति अँगारसी ॥
नहिं लहे लछमी अधिक छलकरि, करमबन्ध विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवे, आपदा नहिं पेखता ॥३॥

ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

सत्य धर्म

कठिन वचन मत बोल, परनिन्दा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमें सुखी ॥४॥

उत्तम सत्यवरत पालीजे, पर विश्वासघात नहिं कीजे।
सांचे झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचे को दरव सब दीजिये।
मुनिराज श्रावक की प्रतिष्ठा, साँचगुन लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठ वसुनृप, धरम का भूपति भया।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया ॥४॥
ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

शौच धर्म

धर हिरदे सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में ॥५॥

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पापको बाप बखाना।
आसा-पास महा दुखदानी, सुख पावे सन्तोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हावे, अशुचि दोष सुभावतैं ॥
ऊपर अमल मल भरयो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैलो सुगुन थैली, शौचगुन साधू लहै ॥५॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

संयम धर्म

काय छहों प्रतिपाल, पञ्चेन्द्री मन वश करो।
संयम रतन सँभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं ॥६।

उत्तम संयम गहु मन मेरे, भव भव के भाजें अघ तेरे।
सुरग नरक पशु गति में नाहीं, आलस हरन करन सुख ठाहीं ॥
ठाहीं धरा जल अग्नि मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जगकीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जम मुख बीच में ॥६।

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

तप धर्म

तप चाहें सुरराय, करम-शिखर को वज्र है।
द्वादश विध सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम ॥७।

उत्तम तप सब माहिं बखाना, करम-शिखर को वज्र समाना।
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशुतन धारा ॥
धारा मनुपतन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्री जैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयपयोगता ॥
अति महादुर्लभ त्याग विषय, -कषाय जो तप आदरें।
नरभव अनूपम कनकघर पर, मणिमयी कलशा धरें ॥७॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

सत्य धर्म

कठिन वचन मत बोल, परनिन्दा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमें सुखी ॥४॥

उत्तम सत्यवरत पालीजे, पर विश्वासघात नहिं कीजे।
सांचे झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचे को दरब सब दीजिये।
मुनिराज श्रावक की प्रतिष्ठा, साँचगुन लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठ बसुनृप, धरम का भूपति भया।
बच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया ॥४॥
ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

शौच धर्म

धर हिरदे सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में ॥५॥

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पापको बाप बखाना।
आसा-पास महा दुखदानी, सुख पावे सन्तोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हावे, अशुचि दोष सुभावतैं ॥
ऊपर अमल मल भरयो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन थैली, शौचगुन साधू लहै ॥५॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

संयम धर्म

काय छहों प्रतिपाल, पञ्चेन्द्री मन वश करो ।
संयम रतन सँभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं ॥६॥

उत्तम संयम गहु मन मेरे, भव भव के भाजें अघ तेरे ।
सुरग नरक पशु गति में नाहीं, आलस हरन करन सुख ठाहीं ॥
ठाहीं धरा जल अग्नि मारुत, रूख त्रस करुना धरो ।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जगकीच में ।
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जम मुख बीच में ॥६॥

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

तप धर्म

तप चाहें सुरराय, करम-शिखर को वज्र है ।
द्वादश विध सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम ॥७॥

उत्तम तप सब माहिं बखाना, करम-शिखर को वज्र समाना ।
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशुतन धारा ॥
धारा मनुपतन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता ।
श्री जैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयपयोगता ॥
अति महादुर्लभ त्याग विषय, – कषाय जो तप आदरैं ।
नरभव अनूपम कनकघर पर, मणिमयी कलशा धरैं ॥७॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

त्याग धर्म

दान चार परकार, चार सङ्घ को दीजिये ।
धन बिजली उनहार, नरभव लाहो लीजिये ॥८॥

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषधि शास्त्र अभय आहारा ।
निहचै रागद्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै ॥
दोनों सँभारै कूपजल सम, दरब घर में परिनया ।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया ॥
धनि साध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को ।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को ॥८॥

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

आकिञ्चन धर्म

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करैं मुनिराज जी ।
तिसनाभाव उछेद, घटती जान घटाइये ॥९॥

उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह चिन्ता दुखही मानो ।
फांस तनकसी तनमें साले, चाह लँगोटी की दुख भाले ॥
भाले न समता सुख कभी, नर बिना मुनिमुद्रा धरैं ।
धनि नगन पर तन नगन ठाड़े, सुर असुर पायनि परैं ॥
घरमांहि तिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसार सों ।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगार सों ॥९॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यंम् निर्वपामीति स्वाहा ।

ब्रह्मचर्य धर्म

शीलबाड़ि नौ राख, ब्रह्मभाव अन्तर लखो ।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा ॥१॥

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनो, माता बहिन सुता पहिचानो ।
सहैं बाणवर्षा बहु सूरे, टिकैं न नयन बान लखि कूरे ॥
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करें ।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काक ज्यों चोंचें भरें ॥
संसार में विषबेल नारी, तजि भये जोगीश्वरा ।
'द्यानत' धरम दश पैड़ि चढ़िके, शिवमहल में पग धरा ॥१०॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यंम् निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा—दशलक्षण वन्दों सदा, मनवांछित फलदाय ।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय ॥१॥

वेसरी छन्द

उत्तम छिमा जहां मन होई, अन्तर बाहर शत्रु न कोई ।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नाना भेद ज्ञान सब भासै ॥
उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुर्गति त्यागि सुगति उपजावे ।
उत्तम सत्य वचन मुख बोले, सो प्रानी संसार न डोले ॥
उत्तम शौच लोभपरिहारी, सन्तोषी गुणरतन भण्डारी ।
उत्तम संयम पाले ज्ञाता, नरभव सफल करे ले साता ॥

उत्तम तप निरवांछित पाले, सो नर करमशत्रु को टाले।
उत्तम त्याग करे जो कोई, भोगभूमि सुर शिवसुख होई॥
उत्तम आकिंचन व्रत धारे, परमसमाधि दशा विसतारे।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावे, नर सुर सहित मुकति फल पावे॥

दोहा—करे करम की निरजरा, भवपींजरा विनाशि।
अजर अमर पद को लहे, 'द्यानत' सुखकी राशि॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यः पूर्णार्घ्यम्।

श्री पंचमेरु पूजा

(कविवर द्यानतराय जी)

गीता छन्द

तीर्थङ्करों के न्हवन जलतें, भये तीरथ शर्मदा।
तातें प्रदच्छन देत सुरगन, पंच मेरुन की सदा॥
दो जलधि ढाई द्वीप में सब, गनत मूल विराजहीं।
पूजों असी जिनधाम प्रतिमा, होंहिं सुख दुख भाजहीं॥

ओं ह्रीं श्री पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्रावतरावतर संवौषट् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अथाष्टक। चौपाई आंचलीवद्ध (१५ मात्रा)

शीतल मिष्ट सुवास मिलाय, जलसों पूजों श्रीजिनराय।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥
पांचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा कों करों प्रनाम।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः जलम्।

जल केसर करपूर मिलाय, गन्धसों पूजों श्रीजिनराय।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पां०

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः चन्दनम्।

अमल अखण्ड सुगन्ध सुहाय, अक्षतसों पूजों जिनराय।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पां०

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः अक्षतम्।

वरन अनेक रहे महकाय, फूलनसों पूजों जिनराय।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पां०
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्वन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनविम्वेभ्यः पुष्पम्।
मनवांछित वहु तुरत वनाय, चरु सों पूजों श्रीजिनराय।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पां०
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्वन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनविम्वेभ्यः नैवेद्यम्।
तमहर उज्ज्वल जोति जगाय, दीप सों पूजों श्रीजिनराय।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पां०
ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्वन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनविम्वेभ्यः दीपम्।
खेउँ अगर परिमल अधिकाय, धूप सों पूजों श्रीजिनराय।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पां०
ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्वन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनविम्वेभ्यः धूपम्।
सुरस सुवर्ण सुगन्ध सुहाय, फलसों पूजों श्री जिनराय।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पां०
ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्वन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनविम्वेभ्यः फलम्।
आठ दरव मय अरघ वनाय, 'द्यानत' पूजों श्रीजिनराय।
महा - सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पां०
ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्वन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनविम्वेभ्यः अर्घ्यम्।

जयमाला (सोरठा)

प्रथम सुदर्शन स्वामि, विजय अचल मन्दर महा।
विद्युन्माली — नाम, पञ्चमेरु जग में प्रगट ॥

वेसरी छन्द

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजे, भद्रशाल वन भूपर छाजे ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन कर वन्दना हमारी ॥
ऊपर पांच शतक पर सोहे, नन्दनवन देखत मन मोहे ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन कर वन्दना हमारी ॥
साढ़े वासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन कर वन्दना हमारी ॥
ऊँचो जोजन सहज छतीसं, पांडुकवन सोहे गिरिसीसं ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन कर वन्दना हमारी ॥
चारों मेरु समान बखानों भूपर भद्रसाल चहुँ जानो ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन कर वन्दना हमारी ॥
ऊँचे पांच शतक पर भाखे, चारों नन्दनवन अभिलाखे ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन कर वन्दना हमारी ॥
साढ़े पचपन सहस उतङ्गा, वन सौमनस चार बहु रङ्गा ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन कर वन्दना हमारी ॥
उच्च अठाइस सहस वताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन कर वन्दना हमारी ॥
सुर नर चारण वन्दन आवें, सो शोभा हम किहि मुख गावें ।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मनवचतन कर वन्दना हमारी ॥

दोहा—पञ्चमेरु की आरती, पढ़ै सुने जो कोय ।
'द्यानत' फल जानें प्रभू, तुरत महासुख होय ॥

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यम् ।

नन्दीश्वर द्वीप (आष्टाह्निका) पूजा

[कविवर द्यानतरायजी]

अडिल्ल छन्द

सरब परब में बड़ो, अठाई परब है ।
नन्दीश्वर सुर जांहि, लिये वसु दरब हैं ॥
हममें सकति सो नांहि, यहां करि थापना ।
पूजों जिनगृह प्रतिमा, है हित आपना ॥१॥

ओं ह्लीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

कंचन मणिमय भृङ्गार, तीरथ नीर भरा ।
तिहं धार दई निरवार, जामन मरन जरा ॥
नन्दीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पुञ्ज करों ।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंदभाव धरों ॥२॥
नन्दीश्वर द्वीप महान, चारों दिश सोहै ।
बावन जिनमन्दिर जान, सुर नर मन मोहै ॥

ओं ह्लीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनबिम्बेभ्यः जलम् ।

भवतप हर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं ।
प्रभु यह गुण कीजे सांच, आयो तुम ठाहीं ॥ नन्दी०

ओं ह्लीं नन्दीश्वरदीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनबिम्बेभ्यः चन्दनम् ।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुञ्ज धरे सोहैं ।
सब जीते अक्षसमाज, तुम सम अरु को है ॥ नन्दी०

ॐ ह्लीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनबिम्बेभ्यः अक्षतम् ।

तुम कामविनाशक देव, ध्याऊँ फूलन सों ।
लहि शील लच्मी एव, छूटूं शूलन सों ॥ नन्दी०

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनविम्वेभ्यः पुष्पम् ।

नेवज इन्द्रिय वलकार, सो तुमने चूरा ।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा ॥ नन्दी०

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनविम्वेभ्यः नैवेद्यम् ।

दीपक की ज्योति प्रकाश, तुम तन मांहिं लसे ।
टूटे करमन की राश, ज्ञानकणी दरसे ॥ नन्दी०

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनविम्वेभ्यः दीपम् ।

कृष्णागरु धूप सुवास, दश दिशि नारि वरे ।
अति हरपभाव परकाश, मानो नृत्य करे ॥ नन्दी०

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनविम्वेभ्यः धूपम् ।

वहुविध फल ले तिहुंकाल, आनंद राचत हैं ।
तुम शिवफल देहु दयाल, सो हम जांचत हैं ॥ नन्दी०

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनविम्वेभ्यः फलम् ।

यह अर्घ्य कियो निज हेतु, तुम को अरपत हों ।
'द्यानत' कीनो शिवखेत, भूमि समरपत हों ॥ नन्दी०

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनविम्वेभ्यः अर्घ्यम् ।

जयमाला । दोहा

कार्तिक फागुन साढ़के, अंत आठ दिन मांहि ।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजें इह ठाहिं ॥१॥

छन्द

एकसौ त्रेसठ कोड़ि जोजन महा,
लाख चौरासिया एकदिशि में लहा ।
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥२।

चारदिशि चार अञ्जनगिरी राजहीं;
सहस चौरासिया एक दिशि छाजहीं ।
ढोलसम गोल ऊपर तले सुन्दरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥३॥

एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी,
एक इक लाख जोजन अमल जल भरी ।
चहुँदिशा चार वन लाख जोजन वरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥४॥

सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं,
सहस दश महा-जोजन लखत ही सुखं ।
बावरी कोन दो मांहि दो रतिकरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥५॥

शैल बत्तीस इक सहज जोजन कहे,
चार सोलै मिले सर्व बावन सहे ।
एक इक सीस पर एक जिनमन्दिरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥६॥

बिंब आठ एकसौ रतनमय सोहही,
देव देवी सरब नयन मन मोहही।
पांचसै धनप तन पद्म आसन परं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥७॥
लाल नख मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं,
स्याम रंग भौंह सिरकेश छवि देत हैं।
वचन बोलत मनों हँसत कालुपहरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥८॥
कोटि शशि भानुदुति तेज छिप जात हैं,
महा वैराग्य परिणाम ठहरात हैं।
वयन नहिं कहैं लखि होत सम्यकवरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥९॥

सोरठा

नन्दीश्वर जिनधाम, प्रतिमा महिमा को कहै।
'द्यानत' लीनों नाम, यही भगति शिवसुख करै॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घ्यम्।

———

श्री रत्नत्रयपूजा

[कविवर द्यानतराय]

चहुंगतिफणिविप हरन मणि, दुख–पावक–जलधार ।
शिवसुख सुधा सरोवरी, सम्यक्त्रयी निहार ॥१॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयधर्म ! अत्रावतरावतर सवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सोरठा

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो ।
जनम रोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥१॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय जन्मरोगविनाशनाय जलम् ।

चन्दन केशर गार, परिमल महा सुगन्धमय ।
जनम रोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥२॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय भवातापविनाशनाय चन्दनम् ।

तन्दुल अमल चितार, वासमती सुखदास के ।
जनम रोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥३॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् ।

महँकें फूल अपार, अलि गुंजें ज्यों थुति करें ।
जनम रोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥४॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम् ।

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत ।
जनम रोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥५॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् ।

दीप रतनमय सार, जोति प्रकाशै जगत में।
जनम रोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥६॥
ओं ह्लीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशाय दीपम्।
धूप सुवास विथार, चन्दन अगर कपूर की।
जनम रोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥७॥
ओं ह्लीं सम्यग्रत्नत्रयाय अष्टकर्मविनाशनाय धूपम्।
फल शोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल।
जनम रोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥८॥
ओं ह्लीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलम्।
आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम रोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥९॥
ओं ह्लीं सम्यग्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम्।
सम्यक दर्शन ज्ञान, व्रत शिवमग तीनों मयी।
पार उतारण जान, 'द्यानत' पूजों व्रतसहित ॥
ओं ह्लीं सम्यग्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ सम्यग्दर्शन पूजा

दोहा

सिद्ध अष्ट गुणमय प्रगट, जीव मुक्ति-सोपान।
ज्ञान चरित जा बिन विफल, सम्यकदर्श प्रमान ॥१॥
ओं ह्लीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शन! अत्रावतरावतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् सन्निधापनम्।

सोरठा

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरे मल छय करे ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजों सदा ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय जलम् ।

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजों सदा ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय चन्दनम् ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख करे ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजों सदा ॥३॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अक्षतम् ।

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजों सदा ॥४॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय पुष्पम् ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजों सदा ॥५॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यम् ।

दीप ज्योति तमहार, घट पट परकाशै महा ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजों सदा ॥६॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय दीपम् ।

धूप घ्राण सुखकार, रोग निधन (विघन) जड़ता हरे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजों सदा ॥७॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय धूपम् ।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर शिवफल करे।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजों सदा ॥८॥

ओं ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय फलम्।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजों सदा ॥९॥

ओं ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यम्।

※ जयमाला-दोहा ※

आप आप निहचै लखे, तत्त्व-प्रीति व्योहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट-गुन सार ॥

चौपाई-मिश्रित, गीताछन्द

सम्यग्दर्शन रतन गहीजे, जिनवच में सन्देह न कीजे।
इस भव विभवचाह दुखदानी, परभव भोग चहे मत प्रानी ॥
प्रानी गिलानि न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
परदोष ढकिये धरम चिगते, को सुथिर करि हरखिये ॥
चउ सङ्घ को वात्सल्य कीजे, धरम की परभावना।
गुण आठ सों गुण आठ लहिकें, इहां फेर न आवना ॥

ओं ह्रीं अष्टाङ्गसहिताय पञ्चविंशतिदोषरहिताय सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यम्। इत्याशीर्वादः।

—(०)—

सम्यग्ज्ञान-पूजा

पंचभेद जाके प्रकट, ज्ञेय प्रकाशन भान ।
मोह-तपनहर चन्द्रमा, सोई सम्यक्ज्ञान ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्रावतरावतर संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।

सोरठा-नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरे मल छय करे ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जलम् ।

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चन्दनम् ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख करे ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षतम् ।

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ओ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पुष्पम् ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यम् ।

दीप-ज्योति तमहार, घटपट परकाशै महा ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दीपम् ।

धूप घ्राण सुखकार, रोग विघन जड़ता हरे।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय धूपम्।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर शिवफल करे।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय फलम्।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यम्।

जयमाला-दोहा

आप आप जानै नियत, ग्रन्थ पठन व्योहार।
संशय विभ्रम मोह विन, अष्ट अङ्ग गुणकार ॥

चौपाई मिश्रित, गीताछन्द

सम्यग्ज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अच्छर अरथ शुद्ध पहिचानो, अच्छर अरथ उभय सँग जानो ॥
जानो सुकाल पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये।
तपरीति गहि बहु मान देके, विनय गुन चित लाइये ॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पण देखना।
इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पट पेखना ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यम्।

सम्यक्चारित्र-पूजा

विषयरोग औषधि महा, दवकषाय जलधार ।
तीर्थङ्कर जाको धरे, सम्यक्चारित सार ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरे मल छय करे ।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलम् ।

चल केशर घन-सार, ताप हरे शीतल करे ।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय चन्दनम् ।

अछत अनूप निहार, दारिद नासे सुख करे ।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षतान् ।

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे ।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय पुष्पम् ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे ।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय नैवेद्यम् ।

दीप जोति तमहार, घटपट परकाशै महा ।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय दीपम् ।

धूप घ्राण सुखकार, रोग विघन जड़ता हरे।
सम्यक्चारित सार तेरहविध पूजों सदा॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय धूपम्।
श्रीफल आदि विथार, निश्चय सुर शिवफल करे।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फलम्।
जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फूल फल चरु।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घ्यम्।

जयमाला

दोहा—आप आप थिर नियत नय, तप संजम व्योहार।
स्वपर दया दोनों लिये, तेरहविध सुखकार॥

चौपाई मिश्रित, गीता छन्द

सम्यक्चारित रतन सँभालो, पांच पाप तजि के व्रत पालो।
पंच समिति त्रय गुपति गहीजे, नरभव सफल करहु तन छीजे॥
छीजे सदा तन को जतन यह, एक संयम पालिये।
बहु रुल्यो नरक निगोद मांहीं, कषाय विषयनि टालिये॥
शुभ करम जोग सुघाट आया, पार हो दिन जात हैं।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात हैं॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घ्यम्।

समुच्चय जयमाला

दोहा—सम्यक् दरशन ज्ञान व्रत, इन बिन मुक्ति न होय।
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलें दव लोय॥

चौपाई १६ मात्रा

तापे ध्यान सुथिर बन आवे, ताको करम बन्ध कट जावे।
तासों शिवतिय प्रीति बढ़ावे, जो सम्यक् रतनत्रय ध्यावे॥
ताकों चहुँगति के दुःख नाहीं, सो न परे भवसागर माहीं।
जनम जरा मृतु दोष मिटावे, जो सम्यक् रतनत्रय ध्यावे॥
सोई दशलच्छण को साधे, सो सोलहकारण आराधे।
सो परमातम पद उपजावे, जो सम्यक् रतनत्रय ध्यावे॥
सोई शक्र चक्रि पद लेई, तीन लोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव वहावे, जो सम्यक् रतनत्रय ध्यावे॥
सोई लोकालोक निहारे, परमानन्द दशा विसतारे।
आप तिरे औरन तिरवावे, जो सम्यक् रतनत्रय ध्यावे॥
एक स्वरूप प्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ स्वयम्भूस्तोत्र भाषा

राजविषैं जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भवि शिवपद लियो ।
स्वयम्बोध स्वयम्भू भगवान, वन्दों आदिनाथ गुणखान ॥
इन्द्र क्षीरसागर जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय ।
मदन विनाशक सुख करतार, वन्दों अजित अजित पदकार ॥
शुकलध्यानकरि करम विनाशि, घातिअघाति सकलदुखराशि ।
लह्यो मुक्तिपद सुख अधिकार, वन्दों सम्भव भवदुख टार ॥
माता पश्चिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार ।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, वन्दों अभिनन्दन मन लाय ॥
सब कुवादवादी सरदार, जीते स्यादवाद धुनि धार ।
जैन धरम परकाशक स्वाम, सुमतिदेव पद करहुँ प्रनाम ॥
गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर शोभा अधिकाय ।
बरसे रतन पंचदश मास, नमो पद्मप्रभु सुख की रास ॥
इन्द फनिन्द नरिन्द त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुस्याल ।
द्वादश सभा ज्ञान दातार, नमों सुपारसनाथ निहार ॥
सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं, दोष अठारह काऊ नाहिं ।
मोह-महातम नाशक दीप, नमों चन्द्रप्रभ राख समीप ॥
द्वादश विध तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश ।
निज अनिच्छ भवि इच्छकदान, वन्दों पुष्पदन्त मन आन ॥
भवि सुखदाय सुरगतें आय, दशविध धरम कह्यो जिनराय ।
आप समान सबहिं सुख देह, वन्दों शीतल धर्मसनेह ॥

समता सुधा कोप विप नाश, द्वादशांग वानी परकाश ।
चार संघ-आनंद - दातार, नमों श्रेयांस जिनेश्वर सार ॥
रतनत्रय चिर मुकुट विशाल, शोभे कण्ठ सुगुन मनिमाल ।
मुक्ति नार भरता भगवान, वासुपूज्य वन्दों धर ध्यान ॥
परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित उपदेश ।
कर्म नाशि शिवसुखविलसन्त, वन्दों विमलनाथ भगवन्त ॥
अन्तर वाहर परिग्रह टारि, परम दिगम्बर व्रत को धारि ।
सर्वजीव हितराह दिखाय, नमो अनन्त वचन मन लाय ॥
सात तत्त्व पंचासतिकाय, अरथ नवों छ दरव वहु भाय ।
लोक अलोक सकल परकाश, वन्दों धर्मनाथ अविनाश ॥
पंचम चक्रवर्त्ति-निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग ।
शान्तिकरन सोलम जिननाथ, शान्तिनाथ वन्दों हरपाय ॥
वहु थुति करे हरप नहिं होय, निन्दे दोप गहें नहिं कोय ।
शीलवान परब्रह्म स्वरूप, वन्दों कुन्थुनाथ शिवभूप ॥
द्वादशगण पूजें सुखदाय, थुती वन्दना कर अधिकाय ।
जाकी निज थुति कवहुँ न होय, वन्दों अर-जिनवर पद दोय ॥
परभव रतनत्रय - अनुराग, इहभव व्याह समय वैराग ।
वाल ब्रह्म पूरन व्रत धार, वन्दों मल्लिनाथ जिनसार ॥
विन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लौकान्त करें पग लाग ।
नमःसिद्ध कहि सव व्रत लेहिं, वन्दों मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥

श्रावक विद्यावन्त निहार, भगति भावसों दियो अहार।
बरसी रतनराशि तत्काल, वन्दों नमि प्रभु दीनदयाल॥

सब जीवन की वन्दी छोर, रागद्वेष द्वै बन्धन तोर।
रजमति तजि शिवतियसों मिले, नेमिनाथ वन्दों सुख निले॥

दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फणधार।
गयो कमठ शठ मुखकर श्याम, नमों मेरुसम पारसस्वाम॥

भवसागर तैं जीव अपार, धरमपोत में धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्धमान वन्दों बहु बार॥

दोहा—चौबीसों पद कमल जुग, वन्दों मन वच काय।
'द्यानत' पढ़े सुने सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय॥

श्री रविव्रत पूजा

स्थापना, अडिल्ल छन्द

यह भविजन हितकार, सु रविव्रत जिन कही।
करहु भव्यजन सर्व, सु मन देकें सही ॥
पूजों पार्श्व जिनेन्द्र, त्रियोग लगायकें।
मिटै सकल सन्ताप, मिले निधि आयके ॥
मतिसागर इक सेठ, सुग्रन्थन में कही।
उनहीं ने यह पूजा, कर आनंद लही ॥
तातें रविव्रत सार, सो भविजन कीजिये।
सुख सम्पति सन्तान, अतुल निधि लीजिये ॥
प्रणमों पार्श्व जिनेश को, हाथ जोड़ शिर नाय।
परभव सुख के कारने, पूजा करूँ बनाय ॥
ऐंतवार व्रत के दिना, येही पूजन ठान।
ता फल सम्पति को लहे, निश्चय लीजे मान ॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

उज्ज्वल जल भरकें अति लायो, रतन कटोरन मांही।
धार देत अति हर्ष बढ़ावत, जन्म जरा मिट जांहीं ॥
पारसनाथ जिनेश्वर पूजों, रविव्रत के दिन भाई।
सुखसम्पति बहु होय तुरत ही, आनंद मंगल दाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम्।

मलयागिर केशर अति सुन्दर, कुमकुम रङ्ग बनाई।

धार देत जिन चरनन आगे, भव आताप नशाई ॥पारस०
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनम्।
मोतीसम अति उज्ज्वल तन्दुल, लावो नीर पखारो।
अक्षयपद के हेतु भाव सों, श्रीजिनवर ढिंग धारो ॥पारस०
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्।
बेला अरु मचकुन्द चमेली, पारिजात के ल्यावो।
चुन चुन श्रीजिनअग्र चढ़ाऊँ, मनवांछित फल पावो ॥पारस०
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंशनाय पुष्पम्।
बावर फैनी गोजा आदिक, घृत में लेत पकाई।
कंचन-थार मनोहर भर के, चरनन देत चढ़ाई ॥पारस०
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।
मणिमय दीप रतनमय लेकर, जगमग जोति जगाई।
जिनके आगे आरति करके, मोहतिमिर नश जाई ॥ पारस०
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्।
चूरन कर मलयागिर चन्दन, धूप दशाङ्ग बनाई।
तट पावक में खेय भाव सों, कर्म नाश हो जाई ॥पारस०
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम्।
श्रीफल आदि बदाम सुपारी, भांति भांति के लावो।
श्री जिन चरन चढ़ाय हरषकर, तातें शिवफल पावो ॥पारस०
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम्।
जल गन्धादिक अष्ट द्रव्य ले, अर्घ्य बनावो भाई।
नाचत गावत हर्षभाव सों, कंचनथार भराई ॥पारस०
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम्।

गीतिका छन्द

मन वचन काय त्रिशुद्ध करके, पार्श्वनाथ सु पूजिये।
जल आदि अर्घ्य बनाय भविजन, भक्तिवन्त सु हूजिये॥
पूज्य पारसनाथ जिनवर, सकल सुखदातार जी।
जे करत हैं नर नारि पूजा, लहत सौख्य अपार जी॥
ॐ ह्रीं पार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला (दोहा)

यह जग में विख्यात हैं, पारसनाथ महान।
तिन गुण की जयमालिका, भाषा करों बखान॥

जय जय प्रणमों श्री पार्श्व देव,
इन्द्रादिक तिनकी करत सेव।
जय जय सु बनारस जन्म लीन,
तिहुं लोक विषें उद्योत कीन॥
जय जिनके पितु श्री विश्वसैन,
तिनके घर भये सुखचैन ऐन।
जय वामादेवी माय जान,
तिनके उपजे पारस महान॥
जय तीन लोक आनन्द देव,
भवजन के दाता भये ऐन।
जय जिनने प्रभु का शरण लीन,
तिन की सहाय प्रभुजी सो कीन॥

जय नाग नागिनी भये अधीन,
प्रभु चरणन लाग रहे प्रवीन।
तजि के सो देह स्वर्ग सु जाय,
धरणेन्द्र पद्मावति भये आय॥
जय चोर अञ्जना अधम जान,
चोरी तजि प्रभु को धरो ध्यान।
जय मृत्यु भये स्वर्ग सु जाय,
ऋद्धी अनेक उनने सो पाय॥
जय मतिसागर इक सेठ जान,
जिन रविव्रत पूजा करी ठान।
तिनके सुत थे परदेश मांहि,
जिन अशुभ कर्म काटे सु ताहि॥
जय रविव्रत पूजन करी सेठ,
ता फल कर सबसे भई भेंट।
जिन जिन ने प्रभु का शरण लीन,
तिन रिद्धि सिद्धि पाई नवीन॥
यह रविव्रत पूजा करहिं जेय,
ते सौख्य अनन्तानन्त लेय।
धरणेन्द्र पद्मावति हुये सहाय,
प्रभुभक्त जान तत्काल आय॥
पूजा विधान इहि विधि रचाय,

मन वचन काय तीनों लगाय ।
जो भक्तिभाव जयमाल गाय,
सोही सुख सम्पति अतुल पाय ॥
बाजत मृदङ्ग वीनादि सार,
गावत नाचत नाना प्रकार ।
तन नन नन नन नन ताल देत,
सन नन नन नन सुर भर सो लेत ॥
ता थेइ थेइ थेइ पग धरत जाय,
छम छम छम छम घुंघरू बजाय ।
जे करहिं निरत इह भांत भांत,
ते लहहिं सौक्ख्य शिवपुर सुजात ॥

रविव्रत पूजा पार्श्व की, करे भविक जन कोय ।
सुख सम्पति इह भव लहे, तुरत सुरगपद होय ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

रविव्रत पार्श्व जिनेन्द्र, पूज भवि मन धरें ।
भव भव के आताप, सकल छिन में टरें ॥
होय सुरेन्द्र नरेन्द्र, आदि पदवी लहे ।
सुख सम्पति सन्तान, अटल लक्ष्मी रहे ॥
फेर सर्व विधि पाय, भक्ति प्रभु अनुसरे ।
नानाविध सुख भोग, बहुरि शिवतिय वरे ॥

॥इत्याशीर्वादः॥ इति रविव्रतपूजा ॥

अथ श्री सप्तर्षि पूजा

छप्पय

प्रथम नाम श्रीमन्व, दुतिय स्वरमन्व ऋषीवर ।
तीसर मुनि श्रीनिचय, सर्व सुन्दर चौथो वर ।।
पंचम श्री जयवान, विनयलालस षष्ठम भनि ।
सप्तम जयमित्राख्य, सर्व चारित्र–धाम गनि ।।
ये सातों चारण ऋद्धिधर, करूँ तास पद थापना ।
मैं पूजूँ मन वच काय करि, जो सुख चाहूँ आपना ।।

ॐ ह्रीं चारणऋद्धिधराः श्रीसप्तऋषीश्वराः अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् इत्याह्वाननम् । अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट् सन्निधिकरणम् ।

अष्टक, गीताछन्द

शुभ तीर्थ उद्भव जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायकें ।
भव-तृषा–कन्दनिकन्द कारण, शुद्ध घट भरवायकें ।।
मन्वादि चारण ऋद्धि धारक, मुनिन की पूजा करूँ ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरूँ ।।

ॐ ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः जलम् ।

श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द मन्द घिसायकें ।
तसु गन्ध प्रसरित दिगदिगन्तर, भरि कटोरी लायकें ।।म०

ॐ ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः चन्दनम् ।

अति धवल अक्षत खंडवर्जित, मिष्ट राजनभोग के।
कलधौत थारा भरत सुन्दर, चुनित शुभ उपयोगके ॥ म०
ॐ ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः अक्षतम् ।

बहु वर्ण सुवरण सुमन आछे, अमल कमल गुलाब के।
केतकी चम्पा चारु मरुआ, चुने निज कर चावके ॥म०
ॐ ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः पुष्पम् ।

पकवान नानाभांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये।
सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुरट के थारा लये ॥म०
ॐ ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः नैवेद्यम् ।

कलधौत दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृत सार सों।
अति ज्वलित जगमग ज्योति जाकी, तिमिरनाशनहारसों ॥म०
ॐ ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः दीपम् ।

दिक्चक्रगन्धित होत जाकर, धूप दश अङ्गी कही।
सो लाय मन वच काय शुद्ध, लगायकर खेऊँ सही ॥म०
ॐ ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः धूपम् ।

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायकें।
द्रावड़ी दाडिम चारु पुङ्गी, थाल भर भर लायकें ॥म०
ॐ ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः फलम् ।

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललितआठों द्रव्यमिश्रित, अर्घ्य कीजे पावना ॥म०
ॐ ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः अर्घ्यम् ।

अथ जयमाला-त्रिभंगी छन्द

वन्दूँ ऋषिराजा, धर्मजहाजा, निजपर काजा, करत भले ।
करुणा के धारी, गगनविहारी, दुख अपहारी; भरम दले ॥
काटत जमफन्दा, भवि जनवृन्दा,करत अनन्दा, चरणन में ।
जो पूजे ध्यावे, मङ्गल गावे, फेर न आवे-भववन में ॥

पद्धरी छन्द

जय श्रीमनु मुनिराजा महन्त, त्रसथावर की रक्षा करन्त ।
जय मिथ्यातमनाशक पतङ्ग, करुणारस पूरित अङ्ग अङ्ग ॥
जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप, पदसेव करत नित अमर भूप ।
जय पंच अक्ष जीते महान, तप तपत देह कंचन-समान ॥
जय निचय सप्त तत्त्वार्थ भास, तप रमा तनों तनमें प्रकाश ।
जय विषयरोध सम्बोध भान,परणतिके नाशन अचल ध्यान ॥
जय जयहिं सर्वसुन्दर दयाल, लखि इन्द्रजालवत जगतजाल ।
जय तृष्णाहारी रमण राम, निज परणतिमें पायो विराम ॥
जय आनंदघन कल्याणरूप, कल्याण करत सबको अनूप ।
जय मदनाशन जयवान देव,निरसद विचरित सब करत सेव ॥
जयजयहिं विनयलालस अमान, सब शत्रु मित्र जानत समान ।
जय कृशितकाय तपके प्रभाव,छवि छटा उड़त आनन्ददाय ॥
जय मित्र सकल जगके सुमित्र,अनगिनत अधम कीने पवित्र ।
जय चन्द्रवदन राजीव नैन, कबहूँ विकथा बोलत न बैन ॥
जय सातों मुनिवर एक सङ्ग, नित गगनगमन करते अभङ्ग ।
जय आये मथुरापुर मँझार, तहँ मरीरोग को अति प्रचार

जयजय तिन चरणनिके प्रसाद, सब मरी देवकृत भई वाद ।
जय लोक करे निर्भय समस्त, हम नमत सदा तिन जोर हस्त ॥
जय ग्रीषम ऋतु पर्वत मँझार, नित करत अतापन योग सार ।
जय तृषापरीषह करत जेर कहुँ रंच चलत नहिं मनसुमेर ॥
जय मूल अठाइस गुणन धार, तप उग्र करत आनन्दकार ।
जय वर्षाऋतु में वृक्षतीर, तहँ अति शीतल झेलत समीर ॥
जय शीतकाल चौपथ मँझार, कै नदी सरोवर तट विचार ।
जय निवसत ध्यानारूढ होय, रंचक नहिं मटकत रोम कोय ॥
जय मृतकासन वज्रासनीय, गोदूहन इत्यादिक गनीय ।
जय आसन नानाभाँति धार, उपसर्ग सहत ममता निवार ॥
जय जपत तिहारो नाम कोय, लख पुत्र पौत्र कुल-वृद्धि होय ।
जय भरे लक्ष अतिशय भण्डार, दारिद्र तनों दुख होय छार ॥
जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच, अरु ईतिभीति सब नशत सांच ।
जय तुम सुमरत सुख लहत लोक, सुरअसुर नवत पद देत धोक ॥

रोला छन्द

जे सातों मुनिराज, महातप लछमी धारी ।
परम पूज्य पद धरें, सकल जग के हितकारी ॥
जो मन वच तन शुद्ध होय, सेवे औ ध्यावे ।
सो जन 'मनरँगलाल', अष्ट ऋद्धिन कों पावे ॥

दोह—नमन करत चरनन परत, अहो गरीबनिवाज ।
पंच परावर्तननि तें, निरवारो ऋषिराज ॥

ओं ह्रीं चारणर्धिधारकेभ्यः श्रीमन्वादिभ्यः सप्तर्षिभ्यः पूर्णार्घ्यम् ।

श्री निर्वाणक्षेत्र-पूजा

सोरठा-परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये ।
सिद्धभूमि निशदीस, मन वच तन पूजा करों ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अव-
तरत संवौषट् ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ! अत्र मम
सन्निहितानि भवत भवत वषट् सन्निधिकरणम् ।

गीता-छन्द

शुचि क्षीर दधिसम नीर निरमल, कनकझारी में भरों ।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करों ॥
सम्मेदगिरि गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलाश कों ।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि निवास कों ॥

ओं ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः जलम् ।

केसर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरों ।
भवताप को सन्ताप मेंटो, जोर कर विनती करों ॥स०

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः चन्दनम् ।

मोती समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनंद धरि तरों ।
औगुण हरो गुण करो हमको, जोर कर विनती करों ॥स०

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः अक्षतम् ।

शुभ फूलरास सुवास वासित, खेद सब मन को हरों ।
दुखधाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करों ॥स०

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः पुष्पम् ।

नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरों।
यह भूखदूषन टार प्रभु जी, जोर कर विनती करों ॥स०

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः नैवेद्यम्।

दीपक प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिर सेती नहिं डरों।
संशय विमोह विभर्म तमहर, जोर कर विनती करों ॥स०

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः दीपम्।

शुभ धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरों।
सब करमपुञ्ज जलाय दीजो, जोर कर विनती करों ॥स०

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः धूपम्।

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गति सों निरवरों।
निहचै मुकतिफल देहु मोकों, जोर कर विनती करों ॥स०

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः फलम्।

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु फल, दीप धूपायन धरों।
'द्यानत' करो निर्भय जगतसों, जोर कर विनती करों ॥स०

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः अर्घ्यम्।

जयमाला

श्री चौबीस जिनेश, गिरि कैलाशादिक नमों।
तीरथ महा प्रदेश, महापुरुष निरवाण तें॥

चौपाई छन्द १६ मात्रा

नमों ऋषभ कैलाश पहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं।
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दों, सन्मति पावापुर अभिनन्दों॥

वन्दों अजति अजित पददाता, वन्दों सम्भव भवदुख घाता ।
वन्दों अभिनन्दन गणनायक, वन्दों सुमति सुमति के दायक ॥

वन्दों पद्म मुकति पदमाकर, वन्दों सुपार्श्व आस पासाहर ।
वन्दों चन्द्रप्रभ प्रभु चन्दा, वन्दों सुविधि सुविधिनिधिकन्दा ॥

वन्दों शीतल अघ तप शीतल, वन्दों श्रेयांस श्रेयांस महीतल ।
वन्दों विमल विमल उपयोगी, वन्दों अनन्त अनन्त सुखभोगी ॥

वन्दों धर्म धर्म-विस्तारा, वन्दों शान्ति शान्ति मन धारा ।
वन्दों कुन्थु कुन्थु-रखवालं, वन्दों अर अरिहर गुणमालं ॥

वन्दों मल्लि काममलचूरन, वन्दों मुनिसुव्रत व्रतपूरन ।
वन्दों नमि जिन नमित सुरासुर, वन्दों पार्श्व पासभ्रमजगहर ॥

बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखरसम्मेद महागिरि भूपर ।
भावसहित वन्दे जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई ॥

नरगति नृप सुर शक्र कहावे, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावे ।
विघन विनाशक मंगलकारी, गुण विशाल वन्दें नरनारी ॥

घत्ता

जो तीरथ जावे, पाप मिटावे, ध्यावे गावे, भगति करे ।
ताको जस कहिये, सम्पति लहिये, गिरिके गुणको बुध उचरे ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः पूर्णार्घ्यं० ।
॥ इत्याशीर्वादः ॥

निर्वाणकाण्ड-भाषा

वीतराग वन्दों सदा, भावसहित सिर नाय ।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम वनाय ॥

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुर नामि ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दों भावभगति उर धार ॥
चरम तीर्थङ्कर चरम शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर ।
शिखरसम्मेद जिनेश्वर वीस, भावसहित वन्दों निशदीश ॥
वरदतराय रु इन्द्र मुनिन्द्र, सायरदत्त आदि गुणवृन्द ।
नगर तारवर मुनि उठकोड़ि, वन्दों भावसहित कर जोड़ि ॥
श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात ।
शम्बु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूं तसु पाय ॥
रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाड नरिन्द आदि गुणधीर ।
पांचकोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागढ़ वन्दों निरधार ॥
पांडव तीन द्रविड़ राजान, आठकोड़ि मुनि मुकति पयान ।
श्रीशत्रुञ्जय गिरि के शीश, भावसहित वन्दों निशदीस ॥
जे वलभद्र मुक्ति में गये, आठकोड़ि मुनि औरहि भये ।
श्रीगजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूं तिहुँकाल ॥
राम हनू सुग्रीव सुडील, गवगवाख्य नील महानील ।
कोड़ि निन्यानवे मुक्ति पयान, तुङ्गीगिरि वन्दों धरि ध्यान ॥
नङ्ग अनङ्ग कुमार सुजान, पंच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान ।
मुक्ति गये सोनागिरि शीश, ते वन्दों त्रिभुवनपति ईश ॥
रावण के सुत आदि कुमार, मुक्ति गये रेवातट सार ।
कोड़ि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दों धरि परम हुलास ॥

रेवानदी सिद्धवरकूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठ कोड़ि वन्दों भवपार ॥
बड़वानी बड़नयर सुचङ्ग, दक्षिणदिश गिरिचूल उतङ्ग ।
इन्द्रजीत अरु कुम्भजु कर्ण, ते वन्दों भवसायर तर्ण ॥
सुवर्णभद्र आदि मुनि चार, पावागिरवर शिखर मंझार ।
चेलना नदी तीर के पास, मुक्ति गये वन्दों नित तास ॥
फलहोड़ी वर ग्राम अनूप, पश्चिमदिशा द्रोणगिरि रूप ।
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहां, मुक्ति गये वन्दों नित तहां ॥
व्याल महाव्याल मुनि दोय, नागकुमार मिलें त्रय होय ।
श्री अष्टापद मुकति मँझार, ते वन्दों नित सुरत सँभार ॥
अचलापुर की दिश ईशान, तहां मेढगिरि नाम प्रधान ।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चितलाय ॥
वंशस्थल वन के ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय ।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥
दशरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पांच सौ लहे ।
कोटिशिला मुनि कोटिप्रमान, वन्दन करों जोर जुग पान ॥
समवसरण श्री पार्श्वजिनेन्द्र, रेशन्दीगिरि नयनानन्द ।
वरदत्तादि पञ्च ऋषिराज, ते वन्दों नित धरम जहाज ॥

तीन लोकके तीरथ जहां, नितप्रति वन्दन कीजे तहां ।
मन वच काय सहित शिर नाय, वन्दन करहिं भविक गुण गाय ॥
सम्वत सत्रह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल ।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल ॥

निर्वाणकाण्ड-गाथा

अट्ठावयम्मि उसहो, चंपाए वासुपुज्ज जिण-णाहो ।
उज्जंते णेमि जिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥१॥
वीसं तु जिण-वरिंदा, अमरासुर-वंदिदा धुद-किलेसा ।
सम्मेदे गिरि-सिहरे, णिव्वाण - गया णमो तेसिं ॥२॥
वरदत्तो य वरंगो, सायरदत्तो य तारवर - णयरे ।
आहुट्ठय कोडीओ, णिव्वाण - गया णमो तेसिं ॥३॥
णेमि-सामि पज्जुण्णो, संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो ।
बाहत्तरि - कोडीओ, उज्जंते सत्तसया वंदे ॥४॥
राम-सुआ विण्णिजणा, लाड-णरिंदाण पंचकोडीओ ।
पावागढ़ गिरि-सिहरे, णिव्वाण - गया णमो तेसिं ॥५॥
पंडु-सुआ तिण्णि जणा, दविण-णरिंदाण अट्ठकोडीओ ।
सत्तुंजय गिरि-सिहरे, णिव्वाण - गया णमो तेसिं ॥६॥
सत्तेव य बलभद्दा, जदुव - णरिंदाण अट्ठ कोडीओ ।
गजपंथे गिरि -- सिहरे, णिव्वाण - गया णमो तेसिं ॥७॥
राम-हणू सुग्गीवो, गवय गवक्खो य णील महणीलो ।
णवणवदी कोडीओ, तुंगीगिरि -- णिव्वुदे वंदे ॥८॥
णंगाणंग - कुमारा, विक्खा-पंचद्ध-कोडि-रिससहिया ।
सुवण्णगिरि मत्थयत्थे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥९॥
दहमुह-रायस्स सुआ, कोडी-पंचद्ध-मुणिवरै सहिया ।
रेवा-उहयम्मि तीरे-णिव्वाण--गया णमो तेसिं ॥१०॥
रेवा-णइए तीरे, पच्छिम - भायम्मि सिद्धवर - कूडे ।

दो चक्की दह कप्पे, आहुट्ठय कोडि णिव्वुदे वंदे ॥११॥
वडवाणी वर – णयरे, दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे ।
इंदजिय – कुंभयण्णो, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१२॥
पावागिरि–वर सिहरे, सुवण्णभद्दाइ मुणिवरा चउरो ।
चलणा–णई–तडग्गे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१३॥
फलहोडी–वर–गामे, पच्छिम-भायम्मि दोणगिरिसिहरे ।
गुरुदत्ताइ – मुणिंदा, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१४॥
णायकुमार – मुणिंदो, वालि महावलि चेव अज्झेया ।
अट्ठावय-गिरि – सिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं १५
अचलपुर – वर-णयरे, ईसाणभाए मेढगिरि सिहरे ।
आहुट्ठय कोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१६॥
वंसत्थल–वण–णियरे, पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरि सिहरे ।
कुल-देसभूषण-मुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१७॥
जसरह- रायस्स सुआ, पंचसया कलिंग देसम्मि ।
कोडिसिलाए कोडि–मुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१८॥
पासस्स समवसरणे, गुरुदत्त – वरदत्त पंच रिसियमुहा ।
रिस्सिंदे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१९॥
जे जिणु जित्थु तत्था, जे दु गया णिव्वुदिं परमं ।
ते वंदामि य णिच्चं, तिरणय–सुद्धो णमस्सामि ॥२०॥
सेसाणं तु रिसीणं, णिव्वाणं जम्मि जम्मि ठाणम्मि ।
ते हं वन्दे सव्वे, दुक्खक्खयकारण – ट्ठाए ॥२१॥

अइसयखेत्त-काण्ड गाथा

पासं तह अहिणंदण, णाय हि मंगलाउरे वन्दे ।
अस्सारम्भे पट्टणि, मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ।।१।।

बाहुवली तह वंदमि, पोयणपुर-हत्थिणा पुरे वंदे ।
सांति कुन्थ व अरिहो वाराणसिए सुपासपासं च ।।२।।

महुराए अहिछित्ते, वीरं पासं तहे व वंदामि ।
जंबु-मुणिंदो वन्दें, णिव्वुइ पत्तोवि जंबुवण गहणे ।।३।।

पंच कल्लाण ठाणइ,जाणवि संजाद मज्झ-लोयम्मि ।
मण-वयण-काय-सुद्धी, सव्वं सिरसा णमस्सामि ।।४।।

अग्गलदेवं वन्दमि, वरणयरे णिवड कुन्डली वन्दे ।
पासं सिवपुरि वन्दमि, होलागिरि संख-वेदम्मि ।।५।।

गोम्मटदेवं वन्दमि, पञ्चसयं धणुह देह उच्चंतं ।
देवा कुणंति वुट्ठी, केसरिकुसमाण तस्स उवरिम्मि ।।६।।

णिव्वाणठाणजाणिवि, अइसयठाणाणि अइसए सहिया ।
संजाद मिच्चलोए, सव्वे सिरसा णमस्सामि ।।७।।

जो जण पढइतियालं, णिव्वुइकंडंपि भावसुद्धीए ।
भुंजदि णरसुर सुक्खं, पच्छा सो लहइ णिव्वाणं ।।८।।

———

श्री सरस्वती-पूजा

(द्यानतराय जी)

जनम जरा मृतु छय करे, हरे कुनय-जड़-रीति।
भवसागर सों ले तिरे, पूजे जिन वच प्रीति॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वति ! वाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट् सन्निधापनम्।

क्षीरोदधि गंगा, विमल तरंगा,
सलिल अभंगा सुख संगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी,
तृषा निवारी हित चंगा॥
तीर्थङ्कर की धुनि, गणधर ने सुनि,
अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिव-सुख-दानी,
त्रिभुवन-मानी पूज्य भई॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मँगाया, चन्दन आया,
केशर लाया, रँग भरी।
शारदपद वन्दों, मन अभिनन्दों,
पाप निकन्दों, दाह हरी। तीर्थ०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखदास कमोदं, धारकमोदं,
अति अनुमोदं चन्द्र-समं।

बहुभक्ति बढ़ाई कीरति गाई,
होहु सहाई, मात समं ॥तीर्थ०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षतान् नि० स्वाहा ।

बहु फूल सुवासं, विमल प्रकाशं,
आनंद रासं लाय धरे ।
मम काम मिटायो, शील बढ़ायो,
सुख उपजायो, दोष हरे ॥तीर्थ०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पुष्पं नि० स्वाहा ।

पकवान बनाया, बहु घृत लाया,
सबविध भाया, मिष्ट महा ।
पूजूँ थुति गाऊँ प्रीति बढ़ाऊँ,
क्षुधा-नशाऊँ, हर्ष लहा ॥तीर्थ०॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं नि० स्वाहा ।

करि दीपक जोतं, तमक्षय होतं,
ज्योति उदोतं, तुमहि चढ़े ।
तुम हो परकाशक, भरम-विनाशक,
हम घट-भासक, ज्ञान बढ़े ॥तीर्थ०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दीपं नि० स्वाहा ।

शुभ गन्ध दशों कर, पावक में धर,
धूप मनोहर, खेवत हैं ।

सब पाप जलावें पुण्य कमावें,
दास कहावें, सेवत हैं ॥तीर्थ०॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै फलम् नि० स्वाहा ।
बादाम छुहारी, लौंग सुपारी,
श्रीफल भारी, ल्यावत हैं ।
मनवांछित दाता, मेंट असाता,
तुम गुन गाता, ध्यावत हैं ॥तीर्थ०॥
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै धूपम् नि० स्वाहा ।
नयनन सुखकारी, मृदु गुन धारी,
उज्ज्वल भारी, मोल धरें ।
शुभ गन्ध सम्हारा, वसन निहारा,
तुम तन धारा, ज्ञान करें ॥तीर्थ०॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्व० स्वाहा ।
जल चन्दन अक्षत, फूल चरू चत,
दीप धूप अति फल लावें ।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत,
सो नर 'द्यानत' सुख पावें ॥तीर्थ०॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्व० स्वाहा ।

जयमाला—सोरठा

ओंकार धुनि सार, द्वादशाङ्ग वाणी विमल ।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करे जड़ता हरे ॥

पहलो आचाराङ्ग बखानो; पद अष्टादश सहस प्रमानो।
दूजो सूत्रकृतं अभिलापं, पद छत्तीस सहस गुरु भावं॥
तीजो ठाना अङ्ग सुजानं, सहसवियालिस पद सरधानं।
चौथो समवायाङ्ग निहारं, चौसठ सहस लाख इक धारं॥
पंचम व्याख्याप्रज्ञपति परसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठो ज्ञातृकथा विसतारं, पांच लाख छप्पन हज्जारं॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।
अष्टम अन्तकृतं दस ईसं; सहस अठाइस लाख तेईसं॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवे सहस चवालं।
दशम प्रश्नव्याकरण विचारं, लाख तिरानव सोल हजारं॥
ग्यारम सूत्रविपाक सुभाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं॥
चार कोड़ि अरु पन्द्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरुशाखं॥
द्वादश दृष्टिवाद पन भेदं, इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्याहन हैं।
इक सौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पन्च अधिकानो, द्वादश अंग सर्व पद मानो॥
कोडि इकावन आठहि लाखं, सहस चुरासी छहसौ साखं।
सार्ध इकीस शिलोक बताये, एक एक पद के ये गाये॥

जा वानी के ज्ञान में, सूझे लोक अलोक।
'द्यानत' जग जयवन्त हो, सदा देत हों धोक॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै महार्घ्यं निर्व० स्वाहा।

श्री आदिनाथजिन-पूजा

स्थाप अडिल्ल छन्द

परम पूज्य वृषभेश स्वयम्भूदेव जू,
पिता नाभि मरुदेवि करें सुर सेव जू।
कनक-वरण तन तुङ्ग धनुष पन-शत तनों,
कृपा-सिन्धु इत आय तिष्ठ मम दुख हनो॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

द्रुतविलंबित तथा सुन्दरी छन्द

हिमवनोद्भव-वारि सुधारकें जजत हों गुन-बोध उचारिकें।
परम-भाव-सुखोदधि दीजिये,जनम-मृत्यु-जरा क्षय कीजिये॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय जन्ममृत्युविनाशनाय जलम्।

मलय-चन्दन दाह-निकन्दनं, घसि उभै करमें करि वन्दनं।
जजत हों प्रशमाश्रय दीजिये,तपत ताप त्रिधा क्षय कीजिये॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनम्।

अमल तन्दुल खण्ड-विवर्जितं,सित निशेश-हिमामिय-तर्जितं।
जजत हों तसु पुन्ज धरायजी,अखय सम्पति द्यो जिनरायजी॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्।

कमल चम्पक केतकि लीजिये, मदन-भंजन भेंट धरीजिये।
परम शील महा सुखदाय हैं, समर-शूल निमूल नशाय हैं॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम्।

सरस मोदन मोदक लीजिये, हरण भूख जिनेश जजीजिये।
सकल आकुल-अन्तक-हेतु हैं, अतुल शान्तिसुधारस देतु हैं॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।

निविड-मोह-महातम छाइयो स्व-पर-भेद न मोह लखाइयो।
हरन कारन दीपक तासके, जजत हों पद केवल भासके॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्।

अगर-चन्दन आदिक लेयकें, परम पावन गन्ध सु खेयकें।
अगनि सङ्ग जरे मिस धूम के, सकल कर्म उडें सह धूम के॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम्।

सरस पक्व मनोहर पावने, विविध फल लै पूज रचावने।
त्रिजगनाथ कृपा अत्र कीजिये, हमहिं मोक्ष महाफल दीजिये॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

जल-फलादि समस्त मिलायकें, जजत हों पद मंगल गायकें।
भगतवत्सल दीनदयालजी, करहु मोहि सुखी लखि हाल जी॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम्।

पञ्च कल्याणक

(द्रुतविलम्बित तथा सुन्दरी)

असित दोज अषाढ़ सुहावनी, गरभ-मङ्गल को दिन पावनी।
हरि-शची पितु मातहिं सेवही, जजत हैं हम श्रीजिनदेव ही॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णद्वितीयादिने गर्भमङ्गलप्राप्ताय श्रीवृषभदेव-जिनेन्द्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा॥१॥

असित चैत सुनौमि सुहाइयो, जनम-मङ्गल ता दिन पाइयो।
हरि महागिरिपै जजियो तबै, हम जजें पद-पंकजको अबै॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवमीदिने जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम्।

असित नौमि सुचैत धरे सही, तप विशुद्ध सबै समता गही ।
निज सुधारससों भर लाइयो, हम जजें पद अर्घ चढ़ाइयो ॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णनवमीदिने दीक्षामङ्गलप्राप्ताय श्री वृषभनाथाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

असित फागुन ग्यारसि सोहनो, परम केवलज्ञान जग्यो भनो ।
हरि-समूह जजें तहँ आइकें, हम जजें इत मंगल गायकें ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानसाम्राज्यमङ्गलप्राप्ताय श्री वृषभनाथाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

असित चौदसि माघ विराजई, परम मोक्ष सुमंगल साजई ।
हरि-समूह जजें कैलाश जी, हम जजें अति धार हुलास जी ॥
ॐ ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्री वृषभनाथाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

जयमाला

घत्तानन्द

जय जय जिनचंदा, आदिजिनंदा, हनि भवफंदा-कंदा जू ।
वासव-शत-वंदा धारि अनन्दा, ज्ञान अमंदा नंदा जू ॥

छन्द—मोतियदाम

त्रिलोक-हितंकर पूरन पर्म, प्रजापति विष्णु चिदातम धर्म ।
जतोसुर ब्रह्म-विदांवर बुद्ध, वृषंक अशंक क्रियाम्बुधि शुद्ध ॥
जबै गर्भागम-मंगल जान, तबै हरि हर्ष हिये अति आन ।
पिता-जननी-पद सेव करेय, अनेक प्रकार उमंग भरेय ॥
जये जबही तबही हरि आय, गिरेन्द्र विषें किय न्हौन सुजाय ।
नियोग समस्त किये तित सार, सुलाय प्रभू पुनि राज-अगार ॥

पिता-कर सौंपि कियो तितनाट, अमंद अनंद समेत विराट।
सुथान पयान कियो फिर इंद्र,इहां सुर-सेव करें जिन-चंद्र ॥
कियो चिरकाल सुखाश्रित राज,प्रजा सब आनंदको तितसाज ।
सुलिप्त सुभोगनिमें लखि जोग,कियो हरिने यह उत्तम योग ॥
निलंजन नाच रच्यो तुम पास,नवों रस-पूरित भाव विलास ।
वजे मिरदंग द्रम द्रम जोर, चले पग झारि झनाझन झोर ॥
घनाघन घंट करें धुनि मिष्ट, वजें मुहचंग सुरान्वित पुष्ट ।
खड़ी छिन पास छिनहिं आकाश,लघू छिन दीरघ आदि विलास॥
ततच्छन ताहि विलै अवलोय, भये भवतैं भय-भीत बहोय ।
सुभावत भावन बारह भाय, तहां दिवब्रह्म-ऋषीश्वर आय ॥
प्रवोध प्रभू सुगये निज-धाम, तबै हरि आय रची शिवकाय॥
कियो कचलोंच विराग अरन्य,चतुर्थम ज्ञान लहयो जग धन्य॥
धरो तब योग छमास प्रमान, दियो श्रियंस तिन्हें इखदान ।
भयो जब केवलज्ञान जिनेन्द्र समौसृत-ठाठ रच्यो सु धनेन्द्र ॥
तहां वृष-तत्त्व प्रकाशि अशेष,कियो फिर निर्भय-थान प्रवेश ।
अनन्त गुनातम श्रीसुख-राश,तुम्हें नित भव्य नमैं शिव आश॥
यह अरज हमारी, सुनि त्रिपुरारी, जनम जरा मृति दूर करो ।
शिव-संपति दीजे, ढील न कीजे,निज लख लीजे कृपा धरो ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभदेवजिनेन्द्राय महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जो ऋषभेश्वर पूजे, मन-वच - तन भाव शुद्ध कर प्रानी ।
सो पावे निश्चैसों भुक्ति, औ मुक्ति सार सुख-थानी ॥

इत्याशीर्वादः, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।

श्री चन्द्रप्रभ जिन पूजा

(कविवर पं० विन्द्रावन कृत)

छप्पय—अनौष्ठय यमकालंकार तथा शब्दालङ्कार शांतरस।

चारु चरन आचरन, चरन चितहरन चिहनचर।
चन्द चन्द तन चरित, चन्द थल चहत चतुर नर॥

चतुक चण्ड चकचूर, चारि चिदचक्र गुनाकर।
चंचल चलित सुरेश, चूल नुत चक्र धनुरधर॥

चर अचर हितू तारन तरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि।
जिनचंद चरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रच्चिरुचि॥

दोहा—धनुष डेढ़ सौ तुंग तन, महासेन नृपनन्द।
मातु लक्ष्मणा उर जये, थापोचन्द्र जिनन्द॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चाल द्यानतरायकृत नन्दीश्वराष्टक की, अष्टपदी तथा होली की चाल में, तथा गरबा आदि अनेक चालों में।

गंगा हद निरमल नीर, हाटक-भृङ्ग भरा।
तुम चरन जजौं वरवीर, मेंटो जनम जरा॥

श्री चन्द्रनाथ दुति चन्द, चरनन [illegible] लगै।
मन वच तन जजत अमन्द, आतम जोति जगै॥

ॐ ह्रीं चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय [illegible]।

श्रीखण्ड कपूर सुचंग, केशर रंग भरी।
घसि प्रासुक जल के संग, भव आताप हरी ॥श्री०॥
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनम्।

तन्दुल सित सोमसमान, समलय अनियारे।
दिय पुंज मनोहर आन; तुम पदतर प्यारे ॥ श्री०
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्।

सुरद्रुम के सुमन सुरंग, गन्धित अलि आवे।
तासों पद पूजत चंग, काम विथा जावे ॥श्री०
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम्।

नेवज नाना परकार, इन्द्रिय बलकारी।
सो ले पद पूजों सार, आकुलता हारी ॥श्री०
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।

तमभंजन दीप सँवार, तुम ढिग धारतु हों।
मम तिमिर मोह निरवार, यह गुण धारतु हों ॥श्री०
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्।

दस गन्ध हुताशन मांहि, हे प्रभु खेवत हों।
मम करम दुष्ट जरि जांहिं, यातें सेवतु हों ॥श्री०
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम्।

अति उत्तम फल सुमँगाय, तुम गुण गावतु हों।
पूजों तन मन हरषाय, विघन नशावतु हों ॥श्री०
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

सजि आठों दरव पुनीत, आठों अङ्ग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों ॥ श्री०

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम्।

(पञ्चकल्याणक, तोटकछन्द वर्ण १२)

कलि पञ्चमि चैत सुहात अली, गरभागममङ्गल मोद भरी।
हरि हर्षित पूजत मात पिता, हम ध्यावत पावत शर्म सिता ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपञ्चम्यांगर्भमङ्गलप्राप्तायचन्द्रप्रभजिनेन्द्रायार्घ्यम्।

कलि पौष इकादशि जन्म लियो, तब लोकविषैं सुख थोक भयो।
सुरईस जजें गिरिशीश तबै, हम पूजत हैं नुत शीस अबै ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यांजन्ममङ्गलप्राप्तायचन्द्रप्रभजिनेन्द्रायार्घ्यम्।

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलि पौष एकादशि पर्व वरा।
निज ध्यान विषैं लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां दीक्षामहोत्सवमंडिताय चन्द्रप्रभायार्घ्यम्।

वर केवलभानु उद्योत कियो, तिहुँलोक तनों भ्रम मेट दियो।
कलि फाल्गुन सप्तमि इन्द्र जजें, हम पूजहिं सर्व कलंक भजें ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय चन्द्रप्रभायार्घ्यम्।

सित फाल्गुन सप्तमि मुक्ति गये, गुणवन्त अनन्त अबाध भये।
हरि आय जजे तित मोद धरे, हम पूजत ही सब पाप हरे ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमङ्गलमण्डिताय
श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यम्।

दोहा

हे मृगाङ्क अङ्कित चरण, तुम गुण अगम अपार ।
गणधर से नहिं पार लहिं, तो को वरनत सार ॥
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरै अति उमगाय ॥
तातें गाऊँ सुगुण तुम, तुम ही होहु सहाय ॥

छन्द पद्धरि (१६ मात्रा)

जय चन्द्र जिनेन्द्र दया - निधान,
भव-कानन-हानन दव - प्रमान ।
जय गरभ जनम मङ्गल दिनन्द,
भवि जीव विकाशन शर्मकन्द ॥
दशलक्षपूर्व की आयु पाय,
मनवांछित सुख भोगे जिनाय ।
लखि कारण ह्वै जग तैं उदास,
चिन्त्यो अनुप्रेक्षा सुखनिवास ॥
तित लौकान्तक बोध्यो नियोग,
हरि शिविका सजि धरियो अभोग ।
तापै तुम चढ़ि जिन चन्द्रराय,
ता छिन की को शोभा कहाय ॥
जिन अङ्ग सेत सित-चमर ढार,
सित - छत्र शीस गलगुल कहार ।
सित रतन-जड़ित भूषण विचित्र,
सित चन्द्र-चरण चरचें पवित्र ॥

सित तन-द्युति नाकाधीश आप,
सित-शिविका कांधे धरि सुचाप ।
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व,
सित-चित में चिन्तत जात पर्व ॥
सित चन्द्रनगर तें निकसि नाथ,
सित-वन में पहुँचे सकल साथ ।
सित शिला शिरोमणि स्वच्छ छांह,
सित-तप तित धार्यो तुम जिनाह ॥
सित पय को पारण परम सार,
सित चन्द्रदत्त दीनों उदार ।
सित कर में सो पय धार देत,
मानों बांधत भवसिन्धु सेत ॥
मानों सुपुण्य धारा प्रतच्छ,
तित अचरज पन सुर किय ततच्छ ।
फिर जाय गहन सित तप करन्त,
सित केवलज्योति जग्यो अनन्त ॥
लहि समवसरन रचना महान,
जाके देखत सब पाप हान ।
जहँ तरु अशोक शोभे उतङ्ग,
सब शोक तनो चूरे प्रसङ्ग ॥

सुर सुमनवृष्टि नभ तैं सुहात,
मनु मन्मथ तज हथियार जात।
बानी जिनमुख सों खिरय सार,
मनु तत्त्वप्रकाशन मुकुर-धार ॥

जँह चौंसठ चमर अमर ढुरन्त,
मनु सुजन मेघ झरि लगिय तन्त।
सिंहासन है जँह कमलयुक्त,
मनु शिव सरवर को कमलशुक्त ॥

दुंदुभि जित बाजत मधुर सार;
मनु करमजीत को है नगार।
शिर छत्र फिरे त्रय श्वेत वर्ण,
मनु रतन तीन त्रय पापहर्ण ॥

तनप्रभा तनों मण्डल सुहात,
भवि देखत निज भव सात सात।
मनु दर्पण-द्युति मह जगमगाय,
भविजन भवमुख देखत सु आय ॥

इत्यादि विभूति अनेक जान,
बाहिज दीसत महिमा महान।
ताको बरणत नहिं लहत पार,
तौ अन्तरङ्ग को कहै सार ॥

श्री चन्द्रप्रभजिन पूजा

अनअन्त गुणनि जुत करि विहार,
धर्मोपदेश दे भव्य ...।
फिर जोग निरोधि अघाति हान,
सम्मेद थकी लिय मुकतिथान ॥
"वृन्दावन" वन्दत शीश नाय,
तुम जानत सो मम उर जु भाय।
तातें मैं कहों सु वार वार,
मनवांछित कारज सार सार ॥

छन्द—घत्तानन्द

जय चन्द्रजिनन्दा, आनंदकन्दा, भवभयभञ्जन राजें हैं।
रागादिक द्वन्दा, हर सब फंदा, मुकतिमांहि थिति साजें हैं ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द चौबोला

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचन्द्र जजें।
ताके भवभव के अघ भाजें, मुक्ति सारसुख ताहि सजें ॥
जमके त्रास मिटें सब ताके, सकल अमंगल दूर भजें।
'वृन्दावन' ऐसो लखि पूजत, जातें शिवपुर राज रजें ॥

इत्याशीर्वादः, परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्। इति श्रीचन्द्रप्रभजिनपूजा।

श्री शीतलनाथ-पूजा

(कविवर पं० मनरङ्गलाल कृत)

स्थापना-गीता छन्द

है नगर भद्दिल भूप द्रढ़रथ, सुघड़ नन्दा ता त्रिया,
तजि अच्युत दिवि[1] अभिराम[2] शीतलनाथ सुत ताके प्रिया।
इक्ष्वाकु वन्शी अंक[3] श्रीतरु, हेमवरण शरीर है,
धनु नवे उन्नत पूर्व लख इक, आयु सुभग[4] परी रहे।
सोरठा-सो शीतल सुखकन्द तजि परिग्रह शिवलोक गे,
छूट गयो जगधंद, करियत तों[5] आह्वान अत्र।

ओं ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्र अत्रावतरावतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्) अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधीकरणं)

अष्टक, गीताछन्द

नित[6] तृषा[7] पीड़ा करत अधिकी, दाव अबके पाइयो,
शुभ कुम्भ कंचन जड़ित गंगा, नीर भरि ले आइयो।
तुम नाथ शीतल करो शीतल, मोहि भवकी तापसों,
मैं जजों युगपद[8] जोरि करि[9] मो, काज सरसी आपसों।

ओं ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युरोगविनाशनाय जलम्

---

१ स्वर्ग, २ सुन्दर, ३ चिन्ह, ४ सुन्दर, ५ इसलिए, ६ हमेशा, ७ प्यास, ८ दोनों चरण, ९ हाथ जोड़कर।

जाकी महक सों नीम आदिक, होत चन्दन जानिये,
सो सूक्ष्म घसि के मिला केशर, भरि कटोरा आनिये। तुम०

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनम्।

मैं जीव संसारी भयो अरु, मर्यो ताको पार ना,
प्रभु पास अक्षत ल्याय धारे, अखय पदके कारना। तुम०

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्।

इन मदन मोरी सकति थोरी, रह्यो सब जग छाय के,
ता नाश कारन सुमन ल्यायो, महाशुद्ध चुनाय के। तुम०

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम्।

क्षुध रोग मेरे पिंड लागो, देत मांगे ना घरी,
ताके नसावन काज स्वामी, ले चरू आगे धरी। तुम०

ओं ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।

अज्ञान तिमिर महान अन्धा-कार करि राखो सबै,
निज पर सुभेद पिछान कारण, दीप ल्यायो हूँ अबै। तुम०

ओं ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्।

जे अष्टकर्म महान अतिबल, घेरि मो चेरा कियो,
तिन केर नाश विचारि के ले, धूप प्रभु ढिग खेपियो। तुम०

ओं ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम्।

---

१ दोनों चरण, २ हाथ जोड़कर, ३ क्षुधा मेटने के अर्थ सारे समय लगा रहता है, कोई घड़ी भी नहीं बचती।

शुभ मोक्ष मिलन अभिलाप मेरे, रहत कब की नाथ जू,
फल मिष्ट नाना भांति सुथरे; ल्याइयो निज हाथ जू। तुम०

ओं ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

जल गन्ध अक्षत फूल चरु, दीपक सुधूप कही महा,
फल ल्याय सुन्दर अरघ कीन्हों, दोप सों वर्जित कहा। तुम०

ओं ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम्।

पंचकल्याणक, गाथा छन्द

चैत वदी दिन आठें, गर्भावतार लेत भये स्वामी।
सुर नर असुरन जानी, जजहूँ शीतल प्रभू नामी॥

ओं ह्रीं चैतकृष्णाष्टम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यम्।

माघ वदी द्वादशि को, जन्मे भगवान् सकल सुखकारी।
मति श्रुत अवधि विराजे; पूजों जिनचरण हितकारी॥

ओं ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यम्।

द्वादशि माघ वदी में, परिग्रह तजि वन बसे जाई।
पूजत तहां सुरासुर, हम पूजत यहां गुण गाई॥

ओं ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यम्।

चौदशि पौष वदी में, जगगुरु केवल पाय भये ज्ञानी।
सो मूरति मनमानी, मैं पूजों जिनचरण सुखखानी॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णचतुर्दश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यम्।

आश्विनसुदि अष्टमि दिन, मुक्ति पधारे समेदगिरि सेती।
पूजा करत तिहारी, नशत उपाधि जगतकी जेती॥

ओं ह्रीं आश्विनशुक्लाष्टम्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यम्।

अथ जयमाला

त्रिभंगी छन्द

जय शीतल जिनवर, परम धरमधर, छविके मंदिर शिवभरता।
जय पुत्र सुनन्दा के गुणवृन्दा, सुखके कंदा, दुख हरता॥
जय नासादृष्टी, हो परमेष्ठी, तुम पदनेष्ठी, अलख भये।
जय तपो चरनमा, रहत चरनमा, सुआ चरणमा, कलुप गये॥

सृग्विणी छन्द

जय सुनन्दा के नन्दा तिहारी कथा, भापि को पार पावे कहावे यथा। नाथ तेरे कभी होत भव रोग ना, इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग ना॥ अग्नि के कुण्ड में वल्लभा राम की, नाम तेरे बची सो सती काम की। नाथ तेरे कभी होत भवरोग ना, इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग ना॥

द्रोपदी चीर बाढ़ो तिहारी सही, देव जानी सबों में सुलज्ज रही॥ नाथ०॥ कुष्ट राखो न श्रीपाल को जो महा, अब्धि तें काढ़लीनों सितावी तहां॥ नाथ०॥

अंजना काटि फांसी गिरो जो हतो, श्री सहाई तहां तो विना को हतो॥नाथ०॥ शैल फूटो गिरो अन्जनीपूत के, चोट ताके लगी ना तिहारे तके॥नाथ०॥ कूदियो शीघ्र ही नाम तो गायके, कृष्णकाली नथो कुण्ड में जायके॥नाथ०॥

पांडवा जे घिरे थे लखागार में, राह दीन्ही तिन्हें ते महा-प्यार में॥ नाथ०॥ सेठ को शूलिका पै धरो देख के,

कीन्ह सिंहासनं आपनो लेखके ॥ नाथ० ॥ जो गिनाये
इन्हें आदि देके सबै, पादपरसादतें भे सुखारी सबै ॥नाथ॥०
वार मेरी प्रभू देर कीन्हीं कहा;
कीजिये दृष्टि दाया की मोपे अहा ॥नाथ०
धन्य तू धन्य तू धन्य तू मैं नहा,
जो पञ्चमो महाज्ञान नीके लहा ॥ नाथ०
कोटि तीरत्थ है तेरे पदों के तले,
रोज ध्यावें मुनी सो बतावें भले ॥ नाथ०
जानि के यों भली भांति ध्याऊँ तुझे,
भक्ति पाऊँ यही देव दीजे मुझे ॥ नाथ०

गाथा

आपद सब दीजे भार झोंकि, यह पढ़त सुनत जयमाल ।
होत पुनीत करण अरु जिह्वा, वरते नित आनंद जाल ॥
पहुँचे जहँ कबहूँ पहुँच नहीं, नहिं पाई पावे हाल ।
नहीं भयो सो होय सबेरे, सु भापत 'मनरङ्गलाल' ॥

ओं ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सोरठा

भो शीतल भगवान, तो पद-पत्ती जगत में ।
हैं जेते परवान, पक्ष रहे तिन पर बनी ॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

श्रीवासुपूज्य-पूजा

स्थापना-गीता छन्द

शुभ पुरी चम्पा नृपति जहँ वसु, पूज्य विजया ता त्रिया ।
तजि महाशुक्र विमान ता घर, वासुपूज्य भये प्रिया ॥
हेम वरन उचाव सत्तरि, चाप वंश इक्ष्वाकु हैं ।
सत्तरि औ द्वै लख वर्ष आउप, अङ्क महिप भला कहें ॥

सोरठा—वासुपूज्य जिन-देव, तजि आपद जिनपद लयो ।
करत इन्द्र पद सेव, मैं टेरत इहँ आव अब ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अत्रावतरावतर संवौषट् (इत्याह्वाननं)
ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इतिस्थापनं)
ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय ! अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् ।

(इति सन्निधीकरणम्)

अष्टक

भरि सलिल महाशुचि झारी, दे तीन धार सुखकारी ।
पद पूजन करहुं बनाई, जासों गति चार नसाई ॥
ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् ।

घसि बावन चन्दन लाऊँ, नानाविध गन्ध मिलाऊँ । पद०
ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनम् ।

अक्षत ले दीर्घ अखण्डे, अति मिष्ट महाद्युति मण्डे । पद०
ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् ।

वृन्दार कनक के फूला, बहु ल्याय धरों सुखमूला । पद०
ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् ।

सुमधुर पकवान घनेरा, ले-मोदक लाडू पेरा । पद०

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् ।

करि रत्न तनो शुभ दीयो, निज हाथन पै धरि लीयो । पद०

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् ।

कृष्णागरु धूप मिलाई, दहिये शुभ ज्वाल मँगाई । पद०

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम् ।

फल आम नारङ्गी केरा, बादाम छुहारा घनेरा । पद०

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् ।

ले आठों द्रव्य सुहाई, जल आदिक जे शुभ गाई ।

पदपूजन करहुँ बनाई, जासों गति चार नसाई ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यम् ।

पञ्चकल्याणक, छन्द काव्य

आषाढ़ बदी छटि गाई, जिन गर्भ रहे सुखदाई ।

हम गर्भ दिना लखि सारा, ले अर्घ्य जजों हितकारा ॥

ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठयां गर्भमङ्गलमण्डिताय
श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

वदि फाल्गुन चौदसि जानी, विजया ने जने सुखखानी ।

वह मूरति मो मन भाई, जजिये पद अर्घ्य बनाई ॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्मकल्याणकमण्डिताय
श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

वदि फाल्गुन चौदसि दीक्षा, लीनी अपनी शुभ इच्छा ।

तब देवन जय जय कीन्हीं, हम पूजत हैं गुण चीन्हीं ॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां दीक्षामहोत्सवमण्डिताय
श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यम्

दिन माघ सुदी दुतिया के, अपराह्न समय सुख जाके।
उपजो पद केवल घेरा, पद पूजि लहो शिव डेरा॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वितीयायां ज्ञानकल्याणकसंयुक्ताय
श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यम्।

चम्पापुर तें सुखदानी, भादों सुदि चौदशि मानी।
अविनाशी जाय कहाये, ले अर्घ्य जजों गुण गाये॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय
श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यम्।

जयमाला

जय जय विजया-सुत सकल जगत नुत,
अष्ट कर्म च्युत जित मयना।
गुणसिन्धु तिहारे चरण निहारे,
सफल हमारे भे नयना॥
जो हती कालिमा कुगुरु लखन की,
भाजि गई सो इक पलमा।
पाई मैं साता नाशि असाता,
शान्ति परी मो अन्तरमा॥

छन्द चाल

जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र देव जू।
पुलोमजा पती करें, पदारविन्द सेव जू॥
दीनबन्धु दीन के, सन्हारि काज कीजिये।
मो तने निहारि आप, मैं मिलाप लीजिये॥

राग दोष नाशि के, भये सुवीतराग जू।
मुक्ति – वल्लभा वनों, जगो महान भाग जू ॥दीन०
भूख प्यास जन्म रोग, जरा मृत्यु रोग ना।
खेद स्वेद भीति भाव, हू अचम्भ सोग ना ॥दीन
नीद मोह जाति लाभ, आदि दे नहीं मदा।
वर्जितं अरत्ति है, अचिन्त भाव तो सदा ॥दीन०
दोष नाशि के अदोष, देव तू प्रमान है।
दोष लीन देव जो, कुदेव के समान है ॥दीन०
पाय के कुदेव साथ, नाथ मैं महा भमो।
लक्ष चार औ अशीति, योनि मांझ ही गमो ।दीन०
देख तो पदारविन्द, नाथ शुद्धि मो भई।
जानि के कुदेव त्याग, – रूप बुद्धि परनई ॥दीन०
जो पदारविन्द नाथ, शीश पै नहीं वहै।
बूड़ते समुद्र यान, छांड़ि पाहने गहे ॥दीन०
तो विना न देव जीव, मोक्ष राह पावही।
तो विवेक आप और, कोइ से न आवही ॥दीन०
मान त्याग भाव तो, चरन्न में लगावहीं।
सो अमान पूज्यमान, सिद्धि ठान जावहीं ॥दीन०
तो प्रसाद नाथ पंगु, ला चढ़े पहार पै।
जो चढ़े अचम्भ नाहिं, जीत लेय मार पै ।दीन०

मूक बोले बैन मिष्ट, इष्टता धरै महा।
तो प्रभाव सिद्धिनाथ, होय ना कहा कहा ॥दीन०
रेणुका पदारविन्द की, महा पुनीत सो।
सीस पै धरै सुधार, होव है अमीत सो ॥दीन०
भे भवाब्धि पार जे, निहारि रूप तो तनो।
'मनरङ्गलाल' को सदा, सहाय तू रहो बनो ॥
दीनबन्धु दीन के, सम्हारि काज कीजिये।
मो तने निहारि आप में, मिलाय लीजिये ॥

घत्ता—वासुपूज्य जिनराय, प्रभू की शुभ जयमाला।
करम तनो ऋण हरण, काज बरनी सुखशाला ॥
पढ़त सुनत बुधि बढ़त, नशत दारिद दुखदाई।
जस उमड़त दश दिशा, धरम सों होत मिताई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यंम्।

सोरठा

श्री शान्तिनाथ जिनपूजा

(कविवर पं० विन्द्रावनजी कृत)

मत्तगयन्द छन्द (तथा यमकालंकार)

या भवकानन में चतुरानन, पाप पनानन घेरि हमेरी।
आतम जानन मानन ठानन, बान न होन दई शठ मेरी॥
ता मद भानन आपहि हो, यह छानन आनन आनन टेरी।
आन गही शरणागत को अब, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक।

छन्द त्रिभंगी अनुप्रासक (मात्रा ३२ जगणवर्जित।)

हिमगिरि गत गंगा, धार अभंगा, प्रासुक संगा, भरि भृङ्गा।
जर मरन मृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदु हिंगा॥
श्री शान्तिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृष चक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरिचक्रेशं हे गुणधेशं, दयामृतेशं मक्रेशं॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम्।

वर बावन चन्दन कदलीनन्दन, घनआनन्दन सहित घसों।
भवतापनिकन्दन, एरानन्दन, वंदि अमंदन, चरन वसों॥श्री०

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनम्।

हिमकर करि लज्जत, मलयसुसज्जत, अच्छत जज्जत भरिथारी।
दुखदारिदगज्जत सत्पदसज्जत, भवभयभज्जत अतिभारी॥श्री०

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्।

मन्दार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं मलयभरं।
भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी धीरधरं ॥श्री०

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम्।

पकवान नवीने, पावन कीने, षट्‌रस भीने, सुखदाई।
मनमोदन हारे, छुधा विदारे, आगे धारे गुन गाई ॥श्री०

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम्।

तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रमतम नाशे, ज्ञेय विकाशे सुख रासे।
दीपक उजियारा, यातें धारा, मोहनिवारा निज भासे ॥श्री०

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्।

चन्दन करपूरं, करि वरचूरं, पावक भूरं, मांहि जुरं।
तसु धूप उड़ावे, नाचत जावे, अलि गुंजावें, मधुरसुरं ॥श्री०

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम्।

बादाम खजूरं दाडिम पूरं, निम्बुक भूरं, ले आयो।
तासों पदजज्जों, शिवफलसज्जों, निजरसरज्जों, उमगायो ॥श्री०

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है,सकल इन्द्र सुआगत धाम है।
गजपुरे गज साजि सबै तबै, गिरि जजें इत मैं जजिहों अबै ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय शान्तिनाथायार्घ्यंम्

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार सबै तपधार हैं।
अमर चौदशि जेठ सुहावनी, धरमहेत जजों गुन पावनी ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलप्राप्ताय शान्तिनाथायार्घ्यंम्

शुकलपौष दशैं सुखराश है, परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है।
भवसमुद्र-उधारन देव की, हम करें नित मंगल सेवकी ॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय शान्तिनाथाय अर्घ्यंम्

असित चौदस जेठ हने अरी,गिरिसमेद थकी शिवतिय वरी।
सकल इन्द्र जजें तित आयकें, हम जजें इत मस्तक नायकें ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय शान्तिनाथाय अर्घ्यंम्

छन्द रथोद्धता, इन्द्रवत्सा तथा चंद्रवत्र्म, वर्ण ११, लाटानुप्रास

शान्ति शान्तिगुण-मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा।
मैं तिन्हें भगतिमंडिते सदा, पूजि हों कलुषहंडिते सदा ॥
मोक्ष हेत तुमही दयाल हो, हे जिनेश गुनरत्नमाल हो।
मैं अबै सुगुणदाम ही धरों, ध्यावतें तुरित मुक्ति-ती वरों ॥

जय शान्तिनाथ चिद्रूप - राज,
भवसागर में अद्भुत जहाज।
तुम तज सरवारथसिद्ध थान,
सरवारथ जुत गजपुर महान ॥

तित जनम लियो आनन्द धार,
हरि ततछिन आयो राजद्वार ।
इन्द्रानी जाय प्रसूति - थान,
तुमको कर में ले हरष मान ॥
हरि गोद देय सो मोद धार,
सिर चमर अमर ढारत अपार ।
गिरिराज जाय तित शिलापांड,
तापै थाप्यो अभिषेक मांड ॥
तित पंचम उदधि तनों सुवार,
सुर कर कर करि ल्याये उदार ।
तब इन्द्र सहस कर करि अनन्द,
तुम शिर धारा ढारयो सुनन्द ॥
अघ घघ घघ घघ धुनि होत घोर,
भभ भभ भभ घघ घघ कलश शोर ।
द्रम द्रम द्रम द्रम बाजत मृदंग,
झन नन नन नन नन नूपुरंग ॥
तन नन नन नन नन तनन तान,
घन नन नन घंटा करत ध्वान ।
ताथेइ थेइ थेइ थेइ थेइ सुचाल,
जुत नाचत नावत तुमहिं भाल ॥
चट चट चट झटपट नटत नाट,
झट झट झट हट नट शट विराट ।

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है,सकल इन्द्र सुआगत धाम है।
गजपुरे गज साजि सबै तबै, गिरि जजें इत मैं जजिहों अबै ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय शान्तिनाथायार्घ्यंम्
भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार सबै तपधार हैं।
भ्रमर चौदशि जेठ सुहावनी, धरमहेत जजों गुन पावनी ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलप्राप्ताय शान्तिनाथायार्घ्यंम्
शुकलपौष दशैं सुखराश है, परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है।
भवसमुद्र-उधारन देव की, हम करें नित मंगल सेवकी ॥
ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय शान्तिनाथाय अर्घ्यंम्
असित चौदस जेठ हने अरी,गिरिसमेद थकी शिवतिय वरी।
सकल इन्द्र जजें तित आयकें, हम जजें इत मस्तक नायकें ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय शान्तिनाथाय अर्घ्यंम्

छन्द रथोद्धता, इन्द्रवत्सा तथा चंद्रवर्त्म, वर्ण ११, लाटानुप्रास

शान्ति शान्तिगुण-मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा।
मैं तिन्हें भगतिमंडिते सदा, पूजि हों कलुषहंडिते सदा ॥
मोक्ष हेत तुमही दयाल हो, हे जिनेश गुनरत्नमाल हो।
मैं अबै सुगुणदाम ही धरों, ध्यावतें तुरित मुक्ति-ती वरों ॥

जय शान्तिनाथ चिद्रूप - राज,
भवसागर में अद्भुत जहाज।
तुम तज सरवारथसिद्ध थान,
सरवारथ जुत गजपुर महान ॥

तित जनम लियो आनन्द धार,
हरि ततछिन आयो राजद्वार।
इन्द्रानी जाय प्रसूति – थान,
तुमको कर में ले हरष मान॥
हरि गोद देय सो मोद धार,
सिर चमर अमर ढारत अपार।
गिरिराज जाय तित शिलापांड,
तापै थाप्यो अभिषेक मांड॥
तित पंचम उदधि तनों सुवार,
सुर कर कर करि ल्याये उदार।
तब इन्द्र सहस कर करि अनन्द,
तुम शिर धारा ढारयो सुनन्द॥
अघ घघ घघ घघ धुनि होत घोर,
भभ भभ भभ धध धध कलश शोर।
द्रम द्रम द्रम द्रम बाजत मृदंग,
झन नन नन नन नन नूपुरंग॥
तन नन नन नन नन तनन तान,
घन नन नन घंटा करत ध्वान।
ताथेइ थेइ थेइ थेइ थेइ सुचाल,
जुत नाचत नावत तुमहिं भाल॥
चट चट चट अटपट नटत नाट,
झट झट झट हट नट शट विराट।

इमि नाचत राचत भगत रंग,
सुर लेत जहां आनन्द संग ॥
इत्यादि अतुल मंगल सुठाट,
तित बन्यो जहाँ सुरगिरि विराट ।
पुनि करि नियोग पितुसदन आय,
हरि सौंप्यो तुम तित वृद्ध थाय ॥
पुनि राज माहिं लहि चक्ररत्न,
भोग्यो छखंड करि धरम जत्न ।
पुनि तप धरि केवल-रिद्धि पाय,
भवि जीवन कों शिवमग बताय ।
शिवपुर पहुँचे तुम हे जिनेश !
गुनमण्डित अतुल अनन्त भेष ।
मैं ध्यावतु हों नित शीश नाय,
हमरी भवबाधा हर जिनाय ॥
सेवक अपनो निज जान जान,
करुणा करि भवभय भान भान ।
यह विघनमूल तरु खंड खंड,
चितचिन्तित आनँद मंड मंड ॥

घत्तानन्द छन्द (मात्रा ३१)

श्रीशान्तिमहंता, शिवतियकंता, सुगुन अनन्ता, भगवन्ता ।
भवभ्रमन हनंता, सौख्य अनंता, दातारं तारनवन्ता ॥
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा

(कविवर पं० बख्तावरमलजी कृत)

गीता छन्द

वर स्वर्ग प्राणत कों विहाय, सुमात वामा सुत भये ।
अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर नये ॥
नव हाथ उन्नत तनु विराजे, उरग लच्छन पद लसें ।
थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठो, करम मेरे सब नसें ॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अथाष्टक–छन्द नाराच

क्षीर सोम के समान, अम्बुसार लाइये ।
हेमपात्र धारिकें सु, आपको चढ़ाइये ॥
पार्श्वनाथ देव सेव, आपकी करूँ सदा ।
दीजिये निवास मोक्ष, भूलिये नहीं कदा ॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् ।

चन्दनादि केशरादि, स्वच्छ गन्ध लीजिये ।
आप चर्न चर्च मोह, ताप को हनीजिये ॥ पार्श्व०

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनम् ।

फेन चन्द्र के समान, अक्षतान लाइकें ।
चर्न के समीप सार, पुञ्ज को रचाइकें ॥ पार्श्व०

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् ।

केवड़ा गुलाब और, केतकी चुनायकें ।
धार चर्ण के समीप, काम को नशायकें ॥ पार्श्व०

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् ।

घेवरादि बावरादि, मिष्ट सद्य में सने ।
आप चर्ण चर्चतें, क्षुधादिरोग को हनें । पार्श्व०
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् ।
लाय रत्नदीप को; सनेह पूर से भरूँ ।
वातिका कपूर वारि, मोहध्वान्तकूँ हरूँ ॥ पार्श्व०
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् ।
धूप गन्ध लेय के, सु अग्नि सङ्ग जारिये ।
तासु धूप के सुसङ्ग, अष्टकर्म वारिये ॥ पार्श्व०
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम् ।
खारिकादि चिरभटादि, रत्नथाल में भरों ।
हर्ष धारिकें जजों, सुमोक्ष सौख्य को वरों ॥ पार्श्व०
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् ।
नीर गन्ध अक्षतान्, पुष्प चारु लीजिये ।
दीप धूप श्रीफलादि, अर्घ्य तें जजीजिये ॥ पार्श्व०
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अक्षतम् ।

पञ्चकल्याणकों के अर्घ्य, छन्द चाल

शुभ प्राणत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये ।
वैशाख तनी दुतिकारी, हम पूजें विघ्ननिवारी ॥
ओंह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमङ्गलप्राप्ताय पार्श्वनाथायार्घ्यम् ।
जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता ।
श्यामा तनु अद्भुत राजै, रविकोटिक तेज सुलाजै ॥
ओंह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममङ्गलप्राप्ताय पार्श्वनाथायार्घ्यम् ।

कलि पौष इकादशि आई, तब बारहभावन भाई ।
अपने कर लोंच सु कीना, हम पूजें चरन जजीना ॥
ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमङ्गलप्राप्ताय पार्श्वनाथायार्घ्यम् ।
कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई ।
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना ॥
ओं ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थीदिने केवलज्ञानप्राप्ताय पार्श्वनाथायार्घ्यम् ।
सित सातें सावन आई, शिवनारि वरी जिनराई ।
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजें मोक्षकल्याना ॥
ओं ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय पार्श्वनाथायार्घ्यम् ।

अथ जयमाला, छन्द

पारसनाथ जिनेन्द्र तने वच, पौनभखी जरतें सुन पाये ।
करयो सरधान लह्यो पद आन, भयो पद्मावति शेष कहाये ॥
नाम प्रताप टरै सन्ताप, सु भव्यन को शिवशर्म दिखाये ।
हैं विश्वसेन के नन्द भले, गुण गावत हैं तुमरे हरखाये ॥
दोहा—केकी-कण्ठ-समान छवि, वपु उतङ्ग नव हाथ ।
लक्षण उरग निहार पग, वन्दों पारसनाथ ॥

पद्धरी छन्द

रची नगरी छह मास अगार, बने चहुं गोपुर शोभ अपार ।
सु कोटतनी रचना छवि देत, कँगूरन पै लहकें बहुकेत ॥
बनारसकी रचना जु अपार, करी बहुभांति धनेश तयार ।
जहां विश्वसेन नरेन्द्र उदार, करे सुख वाम सु दे पटनार ॥
तज्यो तुम प्रानत नाम विमान, भये तिनके वर नन्दन आन ।

तबै सुर इन्द्र नियोगन आय, गिरिंद करी विधिन्हौंन सुजाय ॥
पिता-घर सौंपि गये निज धाम, कुबेर करे वसुजाम सुकाम ।
बढे जिन दोजमयंक समान, रमें बहु बालक निर्जर आन ॥
भये जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत्त महासुखकार ।
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरै मम आस ॥
करी तब नाहिं रहे जगचन्द, किये तुम काम कषाय जु मन्द ।
चढ़े गजराज कुमारन सङ्ग, सु देखत गंग तनो सु तरङ्ग ॥
लख्यो इक रङ्क करे तप घोर, चहूँ दिशि अगनि बलै अतिजोर ।
कहे जिननाथ अरे सुन भ्रात, करे बहु जीवनकी मत घात ॥
भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव ।
लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव ब्रह्मरिषीसुर आय ॥
तबहिं सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निजकंध मनोग ।
कियो वन मांहि निवास जिनन्द, धरे व्रत चारित आनन्दकन्द ॥
गहे तहँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तने जु अवास ।
दियो पयदान महा सुखकार, भई पनवृष्टि तहां तिहिं बार ॥
गये तब कानन माहिं दयाल, धर्‍यो तुम योग सबहिं अघ टाल ।
तबै वह धूम सुकेत अयान, भयो कमठाचरको सुर आन ॥
करै नभ गौन लखे तुम धीर, सुपूरब वैर विचार गहीर ।
कियो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहुती तण पवन झकोर ॥
रह्यो दशहू दिशमें तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय ।
सुरुण्डनके विन मुण्ड दिखाय, पड़े जल मूसलधार अथाय ॥

तबै पदमावति-कन्थ धनिन्द, चले जुग आय जहां जिनचन्द ।
भग्यो तब रङ्क सुदेखत हाल, लह्यो तब केवलज्ञान विशाल ॥

दियो उपदेश महा हितकार, सुभव्यन बोधि समेद पधार ।
सुवर्णभद्र जहँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनार लही वसु रिद्ध ॥

जजूं तुम चरन दुहू कर जोर, प्रभू लखिये अब ही मम ओर ।
कहै 'बखतावर' रत्न बनाय, जिनेश हमें भवपार लगाय ॥

घत्ता

जय पारस देवं सुरकृत सेवं, वन्दत चर्न सु नागपती ।
करुणा के धारी, पर उपकारी, शिव सुखकारी, कर्महती ॥

ओं ह्रीं पार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

अडिल्ल छन्द

जो पूजे मन लाय, भव्य पारसप्रभु नितही ।
ताके दुख सब जांय, भीति व्यापै नहिं कितही ॥

सुख सम्पति अधिकाय, पुत्र मित्रादिक सारे ।
अनक्रम सों शिव लहे, 'रतन' इमि कहे पुकारे ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्) ।

श्री महावीर जिन-पूजा

(कविवर विन्द्रावनजी कृत)

मत्तगयंद-छन्द

श्रीमत वीर हरें भवपीर, भरें सुखसीर अनाकुलताई ।
केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतिमौलि सुआइ ॥
मैं तुमको इत थापतु हों प्रभु, भक्ति समेत हिये हरपाई ।
हे करुणाधनधारक देव यहां,अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई ॥

ओं ह्री महावीरभगवन् ! अत्रावतरावतर संवौषट् इत्याह्वाननम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम् ।

क्षीरोदधि सम शुचि – नीर, कञ्चन – भृङ्ग भरों ।
प्रभु वेग हरो भवपीर, यातें धार करों ॥
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति – नायक हो ।
जय वर्धमान गुण – धीर, सन्मति दायक हो ॥

ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय सुगन्धम् नि० ।

मलयागिर चन्दन सार, केसर संग घिसों ।
प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसों ॥ श्री वीर०

ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय सुगन्धम् नि० ।

तन्दुल सित शशिसम शुद्ध, लीने थार भरी ।
तसु पुञ्ज धरों अविरुद्ध, पाऊँ शिवनगरी ॥ श्री वीर०

ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षतम् नि० ।

सुरतरु के सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे।
सो मनमथ – भंजन हेत, पूजों पद थारे ॥ श्री वीर०
ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय पुष्पम् नि०

रस रज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी।
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥ श्री वीर०
ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय नैवेद्यम् नि०।

तम खण्डित मण्डित नेह, दीपक जोवत हों।
तुम पदतर हे सुख-गेह, भ्रमतम खोवत हों ॥ श्री वीर०
ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय दीपम् नि०।

हरि चन्दन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा।
तुम पदतर खेवत भूर, आठों कर्म जरा ॥ श्री वीर०
ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय धूपम् नि०।

रितु फल कलवर्जित लाय, कञ्चन-थार भरों।
शिवफल-हित हे जिनराय, तुम ढिग भेंट धरों ॥ श्री वीर०
ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय फलम्।

जलफल वसु सजि हिमथार, तन मन मोद धरों।
गुण गाऊँ भवदधि पार, पूजत पाप हरों ॥ श्री वीर०
ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यम् नि०।

पंचकल्याणक-राग टप्पा।

मोहि राखो हो शरना, श्रीवर्धमान जिनराजजी। मोहि०
गरभ षाढ़सित छट्ठ लियो तिथि, त्रिशला उर अघहरना।

सुर सुरपति तित सेव करी नित, मैं पूजों भवतरना ॥ मोहि०

ओं ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भमङ्गलमण्डिताय
श्री महावीरजिनाय अर्घ्यम् ।

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कनवरना ।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भव हरना ॥ मोहि०

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममङ्गलमण्डिताय
श्री महावीरजिनाय अर्घ्यम् ।

मगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना ।
नृपकुमार-घर पारण कीनी, मैं पूजों तुम चरना ॥ मोहि०

ओं ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमङ्गलमण्डिताय
श्री महावीरजिनाय अर्घ्यम् ।

शुक्ल दशैं वैशाख दिवस अरि, घातिचतुक क्षय करना ।
केवल लहि भवि भवसर तारे, जजों चरन-सुखभरना ॥ मोहि०

ओं ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां केवलज्ञानमङ्गलमण्डिताय
श्री महावीरजिनाय अर्घ्यम् ।

कातिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुर तैं वरना ।
गणफणिवृन्द जजें तित बहुविधि, मैं पूजों भवहरना ॥ मोहि०

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलमण्डिताय
श्री महावीरजिनाय अर्घ्यम् ।

जयमाला, छन्द हरिगीता, २८ मात्रा

गणधर अशनिधर चक्रधर, हलधर गदाधर वरवदा ।
अरु चापधर विद्यासुधर, तिरशूलधर सेवहिं सदा ॥
दुःखहरन आनंदभरन तारन, तरन चरन रसाल है ।
सुकुमाल गुनमणिमाल उन्नत, भाल की जयमाल है ॥

घत्ता

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन, कंदवरं ।
भवतापनिकंदन, तनकनमंदन, रहित सपन्दन नयनधरं ॥

त्रोटक छन्द

जय केवलभानुकलासदनं, भवि कोक विकाशन-कञ्जवनं ।
जगजीत महारिपु मोहहरं, रज ज्ञान दृगाम्बर चूरकरं ॥
गर्भादिकमंगल मण्डित हो, दुखदारिदको नित खंडित हो ।
जगमांहि तुम्हीं सतपंडित हो, तुमही भवभावविहंडित हो ॥
हरिवंशसरोजनकों रवि हो, बलवंत महंत तुम्हीं कवि हो ।
लहि केवल धर्मप्रकाश कियो, अबलों सोइ मारग राजतयो ॥
पुनि आप तने गुनमांहि सही, सुरमग्न रहें जितने सब ही ।
तिनकी वनिता गुन गावत हैं, लय ताननि सों मन भावत हैं ।
पुनि नाचत रङ्ग उमङ्ग भरी, तुव भक्तिविषें पग एम धरी ।
झननं झननं झननं झननं, सुर लेत तहां तननं तननं ॥
घननं घननं घनघण्ट बजैं, दृमदम दृमदम मिरदङ्ग सजें ।
गगनांगन गर्भ-गता सुगता, ततता ततता अतता वितता ॥
धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसाल जु छाजत है ।
सननं सननं सननं नभ में, इकरूप अनेक जु धार भमें ॥
कई नारि सुवीन बजावत हैं, तुमरो जस उज्ज्वल गावत हैं ।
करताल विषें करताल धरें, सुरताल विशाल जु नाद करें ॥

इन आदि अनेक उछाह भरी, सुर भक्ति करें प्रभुजी तुम्हरी ।
तुमही जगजीवन के पितु हो, तुमही बिनकारनके हितु हो ॥
तुमही सब विघ्नविनाशन हो, तुमही निज आनन्द भासन हो ।
तुमही चितचिंततदायक हो, जगमाँहि तुम्हीं सब लायक हो ॥
तुमरे पनमङ्गल मांहि सही, जिय उत्तम पुण्य लियो सबही ।
हमतो तुमरी शरनागत हैं, तुमरे गुन में मन पागत हैं ॥
प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जबलों वसुकर्म नहीं नसिये ।
तबलों तुम ध्यान हिये वरतो, तबलों शुतचिंतन चित्त रतो ॥
तबलों व्रतचारित चाहत हों, तबलों शुभभाव सुगाहत हो ।
तबलों सतसङ्गति नित्य रहो, तबलों मम संजम चित्त गहो ॥
जबलों नहिं नाश करों अरिको, शिवनारि वरों समता धरिकों ।
यह द्योत बलों हमको जिनजी, हम जांचतु हैं इतनी सुनजी ॥

घत्ता

श्री वीर जिनेशा, नमत सुरेशा, नागनरेशा, भगति भरा ।
'वृन्दावन' ध्यावे, विघन नशावे, वाँछित पावे, शर्मवरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय महार्घ्यम् ।

दोहा-श्री सन्मति के जुगलपद, जो पूजे धर प्रीत ।
'वृन्दावन' सो चतुर नर, भजे मुक्ति नवनीत ॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

बुधजन कृत स्तुति

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी ।
यों विरद आप निहार स्वामी, मेंट जामन मरण जी ॥

तुम ना पिछान्या अन्य मान्या, देव विविध प्रकार जी ।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥

भव-विकट-वन में कर्मवैरी, ज्ञानधन मेरी हरयो ।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट हूवो, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो ॥

धनि घड़ी यों धनि दिवस योंही, धन्य जन्म मेरो भयो ।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुजी को लख लयो ॥

छवि वीतरागी नग्न – मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरें ।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुणयुत, कोटि रवि छविको हरें ॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो हर्ष उर ऐसो भयो, मनु रंक चिन्तामणि लयो ॥

मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तुम चरण जी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन तरनजी ॥

जांचूँ नहीं सुर-वास पुनि, नर-राज परिजन साथ जी ।
'बुध' जाचहूँ तुव भक्ति भवभव, दीजिये शिव नाथ जी ॥

—卐—

स्तुति जिनेन्द्र-गुणगान

(कविवर दौलतराम जी)

दोहा—सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द – रस – लीन ।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि-रज-रहस-विहीन ॥

जय वीतराग विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरनसूर ।
जय ज्ञान अनन्तानन्त धार, दृग सुख वीरज मण्डित अपार ॥
जय परमशान्त मुद्रा-समेत, भवि जनको निज अनुभूति हेत ।
भवि-भागन वचजोगे वशाय, तुमधुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय ॥
तुम गुण चिन्तत निजपरविवेक, प्रगटै विघटैं आपद अनेक ।
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप, परमात्म परमपावन अनूप ।
शुभअशुभविभाव अभाव कीन, स्वाभाविकपरिणतिमय अछीन ॥
अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टमय राजत गंभीर ।
मुनि गणधरादि सेवत महन्त, नव केवल-लब्धि-रमा धरन्त ॥
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव ।
भव-सागर में दुख छार वारि, तारनको अवर न आप टारि ॥
यों लखिनिजदुखगदहरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज ।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधिफल पुण्यपाप ।
निजको परको करता पिछान, परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥
आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ।
तनपरणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्वपद सार ॥

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश। पशु नारक नर सुरगति मँझार, भव धर धर मर्यो अनन्तवार। अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल। मन शान्त भयो मिट सकल द्वन्द, चाख्यो स्वातमरस दुख निकन्द॥ तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछरूँ न कभी तुम चरण साथ। तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जगतारन को तुव विरद एव॥ आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय। मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होउँ ज्यों निजाधीन॥ मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश। मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप॥ शशि शान्तिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत। पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभव तैं भव नसाय॥ त्रिभुवन तिहुँकाल मँझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय। मो उर यह निश्चय भयो आज, दुखजलधि उतारन तुम जिहाज॥

तुम गुणगणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति, किमु कहें, नमूँ त्रियोग सँभार॥

स्तुति, जिनेन्द्र-स्तवन

(कविवर–भूधरदास जी)

अहो जगतगुरु देव, सुनिये अरज हमारी ।
तुम प्रभु दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी ॥
इस भव-वनके माहिं, काल अनादि गमायो ।
भ्रम्यो चहूँ गतिमाहिं,सुख नहिं दुख बहु पायो ॥
कर्म-महारिपु जोर, एक न कान करै जी ।
मनमाने दुख देहिं, काहूसों नाहिं डरे जी ॥
कबहूं इतर निगोद, कबहूं नरक दिखावे ।
सुर नर-पशुगति माहिं,बहुविधि नाच नचावे ॥
प्रभु इनको परसंग, भव-भवमाहिं बुरो जी ।
जे दुख देखे देव, तुमसों नाहिं दुरो जी ॥
एक जनम की बात,कहिन सकों सुनि स्वामी ।
तुम अनन्त परजाय, जानन अन्तरजामी ॥
मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे ।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ॥
ज्ञान-महानिधि लूट,रंक निबल करि डारयो ।
इनही तुम मुझ माहिं,हे जिन अन्तर पारयो ॥
पाप पुण्य मिलि दोय, पायनि बेड़ी डारी ।
तन-कारागृह माहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥

इनको नेक विगार, मैं कछु नाहिं कियो जी।
विन कारन जगवन्धु,वहुविधि वैर लियो जी॥
अव आयो तुम पास,सुन जिन सुजस तिहारो।
नीतिनिपुण जगराय, कीजे न्याय हमारो॥
दुष्टन देहु निकाल, साधुन कों रखि लीजे।
विन वै 'भूधरदास' हे प्रभु! ढील न कीजे॥

—————

शारदा—स्तवन

वीर-हिमाचलतैं निकरी, गुरु गौतमके मुखकुण्ड ढरी है।
मोह-महाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञानपयोनिधि मांहि रली, वहुभङ्ग-तरङ्गनिसों उछरी है।
ता शुचि शारद गंगानदी,प्रति मैं अञ्जुलि कर शीश धरी है॥
या जगमन्दिरमें अनिवार, अज्ञान अँधेर छयो अतिभारी।
श्रीजिनकी धुनि दीपशिखा सम,जो नहिं होत प्रकाशन-हारी॥
तो किस भांति पदारथ-पांति, कहां लहते रहते अविचारी।
या विधि सन्त,कहें धनि हैं,धनि हैं जिन-वैन वड़े उपकारी॥

)(—)(

आलोचना पाठ

(पं० भूधरदासजी कृत)

वन्दों पाँचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज ।
कहूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज ॥

सुनिये जिन अरज, हमारी, हम दोष किये अति भारी ।
तिनकी अब निर्वृति काजा, तुम शरन लही जिनराजा ॥
इक वे ते चउ इन्द्री वा, मन रहित-सहित जे जीवा ।
तिनकी नहिं करुना धारी, निर्दय हो घात विचारी ।
समरम्भ सभारम्भ आरम्भ, मन वच तन कीने प्रारम्भ ।
कृत कारित मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्टय धरिके ॥
शत आठ जु इन भेदन तें, अघ कीने परछेदन तें ।
तिनकी कहूँ कौलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥
विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के ।
वश होय घोर अघ कीने, वचतें नहिं जात कहीने ॥
कुगुरुन की सेव जु कीनी, केवल अदयाकर भीनी ।
या विधि मिथ्यात्व बढ़ायो, चहुँगति में दोष उपायो ॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनितासों दृग जोरी ।
आरम्भ परिग्रह भीने, पन पाप जु याविधि कीने ॥
सपरस रसना घ्राणन को, दृग कान विषयसेवन को ।
बहु करम किये मन माने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥
फल पञ्च उदुम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित्त चाये ।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुविसन दुखकारे ॥

बावीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों कर उदर भरायो ॥
अनन्तानुबन्धी सो जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोड़श मुनिये ॥
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संजोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके, वश पाप किये हम ॥
निद्रावश शयन कराया, सुपने में दोष लगाया।
फिर जागि विषयवन धायो, नानाविध विषफल खायो ॥
आहार निहार विहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखे धरा उठाया, बिन शोधा भोजन खाया ॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविध विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है ॥
मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन-भिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषें सब पइये ॥
हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रसजीवन को जु विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उरमें करुणा नहिं लीनी ॥
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जांगा चिनाई।
बिन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखातें पवन बिलोल्यो ॥
हा हा मैं अदयाचारी, बहु हरित जु काय विदारी।
या मधि जीवन के खन्दा, हम खाये धरि आनन्दा ॥

आलोचना पाठ

(पं० भूधरदासजी कृत)

वन्दों पाँचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
कहूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज॥

सुनिये जिन अरज, हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृति काजा, तुम शरन लही जिनराजा॥
इक बे ते चउ इन्द्री वा, मन रहित-सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुना धारी, निर्दय हो घात विचारी।
समरम्भ सभारम्भ आरम्भ, मन वच तन कीने प्रारम्भ।
कृत कारित मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्टय धरिके॥
शत आठ जु इन भेदन तैं, अघ कीने परछेदन तैं।
तिनकी कहूँ कौलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी॥
विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जात कहीने॥
कुगुरुन की सेव जु कीनी, केवल अदयाकर भीनी।
या विधि मिथ्यात्व बढ़ायो, चहुँगति में दोष उपायो॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनितासों दृग जोरी।
आरम्भ परिग्रह भीने, पन पाप जु याविधि कीने॥
सपरस रसना घ्राणन को, दृग कान विषयसेवन को।
बहु करम किये मन माने, कछु न्याय अन्याय न जाने॥
फल पञ्च उदुम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित्त चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुविसन दुखकारे॥

वावीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद त पायो, ज्यों त्यों कर उदर भरायो ॥
अनन्तानुवन्धी सो जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सव भेद जु पोड़श मुनिये ॥
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संजोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके, वश पाप किये हम ॥
निद्रावश शयन कराया, सुपने में दोप लगाया।
फिर जागि विषयवन धायो, नानाविध विषफल खायो ॥
आहार निहार विहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
विन देखे धरा उठाया, विन शोधा भोजन खाया ॥
तव ही परमाद सतायो, वहुविध विकलप उपजायो।
कछु सुधि वुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है ॥
मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू में दोप जु कीनी।
भिन-भिन अव कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषें सव पइये ॥
हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रसजीवन को जु विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उरमें करुणा नहिं लीनी ॥
पृथिवी वहु खोद कराई, महलादिक जांगा चिनाई।
विन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखातें पवन विलोल्यो ॥
हा हा मैं अदयाचारी, वहु हरित जु काय विदारी।
या मधि जीवन के खन्दा, हम खाये धरि आनन्दा ॥

हा हा परमाद वसाई, विन देखे अगनि जलाई ।
ता मध्य जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये ॥
बीधो अन रात पिसायो, ईंधन विन सोधि जलायो ।
झाड़ू ले जगां बुहारी, चिंटि आदिक जीव विदारी ॥
जल छानि जिवानी कीनी, सो भू पुनि डारि जु दीनी ।
नहिं जलथानक पहुँचाई, किरिया विन पाप उपाई ॥
जल मलमोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहु घात करायो ।
नदियन विच चीर धुवाये, कोशनके जीव मराये ॥
अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई ।
तिनको नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरम्भ हिंसा साजे ।
कीये तिसना वश भारी, करुणा नहिं रंच विचारी ॥
इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्रीभगवन्ता ।
सन्तति चिरकाल उपाई, वानीतें कही न जाई ॥
ताको जु उदय अब आयो, नानाविधि मोहि सतायो ।
फल भुञ्जत जिय दुख पावे, वचतें कैसे करि गावे ॥
तुम जानत केवल-ज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी ।
हम तो तुम शरन लही है, दिन तारन विरद सही है ॥
इक गांवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवे ।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥

दोपद्रिको चीर बढायो, सीता प्रति कमल रचायो ।
अञ्जन से कियो अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥
मेरे अवगुण न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो ।
सब दोषरहित कर स्वामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥
इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे ॥

दोषरहित जिनदेव जी, निजपद दीज्यो मोय ।
सब जीवन के सुख बढ़े, आनंद मङ्गल होय ॥
अनुभव माणिक पारखी, जौंहरि आप जिनन्द ।
'भूधर' को शिव दीजिये, चरन शरन आनन्द ॥

बारह भावना

(पं० भूधरदासजी कृत)

अनित्य–राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार ।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥
अशरण–दल बल देई देवता, मात पिता परिवार ।
मरती बिरियां जीवको, कोई न राखनहार ॥
संसार–दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान ।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥

एकत्व–आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
यों कबहूँ या जीव को, साथी सगा न कोय ॥
अन्यत्व–जहां देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय ।
घर सम्पति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥
अशुचि–दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़-पींजरा देह ।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिनगेह ॥
आस्रव–मोह - नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा ।
कर्म--चोर चहुं ओर, सरबस लूटें सुधि नहीं ॥
संवर–सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमै ।
तब कछु बने उपाय, कर्मचोर आवत रुकें ॥
निर्जरा–ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर ।
या विधि विन निकसें नहीं, पैठे पूरब चोर ॥
पञ्च महाव्रत संचरन, समिति पञ्च परकार ।
प्रबल पञ्च इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार ॥
लोक–चौदह राजु उतङ्ग नभ, लोक पुरुष–संठान ।
तामें जीव अनादि तें, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥
धर्म–जांचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन ।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन ॥
बोधिदु०-धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान ।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान ॥

मेरी-भावना

जिसने रागद्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर, जिन हरि, हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो॥
विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज परके हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या, विना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुखसमूह को हरते हैं॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूंठ कभी नहिं कहा करूँ।
पर धन वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करूँ॥
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्षा-भाव धरूँ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूँ।
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ॥
मैत्रीभाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा-स्रोत बहे॥
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खू मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥

गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे ॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे ।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥
कोई बुरा कहे या अच्छा; लक्ष्मी आवे या जावे ॥
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे ॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे ।
तो भी न्यायमार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥
होकर सुखमें मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे ।
पर्वत--नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावे ॥
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे ।
इष्टवियोग-अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे ॥
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे ।
वैर पाप-अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे ॥
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें ।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म फल सब पावें ॥
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे ।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ॥
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे ।
परम अहिंसा--धर्म जगतमें, फैल सर्वहित किया करे ॥
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे ।

अप्रिय कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे ॥
बनकर सब 'युग-वीर' हृदयसे, देशोन्नति–रत रहा करें ।
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख–संकट सहा करें ॥

आत्म-कीर्तन

(श्री मनोहरलाल जी वर्णी–सहजानन्द)

हूँ स्वतन्त्र-निश्चल-निष्काम, ज्ञाता दृष्टा आतमराम ॥ टेक
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग-वितान ॥
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमितशक्तिसुखज्ञाननिधान ।
किन्तु आश-वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥
सुख-दुख दाता कोई न आन, मोह-राग रुप दुखकी खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखकानहिं लेश निदान ॥
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम ॥

होता स्वयं जगत परिणाम,
मैं जग का करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम,
'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥

जिनेन्द्र–भारती

ओं दिव्यध्वनि विस्तारक, जय अर्द्धमागधी भाषा ।
जन-मानसकी राजहंसिनी, मन–मयूर की आशा ॥
कण्ठ–कोकिला वीणा,
स्वर दे भीना भीना !!
करे शान्त जिज्ञासा ॥

मधुर – भारती सरस्वती, हे देवनागरी – भाषा ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय जय हे ॥
संस्कृत – प्राकृत–तमिल–तैलगू मलयालम् गुजराती ।
बँगला – अवधी–व्रज–बुन्देली, उड़िया सिन्ध मराठी ॥
पंजाबी – आसामी,
राजस्थानी नामी,
प्रादेशिक–अभिलाषा ।

पूर्ण करो हे राष्ट्र–भारती, माता – हिन्दी भाषा ॥
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय जय हे ।
केवल सन्मति – गर्भा वाणी, वस्त्र आर्यिका धवला ॥
निर्ग्रन्था – सद्ग्रन्थ धारिणी, समय–सारिणी सबला ।
दर्शन ज्ञान चरित्रम् ,
मन–वच–काय पवित्रम्,
देव–शास्त्र–गुरु का सा ।

करदे सत्यं-शिवं-सुंदरम् जीवन की परिभाषा।
जय हे जय हे जय हे, जय जय जय जय जय हे॥

हित-मित-प्रिय सद् स्याद् वाङ्मय गुरु प्रशस्त कल्यानी।
कल्पद्रुम पारस चिन्तामणि कामधेनु जिनवाणी॥

जननि! शारदे! वर दे!
पीयूषी निर्झर दे!

होवे तृप्त पिपासा!

हे सर्वाङ्गमुखी कर अपना लौकिक अर्थ खुलासा।
जय हे जय हे जय हे जय जय जय जय जय हे॥

सघन गर्जना सुनकर देवी, मन—मयूर नाचेंगे।
मानस से चुग राजहंस भी, मुक्ताक्षर बाँचेंगे॥

गौतम गणधर गीता!
काव्य-कला सु पुनीता!

भाव लिये गहरा-सा।

लिख दे मां पुष्पेन्दु पाणि से कोई गीत नया सा।
जय हे जय हे जय हे, जय जय जय जय जय हे॥

— —

॥ श्री सिद्धचक्र विधान स्तुति ॥

श्री सिद्धचक्र का पाठ, करो दिन आठ ।
ठाठ से प्रानी, फल पायो मैना रानी ॥टेक॥

मैनासुन्दरि इक नारी थी, कोढ़ी पति लखि दुखियारी थी,
नहिं पड़े चैन दिन रैन व्यथित अकुलानी ॥ फल पायो० ॥
जो पति का कष्ट मिटाऊँगी, तो उभयलोक सुख पाऊंगी,
नहिं अजा-गलस्तन वत् निष्फल जिंदगानी ॥ फल पायो० ॥
इक दिवस गई जिनमन्दिर में, दर्शन कर अति हर्षी उर में,
फिर लखे साधु निर्ग्रन्थ दिगम्बर ज्ञानी ॥ फल पायो० ॥
बैठी मुनि को कर नमस्कार, निज निन्दा करती बार-बार,
भरि अश्रु नयन कहि मुनिसों दुखद कहानी ॥ फल पायो० ॥
बोले मुनि पुत्री धैर्य धरो, श्री सिद्धचक्र का पाठ करो,
नहिं रहे कुष्ट की तन में नाम निशानी ॥ फल पायो० ॥
सुन साधुवचन हर्षी मैना, नहिं होंय झूठ मुनि के बैना,
करके श्रद्धा श्री सिद्धचक्र की ठानी ॥ फल पायो० ॥
जब पर्व अठाई आया है, उत्सव युत पाठ कराया है,
सबके तन छिड़का यन्त्र न्हवन का पानी ॥ फल पायो० ॥
गन्धोदक छिड़कत वसु दिन में, नहिं रहा कुष्ट किंचित् तनमें,
भई सात शतक की काया स्वर्ण समानी ॥ फल पायो० ॥
भव भोग भोगि योगेश भये, श्रीपाल कर्म हन मोक्ष गये,
दूजे भव मैना पावे शिव रजधानी ॥ फल पायो० ॥
जो पाठ करें मन वच तनसे, वे छूटि जांय भवबन्धन से,
'मक्खन' मत करो विकल्प, कहा जिनवानी ॥ फल पायो० ॥

श्री तत्त्वार्थ-सूत्रम्

[आचार्य उमास्वामिविरचितम्]

卐

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

[१]

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-मार्गः ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥ जीवाजीवास्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥ प्रमाण-नयैरधिगमः ॥ ६ ॥ निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थिति-विधानतः ॥७॥ सत्संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मतिश्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा-चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।१४। अवग्रहेहावाय-धारणाः।१५ बहु-बहु-विध-क्षिप्रानिःसृतानुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य ॥ १७ ॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥ श्रुतं मति-पूर्वं द्व्यनेक-द्वादश भेदम् ॥२०॥ भव-प्रत्ययोऽवधिर्देव-नारकाणाम् ॥ २१ ॥ क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ २२ ॥ ऋजु-विपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥ २५ ॥ मति-श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व-पर्यायेषु ॥ २६ ॥

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥ तदनन्त-भागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥ सर्व-द्रव्यपर्यायेपु केवलस्य ॥ २९ ॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥ मति — श्रुतावधयो चिपर्ययश्च ॥३१॥ सदसतोरविशेषाद् यदृच्छोपलब्धे—रुन्म-त्तवत् ॥३२॥ नैगमसंग्रह-व्यवहारर्जु-सूत्र-शब्द-समभिरूढै-वंभूता नयाः ॥ ३३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

[२]

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व-मौदयिक-पारिणामिकौ च ॥ १ ॥ द्वि-नवाष्टादशैकविंशति-त्रि-भेदा यथाक्रमम् ॥ २ ॥ सम्यक्त्व-चारित्रे ॥ ३ ॥ ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च ॥ ४ ॥ ज्ञाना-ज्ञान दर्शन-लब्धयश्चतुस्त्रित्रि-पञ्च-भेदाः सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥ गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शना-ज्ञानासंयतासिद्ध-लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥६॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥ उपयोगो लक्षणम् ॥८॥ स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥ समनस्कामनस्काः ॥११॥ संसारिणस्त्रस-स्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजो-वायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादय-स्त्रसाः ॥१४॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥ कृमिपिपीलिका-भ्रमरमनुष्यादीनामेकैक — वृद्धानि ॥ २३ ॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥ विग्रह-गतौ कर्म-योगः ॥ २५ ॥ अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ ३० ॥ सम्मूर्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥ सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥ जरायुजाण्डज-पोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥ देव-नारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥ शेषाणां सम्मूर्छनम् ॥ ३५ ॥ औदारिकवैक्रियिकाहारक-तैजस — कार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥ अनन्त-गुणे परे ॥ ३९ ॥ अप्रतीघाते ॥ ४० ॥ अनादि-सम्बन्धे च ॥ ४१ ॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ॥ ४५ ॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥ लब्धि-प्रत्ययं च ॥ ४७ ॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥ नारक-सम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न देवाः ॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिक-चरमोत्तमदेहाऽसंख्येय-

वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

[३]

रत्न-शर्करा-वालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमः प्रभाः भूमयो घनाम्बुवाताकाश—प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥ १ ॥ तासु त्रिंशत्पंचविंशति—पंचदश-दश-त्रि-पञ्चोनैक-नरक-शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥ नारका नित्याऽशुभतर—लेश्या—परिणाम-देह—वेदना-विक्रियाः ॥ ३ ॥ परस्परोदीरित—दुःखाः ॥ ४ ॥ संक्लिष्टा—सुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥ तेष्वेक—त्रि-सप्त—दश—सप्तदश—द्वाविंशति—त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥ जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप-समुद्राः ॥ ७ ॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व — परिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥ तन्मध्ये मेरु-नाभिर्वृत्तो योजन-शतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥ भरत-हैमवत—हरि-विदेह — रम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध—नील-रुक्मि—शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥ हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य—रजत—हेममयाः ॥ १२ ॥ मणिविचित्र—पार्श्वा उपरि मूले च तुल्य—विस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्म-महापद्म-तिगिञ्छ—केशरि — महापुण्डरीक—पुण्डरीका ह्रदास्ते-षामुपरि ॥ १४ ॥ प्रथमो योजन — सहस्रायामस्तदर्ध-

विष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥ दश—योजनावगाहः ॥ १६ ॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति — बुद्धि — लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ॥ १९ ॥ गङ्गा — सिन्धुरोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा—नारी—नरकान्ता सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयो-र्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः । २२ ॥ चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गङ्गा-सिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशति-पञ्चयोजनशत-विस्तारः षट् चैकोन-विंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥ तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥ उत्तरादक्षिण—तुल्याः ॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्य-वसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥ एक द्वि-त्रिपल्योपम-स्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-दैवकुरवकाः ॥ २९ ॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येय-कालाः ॥ ३१ ॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत—भागः ॥ ३२ ॥ द्वि-र्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥ पुष्करार्धे च ॥ ३४ प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥ भरतैरावत-विदेहाः कर्मभूम-योऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥ ३७ ॥ नृस्थिती परावरे

त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

[४]

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥ आदितस्त्रिषु पीतान्त-लेश्याः ॥ २ ॥ दशाष्ट-पञ्च-द्वादशविकल्पाः कल्पोपन्न-पर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य – किल्बिषकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंश-लोकपाल वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥ ५ ॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥ काय--प्रवीचारा आ–ऐशानात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्श–रूप–शब्द-मनः प्रवीचाराः ॥ ८ ॥ परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥ भवनवासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सु-पर्णाग्नि-वात-स्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः ॥ १० ॥ व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष–महोरग–गन्धर्व–यक्ष–राक्षस-भूतपिशाचाः ॥ ११ ॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्रप्रकीर्णक–तारकाश्च ॥ १२ ॥ मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृलोके ॥ १३ ॥ तत्कृतः काल-विभागः ॥ १४ ॥ वहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥ सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म –ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार –सहस्रारेष्वानत — प्राण-तयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय –वैजयन्त–जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थिति--प्रभाव-

सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२२॥ प्राग् ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वता-दित्य-वह्न्यरुण—गर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥ विजयादिषु द्वि—चरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिक मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थितिरसुरनाग—सुपर्ण—द्वीप—शेषाणां सागरोपम—त्रिपल्योपमार्धहीनमिताः ॥ २८ ॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥ २९ ॥ सानत्कुमार—माहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रि-सप्त—नवैकादश-त्रयोदश—पञ्चदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरा पल्योपम-मधिकम् ॥३३॥ परतः परतः पूर्वापूर्वाऽ-नन्तरा ॥ ३४ ॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥ दश वर्ष--सहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्ट-भागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

[५]

अजीव - काया धर्माधर्माकाश पुद्गलाः ॥ १ ॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥ नित्यावस्थितान्य--

रूपाणि ॥ ४ ॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥ आ-आकाशा-देक द्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥९॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ १० ॥ नाणोः ॥ ११ ॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥ असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥ प्रदेश संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥ गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥ शरीर-वाङ्-मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥ सुख-दुख-जीवित-मरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तना-परिणाम--क्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥ स्पर्श-रस-गन्ध--वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥ शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य--संस्थान - भेद-तमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥ भेदादणुः ॥२७॥ भेद -- सङ्घाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥ सद् द्रव्य-लक्षणम् ॥ २९ ॥ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य--युक्तं सत् ॥ ३० ॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥ स्निग्ध--रूक्षत्वाद् बन्धः ॥ ३३ ॥ न जघन्य-गुणानाम् ॥ ३४ ॥ गुण--साम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥ द्व्यधिकादि-गुणानां तु ॥ ३६ ॥

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥ गुण-पर्ययवद् द्रव्यम् ॥ ३८ ॥ कालश्च ॥ ३९ ॥ सोऽनन्तसमयः ॥ ४० ॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[६]

काय-वाङ्-मनः कर्म योगः ॥१॥ स आस्रवः ॥२॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥ इन्द्रिय—कषायाव्रत—क्रियाः पञ्च चतुः पञ्च-पञ्चविंशति—संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्र-मन्द-ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ ७ ॥ आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भ-योग-कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्वि-चतुर्द्वि-त्रि-भेदाः परम् ॥ ९ ॥ तत्प्रदोषनिह्नव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयोः ॥ १० ॥ दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥ भूत-व्रत्यनुकम्पादान-सरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥ केवलि-श्रुत-संघधर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्र-मोहस्य ॥ १४ ॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भपरिग्रहत्वं

मानुषस्य ॥१७॥ स्वभाव-मार्दवं च ॥ १८ ॥ निःशील-व्रतत्वञ्च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयम-संयमासंयमाकाम-निर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता—विसम्वादनञ्चाशुभस्य नाम्नः ॥ २२ ॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता-शील--व्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्याग—तपसी--साधु—समाधि—वैयावृत्तकरणमर्हदाचार्य-बहुश्रुत--प्रवचन--भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग--प्रभावना-प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥ २४ ॥ परात्म-निन्दा-प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

[७]

हिंसाऽनृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरति-र्व्रतम् ॥ १ ॥ देशसर्वतोऽणु महती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोकितपान-भोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्या-नान्यनुवीचि—भाषणं च पञ्च ॥५॥ शून्यागार—विमो-चितावास-परोपरोधाकरण — भैक्ष्यशुद्धि-सधर्माविसंवादाः पञ्च ॥६॥ स्त्रीरागकथाश्रवण — तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरस— स्वशरीरसंस्कार— त्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय—विषय--राग-द्वेष-वर्जनानि

पञ्च ॥ ८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥
दुःखमेव वा ॥ १० ॥ मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि
च सत्व गुणाधिक क्लिश्य - मानाविनयेपु ॥ ११ ॥
जगत्काय-स्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥ प्रमत्तयो-
गात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥ असदभिधानमनृतम्
॥१४॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥१६॥ मूर्छा
परिग्रहः ॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥ अगार्यनगारश्च
॥१९॥ अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशा-नर्थदण्डविरतिसामा-
यिक-प्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग-परिमाणातिथि-संविभाग-
व्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२
शङ्काकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवा सम्यग्दृष्टेर-
तीचाराः ॥ २३ ॥ व्रत-शीलेपु पंच पंच यथाक्रमम् ॥२४॥
बन्ध वध-च्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥
मिथ्योपदेश--रहोभ्याख्यान - कूटलेखक्रियान्यासापहार-
साकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥ स्तेनप्रयोग - तदाहृता-
दान विरुद्धराज्यातिक्रम - हीनाधिकमानोन्मान-प्रति-
रूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरि-
गृहीतापरिगृहीता-गमनानङ्गक्रीडा - कामतीव्राभिनिवेशाः
॥ २८ ॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्ण - धन - धान्य - दासी-
दास - कुप्य—प्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्-
व्यतिक्रम—क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥ ३० ॥ आनय-

यन-प्रेष्यप्रयोग-शब्द-रूपानुपात-पुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥ कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ योग-दुःप्रणिधानानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादान-संस्तरोपक्रमणानादर — स्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥ सचित्त-सम्बन्ध-सम्मिश्राभिषव-दुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥ सचित्तनिक्षेपापिधान-परव्यपदेश-मात्सर्य-कालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥ जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध — निदानानि ॥ ३७ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥ विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

[८]

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ॥ १ ॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥ प्रकृति-स्थित्यनुभाग—प्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥ पञ्च—नव द्व्यष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च भेदा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥ मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानाम् ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधि-केवलानां — निद्रा — निद्रानिद्रा - प्रचला — प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥ सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥ दर्शन-चारित्र-मोहनीयाकषाय — कषायवेदनीयाख्यास्त्रि — द्वि नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्व तदुभयान्यकषाय-कषायौ

हास्य-रत्यरति-शोक-भयजुगुप्सा-स्त्री-पुंनपुंसक-वेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः ॥ ९ ॥ नारक-तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥ १० ॥ गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बन्धन-सङ्घात-संस्थान-संहनन स्पर्श-रसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेय-यशःकीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥ दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥ १३ ॥ आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम कोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥ अपरा द्वादश-मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥ २० ॥ विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥ स यथानाम ॥ २२ ॥ ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥ नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात् सूक्ष्मैक-क्षेत्रावगाह-स्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥ २४ ॥ सद्वेद्य-शुभा-युर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ॥ २५ ॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

[९]

आस्रव-निरोधः संवरः ॥१॥ स गुप्ति-समिति-धर्मा-नुप्रेक्षापरीषहजय-चारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥ ईर्या-भाषैषणा-दान-निक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥ उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच--सत्य - संयम- तप- स्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥ अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ—धर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्त-नमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥ मार्गाच्यवन--निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशक-नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या निषद्या -शय्याक्रोशवध—याचनालाभरोग तृणस्पर्श-मल -सत्कारपुरस्कार—प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्म--साम्पराय - च्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारति—स्त्री—निषद्या-क्रोश याचना-सत्कार—पुरस्काराः ॥ १५ ॥ वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥ १७ ॥ सामायिकच्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यातमिति चारित्रम् ॥ १८ ॥ अनशनावमौदर्य—वृत्तिपरिसंख्यान—रसपरित्याग—विविक्तशय्यासन--काय-क्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥ प्रायश्चित्त-विनय--वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग—ध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥ नव-चतुर्दश-पंच-द्वि-भेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥ आलोचना-

प्रतिक्रमण—तदुभय—विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोप-स्थापनाः ॥ २२ ॥ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥ आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष-ग्लान-गण-कुल-सङ्घ-साधु-मनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मो-पदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥ उत्तमसंहन-नस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥ आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ॥ २८ ॥ परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥ आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वा-हारः ॥ ३० ॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥ ३३ ॥ तदविरतदेशविरत-प्रमत्त—संयतानाम् ॥ ३४ ॥ हिंसानृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत—देशविरतयोः ॥ ३५ ॥ आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्क—सूक्ष्म-क्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोग-काययोगायोगानाम् ॥ ४० ॥ एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥ ४२ ॥ वितर्कः श्रुतम् ॥ ४३ ॥ वीचारोऽर्थ—व्यञ्जनयोग-संक्रान्तिः ॥ ४४ ॥ सम्यग्दृष्टि—श्रावक-विरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोप-शमकोपशान्तमोह—क्षपक-क्षीणमोह—जिनाः क्रमशोऽसं-

स्थेयगुण—निर्जराः ॥४५॥ पुलाक-वकुश-कुशीलनिर्ग्रन्थ स्नातका निर्ग्रन्थाः ॥ ४६ ॥ संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ लिङ्ग—लेश्योपपाद--स्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥

[१०]

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥१॥ बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्या-लोकान्तात् ॥५॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथा—गतिपरिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपा-लावुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्रकाल--गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र-प्रत्येकबुद्ध-बोधित-ज्ञानावगाह-नान्तर-संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पञ्चपदं नमामि ॥

अरिहन्त भासियत्थं, गणहर देवेहिं गन्थियं सव्वं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवयं सिरसा ॥

अक्षरमात्र-पदस्वर--हीनं, व्यञ्जन-सन्धि - विवर्जितरेफम ।
साधुभिरत्र मम क्षन्तव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य, भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥

॥ इति मूल मोक्षशास्त्रं समाप्तम् ॥

आरती

(पं० भूधरदासजी कृत)

करों आरती वर्धमान की, पावापुर निरवान थान की ।।टेक।।

राग विना सब जग-जन तारे, द्वेष विना सब करम विदारे ।
करों आरती वर्धमान की, पावापुर निरवान थान की ।।

शील-धुरन्धर शिव-तिय-भोगी, मन-वच-कायन योगी ।
करों आरती वर्धमान की, पावापुर निरवान थान की ।।

रत्नत्रय-निधि परिगह-हारी, ज्ञान-सुधा-भोजन-व्रतधारी ।
करों आरती वर्धमान की, पावापुर निरवान थान की ।।

लोक-अलोक व्याप निजमाहीं, सुखमय इंद्रिय-सुख-दुखनाहीं ।
करों आरती वर्धमान की, पावापुर निरवान थान की ।।

पञ्च-कल्याणक-पूज्य विरागी, विमल दिगम्बर अम्बरत्यागी ।
करों आरती वर्धमान की, पावापुर निरवान थान की ।।

गुन-मनि-भूषन-भूषित स्वामी, जगतउदास जगत्रयस्वामी ।
करों आरती वर्धमान की, पावापुर निरवान थान की ।।

कहें कहाँ लों तुम सब जानी, 'द्यानत' की अभिलाष प्रमानी ।
करों आरती वर्धमान की, पावापुर निरवान थान की ।।

———

श्री भक्तामर स्तोत्र संस्कृत

भक्तामर—प्रणत- मौलि-मणि –प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित—पाप - तमो—वितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिनपाद—युगं युगादा—
वालम्बनं भव – जले पततां जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय--तत्त्व—बोधा,
दुद्भूत-बुद्धि – पटुभिः सुरलोक – नाथैः ।
स्तोत्रै र्जगत्त्रितय – चित्त – हरै — रुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित – पाद – पीठ,
स्तोतुं समुद्यत--मति विंगत – त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल --संस्थितमिन्दु – बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुम् ॥३॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरु – प्रीतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त -- काल – पवनोद्धत – नक्र--चक्रं,
को वा तरीतुमलम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति -- वशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत – शक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्म -- वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

भक्तामर स्तोत्र भाषा

भक्त अमर नत मुकुट सुमणियों, की सु-प्रभा का जो भासक।
पापरूप अतिसघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर सा नाशक॥
भव-जल पतितजनों को जिसने, दिया आदि में अवलम्बन।
उनके चरण कमल का करते, सम्यक बारम्बार नमन॥

सकल वाङ्मय तत्त्वबोध से, उद्भव पटुतर धी-धारी।
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग-जन मनहारी॥
अति आश्चर्य कि स्तुति करता, उसी प्रथम जिनस्वामी की।
जगनामी-सुखधामी तद्भव, शिवगामी अभिरामी की॥

स्तुति को तय्यार हुआ हूं, मैं निर्बुद्धि छोड़के लाज।
विज्ञजनों से अर्चित है प्रभु, मन्दबुद्धि की रखना लाज॥
जल में पड़े चन्द्र-मंडल को, बालक बिना कौन मतिमान।
सहसा उसे पकड़ने वाली, प्रबलेच्छा करता गतिमान॥

हे जिन! चंद्रकान्त से बढ़कर, तव गुण विपुल अमल अतिश्वेत।
कह न सकें नर हे गुण-सागर, सुर-गुरु के सम बुद्धिसमेत॥
मक्र-नक्र-चक्रादि जन्तु युत, प्रलय-पवन से बढ़ा अपार।
कौन भुजाओं से समुद्र के, हो सकता है परले पार॥

वह मैं हूँ कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार।
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वापर्य विचार॥
निज शिशुको रक्षार्थ आत्मबल, बिना विचारे क्या न मृगी।
जाती है मृगपति के आगे, प्रेम-रंग में हुई रंगी॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास — धाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र–चारु–कलिका–निकरैक – हेतुः ॥६॥
त्वत्संस्तवेन भव – सन्तति सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीर – भाजाम् ।
आक्रान्त— लोकमलि – नीलमशेषमाशु,
सूर्यांशु – भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥
मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद–
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी – दलेषु,
मुक्ताफल —द्युतिमुपैति ननूद् – विन्दुः ॥८॥
आस्तां तव स्तवनमस्त – समस्त–दोषं,
त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्र – किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥
नात्यद्भुतं भुवन — भूषण ! भूतनाथ !,
भूतै गुणै भुवि भवन्तमभीष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानों से, हास्य कराने का ही धाम।
करती है वाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठों याम॥
करती मधुरगान पिक मधु में, जगजनमनहर अति अभिराम।
उसमें हेतु सरस फल-फूलों, के युत हरे-भरे तरु आम॥

जिनवर की स्तुति करने से, चिरसंचित भविजन के पाप।
पल भर में भग जाते निश्चित, इधर उधर अपने ही आप॥
सकल लोक में व्याप्त रात्रिका, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त।
प्रातः रवि की उग्र किरण लख, हो जाता क्षण में प्राणान्त॥

मैं मतिहीन दीन प्रभु तेरी, शुरू करूँ स्तुति अघहान।
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान॥
जैसे कमल-पत्र पर जल-कण, मोती कैसे आभावान।
दिपते हैं फिर छिपते हैं, असली मोती में भगवान्॥

दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष।
पुण्य कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष॥
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर।
फेंका करता सूर्य किरण को, आप रहा करता है दूर॥

त्रिभुवनतिलक जगतपति हे प्रभु! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य।
सद्भक्तों को निजसम करते, इसमें नहीं अधिक आश्चर्य॥
स्वाश्रित जनको निजसम करते, धनी लोग धन करनी से।
नहीं करें तो उन्हें लाभ क्या? उन धनिकों की करनी से॥

दृष्ट्वा भवन्त – मनिमेष – विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे-रसितुं-क इच्छेत् ॥११॥
यैः शान्तराग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रि-भुवनैक-ललाम-भूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२।
वक्त्रं क्व ते सुरनरोरग – नेत्रहारि,
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ॥१३॥
सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रि – जगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हें देखकर परम-पवित्र ।
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र ॥
चन्द्र-किरणसम उज्वल निर्मल, क्षीरोदधिका कर जलपान ।
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ? ॥
जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरा देह ।
थे उतने वैसे अणु जग में, शान्त-राग-मय निःसन्देह ॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण-रूप ।
इसीलिए तो आप सारखा, नहीं दूसरों का है रूप ॥
कहां आपका मुख अति सुन्दर, सुर-नर-उरग नेत्र-हारी ।
जिसने जीत लिए सब जगके, जितने थे उपमाधारी ॥
कहाँ कलंकी बंक चन्द्रमा, रंक समान कीट-सा दीन ।
जो पलास सा फीका पड़ता, दिन में होकर के छवि-छीन ॥
तव गुण पूर्ण शशाङ्क कान्तिमय, कला-कलापों से बढ़के ।
तीन लोक में व्याप रहे हैं, जो कि स्वच्छता में चढ़के ॥
विचरें चाहे जहां कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार ।
कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकार ॥
मद की छकीं अमर ललनाएँ, प्रभु के मन में तनिक विकार ।
कर न सकीं आश्चर्य कौन सा रह जाती हैं मन को मार ॥
गिरि-गिरिजाते प्रलय-पवनसे,तो फिर क्या वह मेरु-शिखर ।
हिल सकता है रंचमात्र भी, पाकर झंझावात प्रखर ॥

दृष्ट्वा भवन्त – मनिमेष – विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे–रसितुं–क इच्छेत् ॥११॥
यैः शान्तराग–रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रि–भुवनैक–ललाम–भूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥
वक्त्रं क्व ते सुरनरोरग – नेत्रहारि,
निःशेष–निर्जित–जगत्त्रितयोपमानम् ।
विम्बं कलङ्क–मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु–पलाश–कल्पम् ॥१३॥
सम्पूर्ण–मण्डल–शशाङ्क–कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रि – जगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि–
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्त–काल–मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रि–शिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हें देखकर परम-पवित्र ।
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र ॥
चन्द्र-किरणसम उज्वल निर्मल, क्षीरोदधिका कर जलपान ।
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ? ॥
जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरा देह ।
थे उतने वैसे अणु युग में, शान्त-राग-मय निःसन्देह ॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण-रूप ।
इसीलिए तो आप सारखा, नहीं दूसरों का है रूप ॥
कहां आपका मुख अति सुन्दर, सुर-नर-उरग नेत्र-हारी ।
जिसने जीत लिए सब जगके, जितने थे उपमाधारी ॥
कहाँ कलंकी बंक चन्द्रमा, रंक समान कीट-सा दीन ।
जो पलास सा फीका पड़ता, दिन में होकर के छवि-छीन ॥
तव गुण पूर्ण शशाङ्क कान्तिमय, कला-कलापों से बढ़के ।
तीन लोक में व्याप रहे हैं, जो कि स्वच्छता में चढ़के ॥
विचरें चाहे जहां कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार ।
कौन माई का जाया रखता, उन्हे रोकने का अधिकार ॥
मद की छकीं अमर ललनाएँ, प्रभु के मन में तनिक विचार ।
कर न सकीं आश्चर्य कौन सा, रह जाती हैं मन को मार ॥
गिरि-गिरिजाते प्रलय-पवनसे,तो फिर क्या वह मेरु-शिखर ।
हिल सकता है रंचमात्र भी, पाकर झंझावात प्रखर ॥

निर्धूम वर्ति – रपवर्जित—तैल — पूरः;
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रगटी – करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर — निरुद्ध — महाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥
नित्योदयं दलित – मोह – महान्धकारं,
गम्यं न राहु--वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्ज - मनल्प-कान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व – शशाङ्क-बिम्बम् ॥१८॥
किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु – दलितेषु तमःसु नाथ !
निष्पन्न-शालि – वनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरै जल – भार-नम्रैः ॥१९॥
ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच -- शकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

धूप न बत्ती तेल बिना ही, प्रगट दिखाते तीनों लोक।
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत-झोक॥
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन-रात।
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्व-पर-प्रकाशक जग-विख्यात॥
अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल।
एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल॥
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकर के ओट।
ऐसी गौरव गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर-कोट॥
मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला।
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला॥
विश्व-प्रकाशक मुख-सरोज तव,अधिककांतिमय शांतिस्वरूप।
है अपूर्व जग का शशि-मण्डल,जगत शिरोमणि शिवका भूप॥
नाथ आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश।
तब दिन में रवि और रात्रि में,चन्द्र-बिम्बका विफल प्रयास॥
धान्य-खेत जब धरती-तल के, पके हुये हों अति अभिराम।
शोर मचाते जल को लादे, हुए घनों से तब क्या काम॥
जैसा शोभित होता प्रभु का, स्वपर-प्रकाशक उत्तम ज्ञान।
हरि हरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान॥
अति ज्योतिर्मय महारतनका, जो महत्त्व देखा जाता।
क्या वह किरणाकुलित कांचमें, अरे! कभी लेखा जाता॥

मन्ये वरं हरि--हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेती।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयती स्फुरदंशु--जालम् ॥२२॥
त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस--,
मादित्य--वर्णममलं तमसः परस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥२३॥
त्वामव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनङ्ग-केतुम्।
योगीश्वरं विदित--योग--मनेकमेकं,
ज्ञान--स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रय-शङ्करत्वात्।
धातासि धीर शिव-मार्ग-विधे विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

हरिहरादि देवों का ही मैं, मानूं उत्तम अवलोकन ।
क्योंकि उन्हें देखने भर से, तुझ से तोषित होता मन ॥
है परन्तु क्या तुम्हें देखने, से हे स्वामिन्! मुझको लाभ ।
जन्म जन्म में भी न लुभा, पाते कोई यह मम अमिताभ ॥
सौ सौ नारी सौ सौ सुतको, जनतीं रहतीं सौ सौ ठौर ।
तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और?॥
तारागण को सर्व दिशाएँ, धरें नहीं कोई खाली ।
पूर्वदिशा ही पूर्ण-प्रतापी, दिनपति को जनने वाली ॥
तुमको परम-पुरुष मुनि मानें, विमल-वर्ण-रवि तमहारी ।
तुम्हें प्राप्त कर मृत्यञ्जय के, बन जाते जन अधिकारी ॥
तुम्हें छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर-पथ बतलाता है ।
किन्तु विपर्ययपथ बतलाकर, भव-भव में भटकाता है ॥
तुम्हें आद्य अक्षय अनंत प्रभु, एकानेक तथा योगीश ।
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर, विदितयोग मुनिनाथ मुनीश ॥
विमलज्ञानमय या मकरध्वज, जगन्नाथ जगपति जगदीश ।
इत्यादिक नामों कर मानें, सन्त निरन्तर विभो निधीश ॥
ज्ञान पूज्य है अमर आपका, इसीलिए कहलाते बुद्ध ।
भुवनत्रय के सुख-सम्वर्धक, अतः तुम्हीं शङ्कर हो शुद्ध ॥
मोक्ष-मार्ग के आद्य प्रवर्त्तक, अतः विधाता कहें गणेश ।
तुमसम अवनीपुर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश ॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति—हराय नाथ ! ;
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय ,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै ,
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्त—विविधाश्रय—जात गर्वैः ,
स्वप्नान्तनेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

उच्चैरशोक—तरु—संश्रित—मुन्मयूख—
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ,
स्पष्टोल्लसत्किरण—मस्त तमो-वितानम् ।
बिम्बं रवेरिव पयोधर—पार्श्ववर्ति ॥२८॥

सिंहासने मणी-मयूख-शिखा-विचित्रे ,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता—वितानं ,
तुङ्गोदयाद्री—शिरसीव सहस्र—रश्मेः ॥२९॥

कुन्दावदात—चल—चामर—चारुशोभं ,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत—कान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्क—शुचि—निर्झर—वारि धार—
मुच्चैः स्थितं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

तीन लोक के दुःखहरण करने वाले, हे तुम्हें नमन।
भू-मण्डल के निर्मल-भूषण, आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन॥
हे त्रिभुवनके अखिलेश्वर हो, तुमको बारम्बार नमन।
भव-सागर के शोषक पोषक, भव्य जनों के तुम्हें नमन॥
गुणसमूह एकत्रित होकर, तुझमें यदि पा चुके प्रवेश।
क्या आश्चर्य न मिलपाये हों, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश॥
देव कहे जाने वालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष।
तेरी ओर न झांक सके वे, स्वप्नमात्र में हे गुण-कोष॥
उन्नततरु अशोकके आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला।
रूप आपका दिपता सुन्दर, तमहर मनहर छवि वाला॥
वितरण किरणानिकर तमहारक, दिनकर घनके अधिक समीप।
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीराजन करता ले दीप॥
मणि-मुक्ताकिरणों से चित्रित, अद्भुत शोभित सिंहासन।
कांतीमान कंचन सा दीपता, जिस पर तव कमनीय वदन॥
उदयाचलके तुंग शिखर से, मानो सहस्ररश्मि वाला।
किरण जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला॥
ढुरते सुन्दर चँवर विमल अति, नवल कुन्द के पुष्प समान।
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल सी आभावान॥
कनकाचल के तुङ्ग शृङ्गसे, झर झर झरता है निर्झर।
चन्द्रप्रभा सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर॥
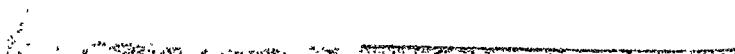
चन्द्रप्रभासम झल्लरियों से, मणि-मुक्तामय अति कमनीय।
दीप्तिमान शोभित होते हैं, सिर पर छत्रत्रय भवदीय॥
ऊपर रहकर सूर्य-रश्मिका, रोक रहे हैं प्रखर-प्रताप।
मानों वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप॥
ऊँचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओं में गुंजन।
करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ सम्मेलन॥
पीट रही है डंका-"हो सत्धर्म"-राज की ही जय जय।
इस प्रकार बज रही गगनमें, भेरी तव यश की अक्षय॥
कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मंदार।
गंधोदक की मन्दवृष्टि करते, हैं प्रमुदित देव उदार॥
तथा साथ ही नभसे बहती, धीमी धीमी मन्द पवन।
पंक्ति बांधकर बिखर रहे हों, मानों तेरे दिव्य-वचन॥
तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमन्त बनाकर आवे।
तन-भा-मंडल की छवि लखकर, तव सन्मुख शरमा जावे॥
कोटिसूर्य के ही प्रताप सम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप।
जिसके द्वारा चन्द्र सु-शीतल, होता निष्प्रभ अपने आप॥
अपवर्ग-स्वर्गके मार्गप्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन।
करा रहे हैं "सत्य-धर्म" के, अमर-तत्व का दिग्दर्शन॥
सुनकर जगके जीव वस्तुतः, कर लेते अपना उद्धार।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज निज भाषा के अनुसार॥

उन्निद्र—हेम–नव – पङ्कजपुञ्जकान्ति—
पर्युल्लसन्नख—मयूख—शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ।।३६।।
इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन—विधौ न तथा परस्य ।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ।।३७।।
श्च्योतन्मदाविलविलोल—कपोल–मूल–
मत्त–भ्रमद् भ्रमर–नाद–विवृद्ध–शोभम् ।
ऐरावताभ – मिभ–मुद्धत – मापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।।३८।।
भिन्नेभ–कुम्भ-गलदुज्ज्वल–शोणिताक्त–
मुक्ताफल–प्रकर – भूषित—भूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचल—संश्रितं ते ।।३९।।
कल्पान्त–काल–पवनोद्धत-वह्नि–कल्पं,
दावानलं ज्वलित–मुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख—मापतन्तम्,
त्वन्नाम–कीर्तन – जलं शमयत्यशेषम् ।।४०।।

जगमगात नख जिसमें शोभें, जैसे नभ में चन्द्र-किरन ।
विकसित नूतन सरसीरुह-सम, हे प्रभु ! तेरे विमल चरन ॥
रखते जहां वहीं रचते हैं, स्वर्ण-कमल सुर दिव्य-ललाम ।
अभिनन्दनीय हैं योग्यचरण तव, भक्ति रहे उनमें अविराम ॥
धर्म-देशना के विधान में, था जिनवर का जो ऐश्वर्य ।
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौन्दर्य ॥
जो छवि घोर तिमिरके नाशक, रवि में है देखी जाती ।
वैसीही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रों में लेखी जाती ॥
लोल-कपोलों से झरती है, जहां निरन्तर मद की धार ।
होकर अति मदमत्त कि जिस पर करते हैं भौंरे गुंजार ॥
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल ।
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ॥
क्षतविक्षत करदिये गजों के, जिसने उन्नत गण्डस्थल ।
कांतिमान गज-मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल ॥
जिन भक्तोंको तेरे चरणों, के गिरि की हो उन्नत ओट ।
ऐसा सिंह छलागें भरकर, क्या उस पर कर सकता चोट ॥
प्रलय-कालकी पवन उठाकर, जिसे बढ़ा देती सब ओर ।
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अंगारों का भी हो जोर ॥
भुवनत्रयको निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार ।
प्रभुके नाम-मंत्र-जलसे वह, बुझ जाती है उस ही बार ॥

रक्तेक्षणं समद—कोकिल—कण्ठ—नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रम—युगेन निरस्त—शङ्क—
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुँसः ॥४१॥
वल्गत्तुरङ्ग—गज — गर्जित—भीमनाद—
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
प्रोद्यद्दिवाकर — मयूख — शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥
कुन्ताग्र-भिन्न-गज - शोणित-वारिवाह—
वेगावतार—तरणातुर — योध — भीमे ।
युद्धे जयं विजित—दुर्जय—जेय—पक्षा—
स्त्वत्पाद—पङ्कज—वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥
अम्भोनिधौ क्षुभित—भीषण-नक्र—चक्र—
पाठीन —पीठ—भयदोल्वण —वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्ग—शिखर —स्थित —यानपात्रा—
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥
उद्भूत-भीषण - जलोदर - भार-भुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत—जीविताशाः ।
त्वत्पाद—पङ्कज - रजोऽमृत - दिग्ध-देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज - तुल्य - रूपाः ॥४५॥

कंठकोकिलासा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल ।
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटै नाग महा विकराल ॥
नाम-रूप तव अहि-दमनी का, लिया जिन्होंने हो आश्रय ।
पग रखकर निशङ्क नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय ॥
जहां अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर ।
शूरवीर नृप की सेनाएँ, रव करती हों चारों ओर ॥
वहां अकेला शक्तिहीन नर, जपकर सुन्दर तेरा नाम ।
सूर्य-तिमिरसम शूरसैन्यका, कर देता है काम तमाम ॥
रण में भालों से वेधित गज, तन से वहता रक्त अपार ।
वीर लड़ाकू जहँ आतुर हैं, रुधिर नदी करने को पार ॥
भक्त तुम्हारा हो निराश तहँ, लख अरि-सेना दुर्जयरूप ।
तव पादारविन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार स्वरूप ॥
वह सागर की जिसमें होवें, मच्छ-मगर एवं घड़ियाल ।
तूफां लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल ॥
भ्रमर-चक्रमें फंसी हुई हो, वीचों बीच अगर जल-यान ।
छुटकारा पा जाते दुख से, करने वाले तेरा ध्यान ॥
असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीड़ा-भार ।
जीने की आशा त्यागी हो, देख दशा दयनीय अपार ॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद—रज संजीवन ।
स्वास्थ्य-लाभ कर बनता उसका, कामदेव सा सुन्दर तन ॥

आपाद—कण्ठमुरु-शृङ्खल – वेष्टिताङ्गा ,
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट—जङ्घाः ।
त्वन्नाम—मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः ,
सद्यः स्वयं विगत—बन्धभया भवन्ति ॥४६॥

मत्त—द्विपेन्द्र—मृगराज—दवानलाहि–
संग्राम—वारिधि—महोदर – बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव ,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

स्तोत्र-स्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां ,
भक्त्या मया विविध-वर्ण–विचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं ,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

इति संस्कृतभक्तामरस्तोत्रं समाप्तम् ।

लोह शृङ्खला से जकड़ी है, नख से शिख तक देह समस्त।
घुटने-जंघे छिले बेड़ियों, से अधीर जो हैं अति त्रस्त॥
भगवन्! ऐसे वन्दीजन भी, तेरे नाम-मंत्र की जाप।
जपकर गत-वन्धन होजाते, क्षणभर में अपने ही आप॥

वृषभेश्वर के गुण-स्तवन का, करते निशदिन जो चिंतन।
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन॥
कुंजरसमर-सिंह शोक-रुज, अहि दावानल कारागार।
इनके अति भीषण दुःखों का, हो जाता क्षण में संहार॥

हे प्रभु! तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य-ललाम।
गूंथी विविधा-वर्ण सुमनों की गुण-माला सुन्दर अभिराम॥
श्रद्धासहित भविकजन जो भी, कण्ठाभरण बनाते हैं।
"मानतुङ्ग" सम निश्चित सुन्दर, शिव-रमणी को पाते हैं॥

कल्याणमन्दिर स्तोत्र संस्कृत

(श्री सिद्धसेन दिवाकर)

कल्याण – मन्दिर – मुदार – मवद्य – भेदि
भीताभय – प्रदम – निन्दित – मङ्घ्रि-पद्मम् ।
संसार-सागर-निमज्जद-शेष – जन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥

यस्य स्वयं सुरगुरु – र्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृत-मतिर्न विभुर्विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय – धूमकेतो-
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशः कथमधीश भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥

मोह – क्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मा-
न्मीयेत केन जलधे – र्ननु रत्नराशिः ॥

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य – गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निज बाहु-युगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥

श्रेय सिन्धु-कल्याण कर, कृत निज-पर-कल्याण ।
पार्श्व पंच कल्याणमय, करहु विश्व-कल्याण ॥

अनुपम करुणाकी सुमूर्ति शुभ, शिव-मंदिर अघनाशक मूल ।
भयाकुलित व्याकुल मानव के, अभयप्रदाता अति-अनुकूल ॥
बिनकारन भवि जीवन तारन, भव-समुद्रमें यान-समान ।
ऐसे पाद-पद्म प्रभु पारस, के अर्चूं मैं नित अम्लान ॥

जिसकी अनुपम गुण-गरिमाका, अम्बुराशिसा है विस्तार ।
यश-सौरभ सु-ज्ञान आदिका, सुरगुरु भी नहिं पाता पार ॥
हठी कमठ-शठ के मद-मर्दन, को जो धूमकेतु सा शूर ।
अति आश्चर्य कि स्तुति करता, उसी तीर्थपति की भरपूर ॥

अगम-अथाह-सुखद-शुभ-सुन्दर, सत्स्वरूप तेरा अखिलेश ।
क्यों करि कह सकता है मुझसा, मन्दबुद्धि-मूरख करुणेश ॥
सूर्योदय होने पर जिसको, दिखता निजका गात नहीं ।
दिवाकीर्ति क्या कथन करेगा, मार्तण्ड का नाथ ! कहीं ॥

यद्यपि अनुभव करता है नर, मोहनीय विधि के क्षय से ।
तौ भी गिन न सकै गुण तव सब, मोहेतर कर्मोदय से ॥
प्रलयकाल में जब जलनिधिका, वह जाता है सब पानी ।
रत्न-राशि दिखने पर भी क्या, गिन सकता कोई ज्ञानी ? ॥

तुम अति सुंदर शुद्ध अपरिमित, गुणरत्नों की खानि स्वरूप ।
वचननि करि कहने को उमगा, अल्पबुद्धि मैं तेरा रूप ॥
यथा मन्दमति लघु शिशु अपने, दोऊ कर को कहै पसार ।
जल-निधिको देखहु रे मानव ! है इसका इतना आकार ॥

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश
वक्तुं कथं भवति तेषु समावकाशः ।
जाता स देवमसमीक्षित – कारितेयं
जल्पन्ति वा निज - गिराननुपेक्षिणोऽपि ॥

आस्तामचिन्त्य—महिमा जिन -संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहत — पान्थ-जनान्निदावे
प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभवन्ति
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्य-भाग
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र
रौद्रैरुपद्रव — शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गो-स्वामिनि स्फुरति तेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥

त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून—
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥

हे प्रभु तेरे अनुपम सद्गुण, मुनिजन कहने में असमर्थ।
मुझसा मूरख औ अबोध क्या, कहने को हो सकें समर्थ॥
पुनरपि भक्ति-भाव से प्रेरित, प्रभु-स्तुति को बिना विचार।
करता हूँ, पंछी ज्यों बोलत, निश्चित बोली के अनुसार॥
है अचिन्त्य महिमा स्तुति की, वह तो रहे आपकी दूर।
जबकि बचाता भव-दुःखों से, मात्र आपका 'नाम' जरूर॥
ग्रीष्म ऋतु के तीव्र-ताप से, पीड़ित पंथी हुये अधीर।
पद्म-सरोवर दूर रहे पर, तोषित करता सरस-समीर॥
मन-मन्दिर में वास करहिं जब, अश्वसेन वामा-नन्दन।
ढीले पड़ जाते कर्मों के, क्षण भर में दृढ़तर बंधन॥
चन्दन के विटपों पर लिपटे, हों काले विकराल भुजंग।
वन-मयूर के आते ही ज्यों, होतें उनके शिथलित अंग॥
बहु विपदाएँ प्रबल वेग से, करें सामना यदि भरपूर।
प्रभु-दर्शन से निमिषमात्र में, हो जाती वे चकनाचूर॥
जैसे गो-पालक दिखते ही, पशु-कुल को तज देते चोर।
भयाकुलित हो करके भागें, सहसा समझ हुआ अब भोर॥
भक्त आपके भव - पयोधि से, तिर जाते तुमको उर धार।
फिर कैसे कहलाते जिनवर, तुम भक्तों की दृढ़ पतवार ?॥
वह ऐसे, जैसे तिरती है, चर्म - मसक जलके ऊपर।
भीतर उसमें भरी वायु का, ही केवल यह विभो! असर॥

यस्मिन्हर-प्रभृतयोऽपि हत – प्रभावाः
सोऽपि त्वया रति-पतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ॥

स्वामिन्ननल्प - गरिमाणमपि प्रपन्नाः
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥

क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः ।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥

त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूप--
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज--कोष--देशे ।
पूतस्य निर्मल-रुचे--र्यदि वा किमन्य--
दक्षस्य सम्भव-पदं ननु कर्णिकायाः ॥

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपल – भावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातु भेदाः ॥

जिसने हरिहरादि देवों का, खोया यश--गौरव--सम्मान ।
उस मन्मथका हे प्रभु ! तुमने, क्षणमें मेट दिया अभिमान ॥
सच है, जिस जलसे पलभरमें, दावानल हो जाता शान्त ।
क्या न जला देता उस जलको, वडवानल होकर अश्रान्त ॥

छोटीसी मनकी कुटिया में, हे प्रभु ! तेरा ज्ञान अपार ।
धार उसे कैसे जा सकते, भविजन भव-सागर के पार ॥
पर लघुता से वे तिर जाते, दीर्घ-भार से डूबत नाहिं ।
प्रभुकी महिमा ही अचिन्त्य है,जिसे न कवि कहसकैं वनाहिं ॥

क्रोध-शत्रुको पूर्व शमनकर, शान्त वनायो मन-आगार ।
कर्म-चोर जीते फिर किसविध, हे प्रभु अचरज अपरम्पार ॥
लेकिन मानव अपनी आंखों, देखहु यह पटतर संसार ।
क्या न जला देता वन--उपवन,हिमसा शीतल विकट तुपार ॥

शुद्धस्वरूप अमल अविनाशी, परमातमसम ध्यावहिं तोय ।
निज मन-कमल-कोपमधि ढूंढहिं,सदा साधु तजि मिथ्यामोह ॥
अति पवित्र निर्मल सुकांतियुत,कमलकर्णिका विन नहिं और ।
निपजत कमलबीज उसमें ही;सब जगजा नहिं और न ठौर ॥

जिस कुधातु से सोना वनता, तीव्रअग्नि का पाकर ताव ।
शुद्ध स्वर्ण हो जाता जैसे, छोड़ उपलतापूर्ण विभाव ॥
वैसे ही प्रभु के सु-ध्यान से, वह परिणति आजाती है ।
जिसके द्वारा देह-त्याग, परमात्मदशा पा जाती है ॥

अन्तः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीम् ।
एतत्स्वरूपमथ मध्य - विवर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेद-बुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र भवतोह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृत - मित्यनुचिन्त्यमानं
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥

त्वामेव वीत - तमसं परिवादिनोऽपि
नूनं विभो हरि-हरादि-धिया प्रपन्नाः ।
किं काच-कामलिभिरीश सितोऽपि शङ्खो
नो गृह्यते विविध-वर्ण विपर्ययेणेय ॥

धर्मोपदेश—समये सविधानुभावाद्
आस्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥

चित्रं विभो कथमवाङ्मुख - वृन्तमेव
विष्वक्पतत्यविरला सुर-पुष्प-वृष्टिः ।
त्वद्गोचरे सुमनसा यदि वा मुनीश
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥

जिस तनसे भवि चिंतन करते, उस तनको करते क्यों नष्ट ।
अथवा ऐसा ही स्वरूप है, है दृष्टान्त एक उत्कृष्ट ॥
जैसे बीचवान बन सज्जन, बिना किये ही कुछ आग्रह ।
झगड़े की जड़ प्रथम हटाकर, शांत किया करते विग्रह ॥

हे जिनेन्द्र तुममें अभेद रख, योगीजन निज को ध्याते ।
तव-प्रभावसे तज विभाव, वे तेरे ही सम हो जाते ॥
केवल जलको दृढ़श्रद्धा से, मानत है जो सुधा – समान ।
क्या न हटाता विष-विकार वह, निश्चय से करने पर पान ॥

हे मिथ्यातम अज्ञान रहित, सुज्ञानमूर्ति ! हे परम यती ।
हरिहरादि ही मान अर्चना, करते तेरी मन्दमती ॥
है यह निश्चय प्यारे मित्रो, जिनके होत पीलिया रोग ।
श्वेत शंखको विविध-वर्ण, विपरीत रूप देखें वे लोग ॥

धर्म-देशना के सुकाल में, जो समीपता पा जाता ।
मानव की क्या बात कहूँ, तरु तक अशोक है हो जाता ॥
जीववृन्द नहिं केवल जागत, रवि के प्रकटित ही होते ।
तरु तक सजग होत अति हर्षित, निद्रा तज आलस खोते ॥

है विचित्रता सुर बरसाते, सभी ओर से सघन सुमन ।
नीचे डंठल ऊपर पंखुरी, क्यों होते हैं हे भगवन् ॥
है निश्चित सुजनों सुमनों के, नीचे को होते बंधन ।
तेरी समीपता की महिमा है, हे वामादेवी – नंदन ॥

स्थाने गभीर हृदयोदधि - सम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परम-सम्मद-सङ्ग - भाजो
भव्या व्रजन्ति सहसाप्यजरामरत्वम् ॥

स्वामिन्सुदूर – मवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुर-चामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि – पुङ्गवाय
ते नूनमूर्ध्व-गतयः खलु शुद्धभावाः ॥

श्यामं गभीर-गिरमुज्ज्वल-हेम-रत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैः
चामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥

उद्गच्छता तव शिति-द्युति-मण्डलेन
लुप्त - च्छद-च्छविरशोक-तरु–र्बभूव ।
सांन्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥

भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन–
मागत्य निर्वृ ति-पुरीं प्रतिसार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥

अति गम्भीर हृदय-सागर से, उपजत प्रभुके दिव्य वचन।
अम्मृततुल्य मानकर मानव, करते उनका अभिनन्दन॥
पी-पीकर जग-जीव वस्तुतः, पा लेते आनन्द अपार।
अजर-अमर हो फिर वे जगकी, हर लेते पीड़ा का भार॥
ढुरते चारु चँवर अमरों से, नीचे से ऊपर जाते।
भव्य जनों को विविधरूप से, विनय सफल वे दर्शाते॥
शुद्धभाव से नत-शिर हो जो, तव पदाब्ज में झुक जाते।
परमशुद्ध हो ऊर्ध्वगती को, निश्चय करि भविजन पाते॥
उज्ज्वल हेम सुरत्न पीठ पर, श्याम सुनत शोभित अनुरूप।
अतिगम्भीर सुनिःसृत वाणी, बतलाती है सत्य स्वरूप॥
ज्यों सुमेरु पर ऊँचे स्वर से, गरज गरज घन बरसैं घोर।
उसे देखने सुनने को जन, उत्सुक होते जैसे मोर॥
तुम तन-भा-मण्डलसे होते, सुरतरु के पल्लव छविछीन।
प्रभुप्रभाव को प्रकट दिखाते, हो जड़रूप चेतनाहीन॥
जब जिनवर की समीपतातैं, सुरतरु हो जाता गतराग।
तब न मनुज क्यों होवेगा जप, वीतराग खो करके राग॥
नभ-मण्डलमें गूँज गूँजकर, सुर दुन्दुभि कर रही निनाद।
रे रे प्राणी आतमहित नित, भजले प्रभुको तज परमाद॥
मुक्तिधाम पहुँचाने में जो, सार्थवाह बन तेरा साथ।
देंगे त्रिभुवनपति परमेश्वर, विघ्न – विनाशक पारसनाथ॥

उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ,
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ता-कलाप-कलितोरु सितातपत्र-
व्याजात्त्रिधा धृत-तनुर्ध्रुवमभ्युपेतः॥

स्वेन प्रपूरित-जगत्त्रय - पिण्डितेन,
कान्ति-प्रताप-यशसामिव संचयेन।
माणिक्य-हेम-रजत-प्रीतिनिर्मितेन,
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि॥

दिव्य-स्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपाना-
मुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र,
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव॥

त्वं नाथ जन्म-जलधेर्विपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयत्यसुमतो निजपृष्ठ-लग्नान्।
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो यदसि कर्म-विपाक-शून्यः॥

विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक दुर्गतस्त्वं,
किं वाक्षर - प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश।
अज्ञानवत्यपि सदैव कथञ्चिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकास-हेतुः॥

अखिल-विश्व में हे प्रभु ! तुमने, फैलाया है विमल-प्रकाश ।
अतः छोड़कर स्वाधिकार को, ज्योतिर्गण आया तव पास ॥
मणि-मुक्ताओं की झालरयुत, आतपत्र का मिष लेकर ।
त्रिविध-रूपधर प्रभुको सेवें, निशिपति तारान्वित होकर ॥
हेम-रजत-मानक से निर्मित, कोट तीन अति शोभित से ।
तीन लोक एकत्रित होके, किये प्रभू को वेष्टित से ॥
अथवा कान्ति-प्रताप-सुयश के, संचित हुए सुकृत के ढेर ।
मानों चारों दिशि से आके, लिया इन्होंने प्रभु को घेर ॥
झुके हुये इन्द्रों के मुकुटों, को तज कर सुमनों के हार ।
रह जाते जिन चरणों में ही, मानो समझ श्रेष्ठ आधार ॥
प्रभु का छोड़ समागम सुन्दर, सु-मनस कहीं न जाते हैं ।
तव प्रभाव से वे त्रिभुवनपति, भव-समुद्र तिर जाते हैं ॥
भव-सागर से तुम परान्मुख, भक्तों को तारो कैसे ? ।
यदि तारो तो कर्म-पाक के, रस से शून्य अहो कैसे ? ॥
अधोमुखी परिपक्व कलश ज्यों, स्वयं पीठ पर रख करके ।
ले जाता है पार सिन्धु के, तिरकर और तिरा करके ॥
जगनायक-जगपालक होकर, तुम कहलाते दुर्गत क्यों ? ।
यद्यपि अक्षरमय स्वभाव है,तो फिर अलिखित अक्षत क्यों ?॥
ज्ञान झलकता सदा आप में, फिर क्यों कहलाते अनजान ? ।
स्व-परप्रकाशक अज्ञजनों को,हे प्रभु ! तुम ही सूर्य-समान ।

प्राग्भार-सम्भृत-नभांसि रजांसि रोषाद्,
उत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥

यद्गर्जदूर्जित – घनौघमदभ्र – भीम–
भ्रश्यत्तडिन्मुसल-मांसल – घोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर – वारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन दुस्तर-वारि कृत्यम् ॥

ध्वस्तोर्ध्व-केश-विकृताकृति-मर्त्य-मुण्ड-
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्र – विनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः,
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भव-दुःखहेतुः ॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसन्ध्य–
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्य-कृत्याः ।
भक्त्योल्लसत्पुलक-पक्ष्मल-देह-देशाः,
पाद-द्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥

अस्मिन्नपार-भव-वारि-निधौ मुनीश !,
मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्र–पवित्र-मन्त्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥

पूरव वैर विचार क्रोध करि, कमठ धूलि बहु बरसाई।
कर न सका प्रभु तव तन मैला, हुआ मलिन खुद दुखदाई॥
कर करके उपसर्ग घनेरे, थक कर फिर वह हार गया।
कर्मबन्ध कर दुष्ट प्रपंची. मुँहकी खाकर भाग गया॥
उमड़ घुमड़ कर गर्जत बहुविध, तड़कत बिजली भयकारी।
बरसा अति घनघोर दैत्य ने, प्रभु के सिर पर कर डारी॥
प्रभु का कुछ न बिगाड़ सकी वह, मूसल सी मोटी धारा।
स्वयं कमठ ने हठधर्मी वश, निग्रह अपना कर डारा॥
कालरूप विकराल वृक्ष बिच, मृत मुंडन की धरि माला।
अधिक भयावह जिनके मुख से, निकल रही अग्नी ज्वाला॥
अगणित प्रेत पिशाच असुर ने, तुम पर स्वामिन भेज दिये।
भव-भव के दुखहेतु क्रूर ने कर्म अनेकों बांध लिये॥
पुलकित वदन-सु-मन हर्षित हो, जो जन तज माया जंजाल।
त्रिभुवनपति के चरण-कमल की, सेवा करते तीनों काल॥
तुव प्रसादतैं भविजन सारे, लग जाते भव - सागर पार।
मानवजीवन सफल बनाते, धन्य धन्य उनका अवतार॥
इस असीम भव-सागर में नित, भ्रमत अकथ जो दुख पायो।
तोऊ सु-यश तुम्हारो साँचो, नहिं कानों तक सुन पायो॥
प्रभु का नाम-मन्त्र यदि सुनता, चित्त लगा करके भरपूर।
तो यह विपदारूपी नागिन, पास न आती रहती दूर॥

पूरव भव में तव चरनन की, मनवांछित फल की दातार।
की न कभी सेवा भावों से, मुझको हुआ आज निरधार॥
अतः रंक जन मेरा करते, हास्य सहित अपमान अपार।
सेवक अपना मुझे बनालो, अब तो हे प्रभु जगदाधार॥
दृढ़निश्चय करि मोहतिमिर से, मूँदे मूँदे थे लोचन।
देख सका ना उनसे तुमको, एकबार हे दुखमोचन॥
दर्शन कर लेता गर पहिले, तो जिसकी गति प्रबल अरोक।
मर्मच्छेदी महा अनर्थक, पाता कभी न दुख के थोक॥
देखा भी है, पूजा भी है, नाम आपका श्रवण किया।
भक्तिभाव अरु श्रद्धापूर्वक, किन्तु न तेरा ध्यान किया॥
इसीलिये तो दुःखों का मैं, गेह बना हूँ निश्चित ही।
फले न किरिया विना भावके, लोकोक्ती सुप्रचलित ही॥
दीन-दुखी जीवों के रक्षक, हे करुणा-सागर प्रभुवर।
शरणागत के हे प्रतिपालक, हे पुण्योत्पादक जिनवर॥
हे जिनेश! मैं भक्तिभाव वश, शिर धरता तुमरे पग पर।
दुःखमूल निर्मूल करो प्रभु, करुणा करके अब मुझ पर॥
हे शरणागत के प्रतिपालक, अशरण जनको एक शरण।
कर्म-विजेता त्रिभुवननेता, चारु चन्द्रसम विमल चरण॥
तव पद-पङ्कज पा करके ये, प्रतिभाशाली बड़भागी।
कर न सका यदि ध्यान आपका हूँ अवश्य तब हतभागी॥

अखिल वस्तुके जान लिये हैं, सर्वोत्तम जिसने सब सार ।
हे जगतारक ! हे जगनायक ! दुखियों के हे करुणागार ॥
वन्दनीय हे दया-सरोवर, दीन-दुखी की हरना त्रास ।
महा-भयङ्कर भव-सागर से, रक्षा कर अब दो सुखवास ॥

एकमात्र है शरण आपकी, ऐसा मैं हूँ दीन-दयाल !
पाऊँ फल यदि किञ्चित करके,चरणों की सेवा चिर-काल ॥
तो हे तारन - तरन नाथ हे, अशरण-शरण मोक्षगामी ।
बने रहें इस - परभव में, बस मेरे आप सदा स्वामी ॥

हे जिनेन्द्र ! जो एकनिष्ठ तव, निरखत इकटक कमल-वदन ।
भक्तिसहित सेवासे पुलकित, रोमाञ्चित है जिनका तन ॥
अथवा रोमावलि के ही जो, पहिने हैं कमनीय वसन ।
यों विधि-पूर्वक स्वामिन् तेरा, करते हैं जो अभिनन्दन ॥

जन दृगरूपी 'कुमुद' वर्ग के, विकसावन हारे राकेश ।
भोग-भोग स्वर्गों के वैभव, अष्टकर्म-मल कर निःशेष ॥
स्वल्पकाल में मुक्तिधामकी, पाते हैं वे दशा - विशेष ॥
जहां सौख्य-साम्राज्य अमर है, आकुलता का नहीं प्रवेश ॥

॥ इति भाषाकल्याणमन्दिरस्तोत्र समाप्त ॥

—)*(—

एकीभाव स्तोत्र–भाषा

एकमेक होकर नितान्त जो, मानो स्वयं हुआ अनिवार्य।
ऐसा कर्म-प्रबन्ध भवों तक, दुख देने का करता कार्य॥
उससे पिण्ड छुड़ा सकती जब, हे जिन–सूर्य आपकी भक्ति।
तो फिर कौन अन्य भवतापी, जिनपर वह अजमावे शक्ति॥

पाप–पुंज रूपी अँधियारे, के विनाश के हेतु मशाल।
आप कहे जाते हैं जिनवर, तत्त्वज्ञों द्वारा चिरकाल॥
मेरे मन–मन्दिर में जब तक, है ज्योतिर्मय तेरा वास।
तब तक कैसे पाप-तिमिर को, उसमें मिल सकता अवकाश॥

टप-टप गिरे हर्ष के आँसू, उनसे अपना मुख धोया।
दृढमन होकर गद्गद् स्वर से, मन्त्र कीर्त्तन संजोया॥
काया की बांबी में बसते, थे नाना रोगों के नाग।
वे अपनी चिर जगह छोड़कर, गये शीघ्र अब बाहर भाग॥

भव्यों के सौभाग्य उदय से, आप स्वर्ग से करें प्रयाण।
उसके पहिले यहां सुरों ने, स्वर्णिम किया गर्भ-कल्याण॥
मेरे मनहर मन-मन्दिर में, ध्यान-द्वार से यदि आवें।
तो क्या अचरज देव! कोढि की, कञ्चन काया कर जावें॥

लोकहितैषी एकमात्र हैं, बन्धु आप ही निष्कारण।
सर्व विषयगत शक्ति आपमें, ही है जिनवर! निरावरण॥
आओ पधारो! बिछी हुई है, भक्तिखचित यह मनकी सेज।
पर कैसे तब धीर धरेंगे, जब निकलेंगी आहें तेज॥

भवारण्य में बहुत समय तक, रहा स्वयं को भटकाता ।
जैसे तैसे मिल पाई तव, सुधा--बावड़ो नय--गाथा ॥
वह इतनी शीतल है जितना, बर्फ चन्द्र या चन्दन अब ।
डुबकी उसमें लगा चुका हूँ, नहीं तापका बन्धन अब ॥

कदम कदम पर बिछते जाते, कमल पांवडे देव पुनीत ।
सुरभित स्वर्णिम हो जाते जब,श्रीविहार से लोक पुनीत ॥
तब मेरा मन छू ले यदि, सर्वाङ्ग रूपसे तुमको देव ।
अहा ! कौनसा कल्याणक फिर,प्राप्त नहीं होगा स्वयमेव ॥

देखा जाता है कि तुम्हें जो, भक्त निहारा करते हैं ।
कर्मभूमिसे निकल काम को, भू पर मारा करते हैं ॥
भक्तिरूप अँजुलिमें भरकर, तव वचनामृत जो पीते ।
भूलुंठित कर क्रूर-रोग को, निष्कंटक सुख से जीते ॥

पत्थर का खम्भा कोई तो, मानथम्भ पाषाण हृदय ।
मूर्तिमान हैं रत्न यही बस, वैसे ढेरों रत्नत्रय ॥
ज्यों ही सम्यक् दृष्टि पड़ी उस,पर त्यों ही अभिमान गला ।
निकट भव्यता की ऐसी, पावे तो कोई शक्ति भला ॥

तेरी मूरत कायागिरि को, छूकर बहती हुई पवन ।
धूल उड़ाती रोगों की जन–मानस में कर संचारण ॥
फिर जिस हृदय-कमलके तुम हो, ध्यानामंत्रित अभ्यागत ।
उसको किस लौकिक भलाइकी,प्राप्त नहीं प्रभुवर ! ताकत ॥

जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृक्च दुःखं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च, त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्त्तव्यं तदिह विषये, देव एव प्रमाणम् ॥११

प्रापद्दैवं तव नुति-पदै-र्जीवकेनोपदिष्टैः,
पापाचारी मरण-समये, सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते, वासव-श्री-प्रभुत्वं,
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कार-चक्रम् ॥१२॥

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते, सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं, मुक्ति-कामस्य पुंसो,
मुक्ति-द्वारं परिदृढ़-महामोह-मुद्रा-कवाटम् ॥१३॥

प्रच्छन्नः खल्वयमघमयै-रन्धकारैः समन्तात्,
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पद-क्लेश-गर्तै-रगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो, देव तत्त्वाव-भासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारती-रत्न-दीपः ॥१४॥

आत्म-ज्योति-र्निधि-रनवधिर्द्रष्टुरानन्द-हेतुः,
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः,
स्तोत्रैर्बन्ध-प्रकृति-पुरुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः ॥१५॥

तुम्हीं जानते जैसे जो जो, जनम जनम के कष्ट सहे ।
उनके संस्मरण भी मुझको, मानो भाले चुभा रहे ॥
सर्वेश्वर करुणाकर! हो प्रभु, अतः भक्तिवश तव शरणम् ।
मुझे सभी कुछ प्रामाणिक है, जैसा जो कुछ करणीयम् ॥
णमोकार के मूलमन्त्र को, कुत्सित कुत्ता मरणासन्न ।
जीवन्धर द्वारा पाते ही, हुआ देव जव सुख-सम्पन्न ॥
तो मणिमालाओं द्वारा पद, नमस्कार मन्त्रों का जाप्य ।
करने वाले पुरुषों को सच, इन्द्रों का भी वैभव प्राप्य ॥
मोहरूप-मुद्राके कारण, मुक्तिद्वार के वन्द कपाट ।
कैसे खुल सकते मुमुक्षु के, द्वारा कुञ्जीरहित विराट ॥
सम्यग्दर्शन भक्ति-रूपिणी, कुञ्जी सुखदा पास न हो ।
ज्ञान भले ही विमल रहो, आचरण भले ही शुद्ध रहो ॥
ढका हुआ चहुं ओर पापके घोर अंधेरे में शिव-पन्थ ।
दुखरूपी गहरे गड्ढों से, ऊबड़-खावड़ है अत्यन्त ॥
आगे आगे तत्त्व-दर्शिका, दीपक-मणि यदि जिनवाणी ।
होती नहीं मार्ग पर कैसे, चल सकते सुख से प्राणी ॥
कर्मभूमि के तहखानों में, गड़ा-पड़ा अक्षुण्ण खजाना ।
हर्षित आत्मज्योतिनिधि-दृष्टा, वाममार्गियो अनजाना ॥
भक्त भेदिया करें हस्तगत, निश्चय ही उसको तत्काल ।
खोदें कर्मभूमि की पर्तें, कठिन हाथ ले विनय-कुदाल ॥१५॥

प्रत्युत्पन्ना नय – हिमगिरे-रायता चामृताब्धेः,
या देव त्वत्पद-कमलयोः, सङ्गता भक्ति-गङ्गाम् ।
चेतस्तस्यां मम रुजि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः,
कल्माषं यद्भवति किमियं, देव सन्देहभूमिः ॥१६

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुख, त्वामनुध्यायतो मे,
त्वय्येवाहं स इति मति-रुत्पद्यते निर्विकल्पा ।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते, तृप्तिमभ्रेष-रूपां,
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ति ॥१७

मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभङ्गी – तरङ्गैः,
वागम्भोधिर्भुवनमखिलं, देव पर्येति यस्ते ।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधा-श्चेतसैवाचलेन,
व्यातन्वन्तः सुचिरममृता – सेवया तृप्नुवन्ति ॥१८

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं, यः स्वभावादहृद्यः,
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः ।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभग-स्त्वं न शक्यः परेषां,
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः, किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१६

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां, किं तया श्लाघनं ते,
तस्यैवेयं भव-लय-करी श्लाघ्यतामातनोति ।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं,
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम् ॥२०

अनेकान्तरूपी हिमगिर से, देव ! भक्ति-गंगा निकली।
घूम-चूम श्रीचरण-कमल को, शिवसागर में पुनः मिली ॥
मेरे मनका मैल धुल गया, उसमें अवगाहन करके।
क्या संदेह ? रहा आऊँगा, निर्मल मन - पावन करके ॥

"शाश्वतसुखपदप्रकटरूप प्रभु" ! ऐसा करते ध्यान ध्यान।
निर्विकल्पमति छा जाती है "मैं भी हूँ सोऽहम् भगवान" ॥
झूठ बात- "भगवान कहा हूँ ?" किन्तु चैन इससे मिलती।
तेरी अनुकम्पा से छद्म - मस्थों, की भी वाँछा फलती ॥

जिनवाणी रूपी समुद्र कर, रहा व्याप्त भू - मण्डल को।
सप्तभङ्ग की तरल तरंगें, हटा रहीं मिथ्या - मल को ॥
मन-सुमेरु रूपी मथनी से, किया गया सागर - मन्थन।
तृप्त करेगा विज्ञजनों को, देवोपम अम्मृत—सेवन ॥

जो स्वभावतः ही कुरूप है, उसे चाहिए गहने वस्त्र।
जिसे शत्रु से खटका रहता, वही ग्रहण करता है अस्त्र ॥
तुम सर्वाङ्ग रूप से सुन्दर, तथा अजात-शत्रु जिनदेव।
अस्त्र-शस्त्र या वस्त्राभूषण, सज्जा व्यर्थ तुम्हें स्वयमेव ॥

"इन्द्र आपकी सेवा करता, भली भांति" क्या हुई बड़ाई ?
किन्तु इन्द्र ने ऐसा करके, निजी प्रशंसा अभव बढाई ?
भव-सागर से पार करैया, तुम शिव-रमणी के भगवान !
इसी प्रशंसा से हो सकता, लोकेश्वर का गौरव-गान ॥

प्रत्युत्पन्ना नय – हिमगिरे-रायता चामृताब्धेः,
 या देव त्वत्पद-कमलयोः, सङ्गता भक्ति-गङ्गाम् ।
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः,
 कल्माषं यद्भवति किमियं, देव सन्देहभूमिः ॥१६

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुख, त्वामनुध्यायतो मे,
 त्वय्येवाहं स इति मति-रुत्पद्यते निर्विकल्पा ।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते, तृप्तिमभ्रेष-रूपां,
 दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ति ॥१७

मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभङ्गी – तरङ्गैः,
 वागम्भोधिर्भुवनमखिलं, देव पर्येति यस्ते ।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधा-श्चेतसैवाचलेन,
 व्यातन्वन्तः सुचिरममृता – सेवया तृप्नुवन्ति ॥१८

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं, यः स्वभावादहृद्यः,
 शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः ।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभग-स्त्वं न शक्यः परेषां,
 तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः, किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१९

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां, किं तया श्लाघनं ते,
 तस्यैवेयं भव-लय-करीं श्लाघ्यतामातनोति ।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं,
 त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाध्यते स्तोत्रमित्थम् ॥२०

अनेकान्तरूपी हिमगिर से, देव ! भक्ति-गंगा निकली।
घूम–चूम श्रीचरण-कमल को, शिवसागर में पुनः मिली॥
मेरे मनका मैल धुल गया, उसमें अवगाहन करके।
क्या संदेह ? रहा आऊँगा, निर्मल मन – पावन करके॥

"शाश्वतसुखपदप्रकटरूप प्रभु" ! ऐसा करते ध्यान ध्यान।
निर्विकल्पमति छा जाती है "मैं भी हूँ सोऽहम् भगवान"॥
झूठ बात– "भगवान कहा हूँ ?" किन्तु चैन इससे मिलती।
तेरी अनुकम्पा से छद्म – मस्थों, की भी वाँछा फलती॥

जिनवाणी रूपी समुद्र कर, रहा व्याप्त भू – मण्डल को।
सप्तभङ्ग की तरल तरंगें, हटा रहीं मिथ्या – मल को॥
मन-सुमेरु रूपी मथनी से, किया गया सागर – मन्थन।
तृप्त करेगा विज्ञजनों को, देवोपम अम्मृत—सेवन॥

जो स्वभावतः ही कुरूप है, उसे चाहिए गहने वस्त्र।
जिसे शत्रु से खटका रहता, वही ग्रहण करता है अस्त्र॥
तुम सर्वाङ्ग रूप से सुन्दर, तथा अजात-शत्रु जिनदेव।
अस्त्र-शस्त्र या वस्त्राभूषण, सज्जा व्यर्थ तुम्हें स्वयमेव॥

"इन्द्र आपकी सेवा करता, भली भांति" क्या हुई बड़ाइ ?
किन्तु इन्द्र ने ऐसा करके, निजी प्रशंसा अभव बढाइ ?
भव–सागर से पार करैया, तुम शिव-रमणी के भगवान !
इसी प्रशंसा से हो सकता, लोकेश्वर का गौरव-गान॥

वृत्तिर्वाचामपर–सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः,
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी न क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्ति–पीयूष–पुष्टाः,
ते भव्यानामभिमत–फलाः पारिजाता भवन्ति॥

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो;
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयेवान – पेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि – वैरहारी
क्वैवम्भूतं भुवन – तिलक! प्राभवं त्वत्परेषु॥

देव! स्तोतुं त्रिदिव–गणिका मण्डली–गीत–कीर्तिं,
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञानःमूर्तिः जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थाः,
तत्त्व-ग्रन्थ–स्मरण – विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः॥

चित्ते कुर्वन्निरवधि–सुख-ज्ञान-दृग्वीर्य–रूपं,
देव त्वां यः समय – नियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम्॥

भक्ति-प्रह्व महेन्द्र – पूजित–पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः।
सूक्ष्म-ज्ञान–दृशोऽपि संयमभृतः, के हन्त मन्दा वयम्॥
अस्माभिः स्तवन-च्छलेन तु परस्त्वय्या – दरस्तन्यते।
स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः,कल्याणकल्पद्रुमः॥२५॥

जड़ शब्दों की प्रवृति और है,निजस्वरूपचिन्मय कुछ और ।
ऐसे पहुँच सकेंगे तुम तक, वाक्य हमारे हे सिरमौर ॥
भले न पहुँचे भक्ति - सुधा में, पगे हुए भीने उद्गार ।
भव्यों को तो बन जावेंगे, कल्पवृक्ष वांछित दातार ॥

नहीं किसी पर अनुकम्पा है,नहीं किसी पर किञ्चित रोष ।
चित्त आपका सचमुच सबसे, उदासीन एवं निर्दोष ॥
तो भी वैर भुलाने वाला, विश्वबन्धु - मय अनुशासन ।
नहीं किसी के पास मिलेगा, आप सरीखा हे भगवन् ॥

अप्सराओं के द्वारा गाया, गया आपका गौरव-गान ।
सकल विषयगत मूर्तिमान है, देव आपका केवल-ज्ञान ॥
उस मुमुक्षु को शिव-मग टेढ़ा - मेढ़ा नहीं लगा करता ।
मूढ़ न होता तात्त्विक चर्चा, में रखता जो तत्परता ॥

अतुल चतुष्टय रूप आपका, समा गया जिसके मन में ।
सादर समयसारता पूर्वक, जो तल्लीन कीर्तन में ॥
पुण्यवान वह गायन से ही, तय करता श्रेयस मंजिल ।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष फिर, जाते उसको पांचों मिल ॥

अहो भक्त इन्द्रों से पूजित, चरण आपके अपरम्पार ।
सूक्ष्मज्ञानदर्शी मुनि यति भी, जिनगुणगायन नें लाचार ॥
मन्दबुद्धि हम कहां विचारे, फिर भी एक बहाना यह ।
कल्पवृक्ष है आत्म सुखद है, तव प्रशस्ति है गाना यह ॥

वृत्तिर्वाचामपर–सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः,
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी न क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्ति–पीयूष–पुष्टाः,
ते भव्यानामभिमत–फलाः पारिजाता भवन्ति॥

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयेवान – पेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि – वैरहारी
क्वैवम्भूतं भुवन – तिलक! प्राभवं त्वत्परेषु॥

देव! स्तोतुं त्रिदिव–गणिका मण्डली–गीत–कीर्तिं,
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञानःमूर्तिः जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थाः,
तत्त्व-ग्रन्थ–स्मरण – विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः॥

चित्ते कुर्वन्निरवधि–सुख–ज्ञान–दग्वीर्य–रूपं,
देव त्वां यः समय – नियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम्॥

भक्ति-प्रह्व महेन्द्र – पूजित–पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः।
सूक्ष्म-ज्ञान–दृशोऽपि संयमभृतः, के हन्त मन्दा वयम्॥
अस्माभिः स्तवन-च्छलेन तु परस्त्वय्या – दरस्तन्यते।
स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः,कल्याणकल्पद्रुमः॥२५॥

विषापहार स्तोत्र भाषा

(श्री 'कुमुद' वा 'पुष्पेन्दु' खुरई प्रणीत)

हो आत्म – रूप में संस्थित, त्रिभुवन के भी गामी।
व्यापारों के हो वेत्ता भी, अपरिग्रही जिन – स्वामी॥
दीर्घायु सहित भी होकर, नित वृद्धावस्था – विरहित।
अतिश्रेष्ठ पुराण नरोत्तम, अब करें नाश से रक्षित॥

जिसने ही अन्य विचिन्तित, युग – भार अकेले धारा।
एवं जिनका गुण–कीर्तन, सम्भव न मुनीन्द्रों द्वारा॥
अभिनन्दनीय हैं मेरे, अब वही वृषभ – दुखहर्ता।
रवि के अभाव में प्रभुवर, क्या दीप प्रवेश न कर्ता॥

तव संस्तुति करने का भी, मद त्याग चुका है सुरपति।
पर मैं तव गुण गाने का, उद्योग न तजता जिनपति॥
वातायन सम ही सीमित, निज अल्पज्ञान से इस क्षण।
करता हूँ उनसे विस्तृत, अति व्यापक अर्थ निरूपण॥३॥

वैयाकरण और नैयायिक, कविगण एवं सन्त सहाय।
वादिराज की तुलना में हैं, चारों के चारों निरुपाय॥
भूधर की भूधरली शिर पर, किया पद्यमय यह अनुवाद।
कुमुद और पुष्पेन्दु युगल ने, पाकर गुरु का परम प्रसाद॥

त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो,
विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः ।
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यः,
स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ॥

व्यापीडितं बालमिवात्म-दोषै-
रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम् ।
हिताहितान्वेषण - मान्द्यभाजः,
सर्वस्य जन्तोरसि बाल-वैद्यः ॥

दाता न हर्ता दिवसं विवस्वा-
नद्यश्व इत्यच्युत - दर्शिताशः ।
संव्याज - मेवं गमयत्यशक्तः,
क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि,
त्वयि स्वाभावाद्विमुखश्च दुःखम् ।
सदावदात - द्युतिरेक - रूपः
तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥

अगाधताब्धे स यतः पयोधि-
र्मेरोश्च तुङ्गा प्रकृतिः स यत्र ।
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव,
व्यापत्त्वदीया भुवनान्तराणि ॥८॥

हैं आप सभी के द्रष्टा, सबसे हैं किन्तु अदर्शित।
वेत्ता भी आप सभी के, पर सबसे ही हैं अविदित॥
'प्रभु कैसे हैं ? कितने हैं ?', यह बता न सकते ज्ञानी।
तव संस्तुति से हो मेरी, ही प्रकट अशक्ति कहानी॥

जो शिशुओं सम हैं व्याकुल, निज दोष-राशि के कारण।
कर दिये आपने उनके, सारे भव - रोग निवारण॥
जो मूढ़ नहीं कर सकते, हित और अहित का निर्णय।
जिनराज ! आप ही उनके, तो बाल - वैद्य हैं निश्चय॥

कुछ देता न किसी को एवं, कुछ हरण न करता दिनकर।
बस 'आज' और 'कल' यों ही, आशाएँ वह दिखलाकर॥
असमर्थ दिवस खो देता, प्रतिदिन ही जगती को छल।
पर आप शीघ्र तन जन को, दे देते मनवांछित फल॥

अनुकूल आपके चलता, जो प्राणी वह सुख पाता।
रहता प्रतिकूल तथा जो, वह अगणित दुःख उठाता॥
पर आप सदा ही दोनों, के आगे भी दर्पण - सम।
अवदात कान्ति से लगते-हैं एक सदृश सुन्दरतम॥

सागर का तो गहरापन बस सागर तक मर्यादित।
ऊँचाई मेरु अचल की, है मात्र उसी तक सीमित॥
विस्तार उसी विधि सीमित, वसुधा-तल और गगन के।
पर तव गुणौघ से पूरित, कण-कण भी तीन भुवन के॥

तवानवस्था परमार्थ — तत्त्वं,
त्वया न गीतः पुनरागमश्च ।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषी —
विरुद्ध-वृत्तोऽपि समञ्जसस्त्वम् ॥

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन् ,
उद्धूलितात्मा यदि नाम शम्भुः ।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः ,
किं गृह्यते येन भवानजागः ॥

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा,
तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम् ।
स्वतोऽम्बुराशे-र्महिमा न देव,
स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥

कर्मस्थितिं जन्तुरनेक – भूमिं,
नयत्यमुं सा च परस्परस्य ।
त्वं नेतृ भावं हि तयोर्भवाब्धौ,
जिनेन्द्र नौ–नाविकयोरिवाख्यः ॥

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्,
धर्माय पापानि समाचरन्ति !
तैलाय बालाः सिकता–समूहं,
निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः ॥१३॥

सिद्धान्त आपका प्रभुवर ! है यथार्थ अनवस्था।
एवं न आपने घोषित – की पुनरागमन अवस्था ॥
इह लौकिक सुखको तजकर, परलोक-सौख्य अभिलाषी।
यों आप उचिततामय हैं, हो मात्र विरोधाभासी ॥
वस्तुतः आपके द्वारा – ही, काम हुआ है मर्दित।
यदि कहें शम्भु को तो वे, फिर हुए मनोज कलंकित ॥
स्वयमेव विष्णु भी सोये, हो लक्ष्मी जी से प्रेरित।
क्यों ग्राह्य हुए हैं ये जब, अविराम आप हैं जागृत ॥
ब्रह्मादि देव हों निर्मल, या अन्य देव सविकारी।
पर उनके दोष–कथन से, कुछ गरिमा नहीं तुम्हारी ॥
कारण समुद्र की महिमा, होती स्वभावतः जिनवर !
पर सिद्ध नहीं हो जाती, सरवर को छोटा कहकर ॥
इस कर्म-पिण्ड को भव-भव, में जीव साथ ले जाता।
औ, कर्म-पिण्ड भी उसको, हर गति में साथ घुमाता ॥
यों देव ! आपने भव–जल, में नौका नाविक सम ही।
नेतृत्व परस्पर कहकर, बतलाया सत्य नियम ही ॥
ज्यों तैल प्राप्त करने को, शिशु पेला करते रजकण।
त्यों देव ! आपके शासन, से विमुख अनेकों नर–गण ॥
सुखकी इच्छा से दुखको, गुणाभिलाप से दुष्कृत।
औ, धर्महेतु ही पापों, को प्रतिदिन करते संचित ॥

अति विस्मय है विषहारक – मणि औषधि–मन्त्र–रसायन ।
के हेतु विश्व में भटका,–करते हैं भोले जग – जन ॥
पर, आप मन्त्र-मणि औषधि, यह नहीं ध्यान में लाते ।
ये क्योंकि आपके ही तो, पर्यायी नाम कहाते ॥

हे देव ! आप निज मन में, स्वयमेव न कुछ भी करते ।
पर जो जन अपने उर में, सामोद आपको धरते ॥
उनने समस्त ही जग को, कर लिया हाथ में संचित ।
आश्चर्य ! आप तो चेतन, से विरहित हो भी जीवित ॥

त्रय-काल तत्त्व के ज्ञाता, एवं त्रिलोक के स्वामी ।
उनकी निश्चितता से ही, यह संख्या है अनुगामी ॥
पर नहीं ज्ञान के शासन के प्रति यह संख्या समुचित ।
कारण कि और यदि होते, हो जाते तो अन्तर्हित ॥

सुरपुर के स्वामी की वह, सुन्दर सेना मनहारी ।
उपकारी न आपकी है, हे अगम – रूप के धारी ॥
पर अगमरूप मय दिनकर, को छत्र लगाने वाले ।
सम उसी इन्द्र को देती, है आत्मिक सौख्य निराले ॥

निर्मोही आप कहां तो, है कहां सुखद उपदेशन ।
यह सही, कहां पर सम्भव, इच्छा–विपरीत निरूपन ॥
इच्छा-विपरीत कहां यह, है कहां लोक – रञ्जकता ।
यों है विरोध, इस कारण, सद्रूप नहीं कह सकता ॥

तुङ्गात्फलं यत्तद्- किञ्चनाच्च,
प्राप्यं समृद्धान्न - धनेश्वरादेः ।
निरम्भसोऽप्युच्चतमाद्रिवाद्रे -,
नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥

त्रैलोक्य-सेवा-नियमाय दण्डं,
दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य ।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं,
तत्कर्म-योगाद्यदि वा तवास्तु ॥

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः,
श्रीमान्न कश्चित्कृपणः त्वदन्यः ।
यथा प्रकाश-स्थितमन्धकार-
स्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमःस्थम् ॥

स्ववृद्धिनिःश्वास-निमेष-भाजि,
प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः ।
किं चाखिल-ज्ञेय-विवर्ति-बोध-
स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव,
त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य ।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं,
पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति ॥२३॥

जो फल तुरन्त मिल जाता, दानी निष्किंचन जन से।
वह नहीं प्राप्त हो सकता, धनशाली लोभी जन से॥
ज्यों अगणित सरित् निकलतीं, जलविरहित अद्रिशिखर से।
पर देव! एक भी सरिता, बहती न कभी सागर से॥
जो तीनों ही लोकों के, सेवार्थ नियम के कारण।
सुरपति ने अधिक विनय से, वह दण्ड किया था धारण॥
यों प्रतिहार्य हो उसको, पर नहीं आपको संभव।
पर कर्मयोग से वह ही; हो नाथ आपको संभव॥
निर्धन जन लक्ष्मीशाली, को देखा करते सादर।
पर सिवा आपके, निर्धन, को धनी न देते आदर॥
है सत्य यथा तिमिरावस्थित, को प्रकाशस्थ दिखलाता।
त्यों प्रकाशस्थ तिमिरावस्थित-को नहीं देखने पाता॥
प्रत्यक्ष वृद्धि उच्छ्वासों वा, दृग ज्योति आदि के भाजन।
अपने स्वरूप के अनुभव की, शक्ति न रखते जो जन॥
वे सकल विश्व के ज्ञायक, सज्ज्ञानमयी गुण-सागर।
अध्यक्ष! आपको कैसे, समझेंगे हे जिनवर॥
हैं आप नाभि के नंदन, या पिता भरत के जिनवर।
यों वंश आपके कहकर, अपमानित करते जो नर॥
वे अब भी करगत सोने, को पत्थर-जन्य समझकर।
फिर वे अवश्य तज देते; उसको भी पत्थर कहकर॥

दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः,

सुरासुरास्तस्य महान् स लाभः ।

मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धु-

र्मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेः,

चतुर्गतीनां गहनं परेण ।

सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन,

त्वं मा कदाचिद्भुज-मालुलोक ॥

स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः,

कल्पान्तवातोऽम्बुनिधे - र्विघाता ।

संसार भोगस्य वियोग-भावो,

विपक्ष — पूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥

अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्,

तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति ।

हरिन्मणिं काचधिया दधानः,

तं तस्य बुद्धया वहतो न रिक्तः ॥

प्रशस्त - वाचश्चतुराः कषायैः,

दग्धस्य देव - व्यवहारमाहुः ।

गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वं,

दृष्टं कपालस्य च मङ्गलत्वम् ॥२८॥

त्रिभुवन में मोह-सुभट ने, जो जय का पटह बजाया।
सब हुये तिरस्कृत उससे, पर लाभ मोह ने पाया॥
पर उसे आपके सम्मुख, तो पड़ा पराजित होना।
है सत्य-सबल का रिपु बन, निजको समूल ही खोना॥

हे नाथ! आपने देखा, है मुक्ति-मार्ग ही केवल।
पर औरों ने तो देखी, हैं चारों गतियों की हलचल॥
अतएव "सभी कुछ मैंने, देखा है ऐसा कहकर।
निजभुजा आपने मद से, देखी न कभी भी जिनवर॥

है राहु सूर्य का ग्राहक, जल पावक का संहारक।
कल्पान्त काल का भीषण, मारुत है सागर - नाशक॥
औ, विरह-भाव इस जग के, भोगों का करता क्षय है।
यों सिवा आपके होता, सबका अरि-संग उदय है॥

प्रभु! बिना आपको जाने, विजयी फल पाता जैसा।
औरों को देव समझकर, पाता न कभी फल वैसा॥
शुचि मणि को कांच समझकर, ही धरने वाला सज्जन।
मणि समझ मणी के धर्त्ता से, ही नहीं कभी भी निर्धन॥

व्यवहार-कुशल पटु - वक्ता, चारों कषाय से दहते।
अनुरागी द्वेषी जन को, भी देव निरन्तर कहते॥
ज्यों बुझे हुए दीपक को, कहते हैं 'दीप बढ़ा है'
अथवा 'कल्याण' बताते, जब जाता फूट घड़ा है॥

नानार्थमेकार्थ - मदस्त्वदुक्तं,
हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः ।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति,
ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥
न क्वापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते,
काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः ।
न पूरयाम्यम्बुधिमित्यदंशुः,
स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥
गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना,
वहु - प्रकारा वहवस्तवेति ।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवने न तेषां,
गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति ॥
स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या,
स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि ।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं,
केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम् ॥
ततस्त्रिलोकी - नगराधिदेवं,
नित्यं परं ज्योतिरनन्त-शक्तिम् ।
अपुण्य-पापं पर-पुण्य-हेतुं,
नमाम्यहं वन्द्यमवन्दितारम् ॥३३॥

एकार्थ आपके वर्णित, नानार्थों के प्रतिपादक।
त्रिभुवन हितकारी वचनों को, सुनकर कौन विचारक॥
तव निर्दोषत्व न तत्क्षण, प्रभुवर अनुभव का पाता।
सच है; ज्वर-विरहित रोगी, स्वर से सुगम्य हो जाता॥

इच्छा न आपकी कुछ भी, पर खिरते वचन स्वयं ही।
सच, किसी काल में वैसा, होता है कभी नियम ही॥
ज्यों शशि न सोच यह उगता, मैं करूँ सिन्धु को पूरित।
पर वह स्वभावतः प्रतिदिन, रजनी में होता समुदित॥

हे नाथ ! आपके गुण-गण, अनुपम गम्भीर अपरिमित।
उत्कृष्ट समुज्ज्वल एवं, नाना प्रकार के अगणित॥
यों अन्त दिखाता उनका, पर नहीं स्तवन में जिनवर।
गुण अन्य, गुणों का क्या अन्त, हो सकता इससे बढ़कर॥

मनवाञ्छित सिद्ध न होता; है केवल संस्तुति से ही।
पर होता सिद्ध सुसंस्मृति, सद्भक्ति नमस्कृति से भी॥
अतएव आपको भजता, ध्याता नत होता प्रतिपल।
कारण कि किसी भी विधि से, होता है साध्य परम फल॥

अतएव त्रिलोक – स्वरूपी, इस नगरी के अधिकारी।
शाश्वत अति श्रेष्ठ प्रभामय, निस्सीम शक्ति के धारी॥
हर पुण्य-पाप से विरहित, जग पुण्यहेतु जगवन्दित।
पर स्वयं अवन्दक प्रभु को, करता प्रणाम हो हर्षित॥

अशब्दमस्पर्शमरूप - गन्धं,
त्वां नीरसं तद्विषयावबोधम् ।
सर्वस्य मातारममेयमन्यै-
र्जिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥
अगाध-मन्यैर्मनसाप्यलङ्घ्यं,
निष्किञ्चनं प्रार्थितमर्थवद्भिः ।
विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं,
पतिं जनानां शरणं व्रजामि ॥
त्रैलोक्य-दीक्षा-गुरवे नमस्ते,
यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत् ।
प्राग्गण्डशैलः पुनरद्रि-कल्पः,
पश्चान्न मेरुः कुल - पर्वतोऽभूत् ॥
स्वयं प्रकाशस्य दिवा निशा वा,
न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम् ॥
न लाघवं गौरवमेकरूपं,
वन्दे विभुं कालकलामतीतम् ॥
इति स्तुतिं देव विधाय दैन्यात्,
वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि ।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्,
कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥

संस्पर्श - हीन अति नीरस, हर गंध रूप से विरहित।
औ शब्द-रहित भी होकर, तद्विषय - ज्ञान से शोभित ॥
सर्वज्ञ स्वयं ही होकर, भी अन्य जनों से अविदित।
अस्मार्य जिनेश्वर को ही, मैं ध्याता हूं हो प्रमुदित ॥

गम्भीर सिन्धु से बढ़कर, मन द्वारा भी अनुलंघित।
निष्किञ्चन होने पर ही, धनवानों द्वारा याचित ॥
जो सबके पार-स्वरूपी, पर जिनका पार न पाया।
उन अपरम्पार जगत्पति, की शरण-प्राप्ति को आया ॥

त्रिभुवन के दीक्षा-गुरुवर, है नमन आपको शत-शत।
जो वर्धमान भी होकर, स्वयमेव हुये थे उन्नत ॥
गिरि मेरु पूर्व में टीला, फिर शिलाराशि फिर पर्वत।
फिर हुआ न क्रमशः कुलगिरि, पर था स्वभाव से उन्नत ॥

स्वयमेव प्रकाशित जिसके, दिन और रात के सम ही।
बाध्यत्व तथा बाधकता, का नहीं कदापि नियम ही ॥
यों जिनके न कभी भी लाघव, है और न गौरव अणुभर।
उन एकरूप अविनाशी, प्रभु को प्रणाम है सादर ॥

प्रभुवर! यों संस्तुति करके, मैं दीनभाव से भरकर।
वर नहीं मांगता, कारण, हैं आप उपेक्षक जिनवर ॥
स्वयमेव वृक्ष आश्रित को, मिल जाती छाया शीतल।
छाया की भीख मँगाने, से निकल सकेगा क्या फल ॥

अथास्ति दित्सा यदि वोपरोधः,
त्वय्येव सक्तां दिश भक्ति-बुद्धिम् ।
करिष्यते देव तथा कृपां मे,
को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥

वितरति विहिता यथाकथञ्चित्.
जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः ।
त्वयि नुति-विषया पुनर्विशेषात्,
दिशति सुखानि यशो 'धनं जयं' च ॥

इति संस्कृत विषापहारस्तोत्रं समाप्तम् ।

卐

यदि देने की अभिलाषा, या आग्रह है 'कुछ लेओ' ।
तो मुझे आप में तत्पर, सद्भक्ति भावना देओ ॥
विश्वास आप अब वैसी, ही कृपा करेंगे मुझ पर ।
निज पोष्य शिष्य पर सकरुण, होता न कौनसा गुरुवर ॥

हे देववन्द्य ! जिननायक, जिस किसी भाँति सम्पादित ।
यह भक्ति विनम्र पुरुष को, देती पदार्थ मनवांछित ॥
फिर भक्ति आपकी संस्तुति, विषयिक अवश्य ही निश्चय ।
देती विशेषता - पूर्वक, सुख कीर्ति विभा जय अक्षय ॥

इति भाषा विषापहारस्तोत्र समाप्त ।

महावीराष्टक स्तोत्र संस्कृत

(कविवर पं० भागचन्द्र जी कृत)

छन्द शिखरिणी

यदीये चैतन्ये, मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनिलसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटनपरो भानुरिव यो,
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥

अताम्रं यच्चक्षुः, कमलयुगलं स्पन्दरहितं,
जनान्कोपापायं, प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला,
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः)। २॥

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि - भाजालजटिलं,
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृतां।
भवज्वालाशान्त्यै, प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥३॥

यदर्चाभावेन, प्रमुदितमना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी, गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा,
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥४॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत - तनुर्ज्ञाननिवहो,
विचित्रात्माप्येको, नृपतिवरसिद्धार्थ—तनयः।

महावीराष्टक स्तोत्र भाषा

चेतन अचेतन तत्त्व जेते हैं अनन्त जहान में।
उत्पादव्ययध्रुवमय मुकुरवत् लसत जाके ज्ञान में॥
जो जगत-दरशी जगत में, सन्मार्गदर्शक रवि मनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो॥१॥

टिमिकार विन जुग कमललोचन, लालिमा तें रहित हैं।
बाह्य अन्तर की क्षमा को, भविजनों से कहत हैं॥
अति परमपावन शान्तमुद्रा, तासु तन उज्ज्वल घनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो॥२॥

जिहि स्वर्गवासी विपुल सुरपति, नम्र तन ह्वै नमत हैं।
तिन मुकुटमणिके प्रभामण्डल, पद्मपद में लसत हैं॥
जिन मात्र सुमरनरूप जल से, हनै भव-आतप घनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो॥३॥

मन मुदित ह्वै मण्डूक ने, प्रभु-पूजबे मनसा करी।
ततछन लही सुर सम्पदा, बहु रिद्धि गुणनिधि सों भरी॥
जिहि भक्तिसों सद्भक्तजन लहँ, मुक्तिपुर को सुख घनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो॥४॥

कंचन तपतवत ज्ञाननिधि है, तदपि तनवर्जित रहें।
जो हैं अनेक तथापि इक, सिद्धार्थ - सुत भवरहित हैं॥

अजन्मापि श्रीमान्, विगतभवरागोद्भुतगतिर्,
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (न) ॥५॥

यदीया वाग्गङ्गा, विविधनयकल्लोलविमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा, बुधजनमरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥६॥

अनिर्वारोद्रेक – स्त्रिभुवनजयी काम – सुभटः,
कुमारावस्थाया – मपि निजबलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानन्द–प्रशमपद – राज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (न) ॥७॥

महामोहातङ्क – प्रशमनपरा – कस्मिकभिषङ्,
निरापेक्षो बन्धु – र्विदितमहिमा मङ्गलकरः ।
शरण्यः साधूनां, भवभयभृतामुत्तमगुणो,
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥८॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या भागेन्दुना कृतं ।
यः पठेच्छ्रुणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम् ।

इति महावीराष्टकं स्तोत्रं समाप्तम् ॥

—)※(—

जो वीतरागी गतिरहित हैं तदपि अद्भुत गतिपनो ।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो ॥५॥

जिनकी वचनमय अमर सुरसुरि, विविध नय-लहरें धरे ।
जो पूर्णज्ञान-स्वरूप जल से, नहन भविजन को करे ॥
तामें अजों लँघि घने पण्डित, हँस ही सोहत मनो ।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो ॥६॥

जाने जगत की जन्तुजनिता, करी स्ववश तमाम है ।
है वेग जाको अमिट ऐसो, विकट अतिभट काम है ॥
ताकों स्वबल से प्रौढ़ - वयमें, शान्ति शासन हित हनो ।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो ॥७॥

भयभीत भवतें साधु जनको, शरण उत्तम गुण भरे ।
निस्वार्थ के ही जगत-बान्धव, विदित यश मङ्गल करे ॥
जो मोहरूपी राग हनिवे, वैद्यवर अद्भुत मनो ।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो ॥८॥

महावीर अष्टक रच्यो, भागचन्द रुचि ठान ।
पढें सुनें जे भावसों, ते पावें निरवान ॥
भागचन्द पण्डित महा कियो ग्रन्थ भण्डार ।
मैं मतिमित भाषा करी, शोधो सुधी सुधार ॥

❋ समाप्त ❋

सामायिक पाठ

प्रतिक्रर्म

काल अनन्त भ्रम्यो जगमें, सहिये दुख भारी।
जन्म मरण नित किये, पापको ह्वै अधिकारी॥
हे सर्वज्ञ जिनेश! किये जे पाप जु मैं अब।
धन्य आज मैं भयो, जोग मिलो सुखदायक॥१॥
हे सर्वज्ञ जिनेश!, किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन वच काय, योगकी गुप्ति बिना लभ॥
आप समीप हजूर, मांहि मैं खड़ो खड़ो सब।
दोष कहूँ सो सुनो, करो नठ दुःख देहिं जब॥२॥
क्रोध मान मद लोभ, मोह माया वश प्रानी।
दुःखसहित जे किये, दया तिनकी नहिं कीनी॥
बिना प्रयोजन एक, इन्द्रिय बितिचउ पंचेन्द्रिय।
आप प्रसादहिं मिटे, दोष जो लग्यो मोहि जिय॥३॥
आपस में इक ठौर, थापि करि जे दुख दीने।
पेलि दिये पग तलें, दावि करि प्राण हरीने॥
आप जगत के जीव, जिते तिन सबके नायक।
अरज करूँ मैं सुनो, दोष मेटो दुखदायक॥४॥
अञ्जन आदिक चोर, महा घनघोर पापमय।
तिनके जे अपराध भये, ते क्षमा क्षमा किय॥
मेरे जे अब दोष, भये ते क्षमहु दयानिधि।
यह 'प्रतिकर्म' कियो, आदि षट्कर्म माहिं विधि॥५॥

प्रत्याख्यान कर्म

जो प्रमादवश होय, विराधे जीव घनेरे।
तिनको जो अपराध, भयो मेरे अघ ढेरे॥
सो सब झूठो होहु, जगतपति के परसादै,
जा प्रसाद तैं मिले सर्व, सुख दुःख न लादै॥६॥
मैं पापी निर्लज्ज दया, करि हीन महाशठ।
किये पाप अति घोर, पापमति होय चित्त दुठ॥
निन्दूँ हूँ मैं वार बार, निज जियको गरहूँ।
सब विधि धर्म उपाय पाय, फिरि पापहि करहूँ॥७॥
दुर्लभ है नरजन्म, तथा श्रावक कुल भारी।
सत्संगति संयोग, धर्म जिन श्रद्धा धारी॥
जिन - वचनामृत धार, समावर्तै जिनवानी।
तोहू जीव सम्हारे, धिक् धिक् धिक् हम जानी॥८॥
इन्द्रियलम्पट होय खोय, निज-ज्ञान - जमा सब।
अज्ञानी जिमि करे, तिसि विधि हिंसक है अब॥
गमनागमन करन्तो, जीव विराधे भोले।
ते सब दोष किये, निंदूँ अब मन वच तोले॥९॥
आलोचन - विधि थकी, दोष लागे जु घनेरे।
ते सब दोष विनाश, होहु तुमतैं जिन मेरे॥
बारबार इस भांति, मोह मद दोष कुटिलता।
ईर्षादिकतैं भये, निंदिये जे भयभीता॥१०॥

सामायिक कर्म

सब जीवन में मेरे, समताभाव जग्यो है।
सब जिय मो सम समता, राखो भाव लग्यो है॥
आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान, छांड़ि करहुँ सामायिक।
संयम मो कब शुद्ध, होय यह भाव बधायक॥११॥
पृथिवी जल अरु अग्नि, वायु चउ काय वनस्पति।
पञ्चहि थावर माहिं, तथा त्रसजीव बसें जित॥
बेइन्द्रिय तिय चउ, पंचेन्द्रिय माहिं जीव सब।
तिनसें क्षमा कराऊँ, मुझपर क्षमा करो अब॥१२॥
इस अवसर में मेरे, सब ही कंचन अरु तृण।
महल मसान समान, शत्रु अरु मित्रहु सम गण॥
जन्मन मरन समान, जान हम समता कीनी।
सामायिक का काल, जितै यह भाव नवीनी॥१३॥
मेरो है इक आतम, तामें ममत जु कीनो।
और सबै मम भिन्न, जानि समतारस भीनो॥
मात पिता सुत बन्धु, मित्र तिय आदि सबै यह।
मोतैं न्यारे जानि, यथारथ रूप करथो गह॥१४॥
मैं अनादि जगराज, माहिं फंसि रूप न जान्यो।
एकेन्द्रिय बे आदि, जन्तु को प्राण हरान्यो॥
ते अब जीवसमूह, सुनो मेरी यह अरजी।
भव भव को अपराध, क्षमा कीज्यो करि मरजी॥१५॥

स्तवन कर्म

नमों ऋषभ जिनदेव, अजित जिन जीति कर्मको ।
सम्भव भवदुख हरन, करन अभिनन्द शर्मको ॥
सुमति सुमति दातार, तार भवसिन्धु पार कर ।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि, भवभीति प्रीति धर ॥१६॥
श्रीसुपार्श्व कृतपाश, नाश भय जास शुद्धकर ।
श्रीचन्द्रप्रभ चन्द्र, कान्ति समदेह कान्तिधर ॥
पुष्पदन्त दमि दोष, कोष भवि पोष रोषहर ।
शीतल शीतल करन, हरन भवताप दोषहर ॥१७॥
श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय, नित सेय भव्यजन ।
वासुपूज्य शत पूज्य, वासवादिक भवभय हन ॥
विमल विमलमति देन, अन्तगत है अनन्त जिन ।
धर्म शर्म शिवकरन, शान्तिजिन शान्तिविधायिन ॥१८॥
कुन्थु कुन्थुमुख जीव, पाल अरनाथ जालहर ।
मल्लि मल्लसम मोह. मल्ल मारन प्रचारधर ॥
मुनिसुव्रत व्रत करन, नमत सुर संघहि नमि जिन ।
नमिनाथ जिन नेमि, धर्मरथ माहिं ज्ञानधन ॥१९॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्व, उपलसम मोक्ष-रमापति ।
वर्धमान जिन नमों, वमों भवदुःख कर्मकृत ॥
या विधि मैं जिन, संघ चउवीस संख्यधर ।
तऊँ नमूं बार बार हूँ, वन्दूँ हूँ शिवसुखकर ॥२०॥

बन्दना कर्म

वन्दूँ मैं जिनवीर, धीर महावीर सु सन्मति ।
वर्धमान अतिवीर, वन्दि हों मन वच तन कृत ॥
त्रिशलातनुज महेश, धीश विद्यापति वन्दूँ ।
वन्दूँ नित प्रति कनक, रूपतनु पाप निकन्दूँ ॥२१॥
सिद्धारथनृपनन्द द्वन्द्व, दुख दोष मिटावन ।
दुरित दवानल ज्वलित, ज्वाल जगजीव उधारन ॥
कुण्डलपुर करि जन्म, जगत जिय आनंद कारन ।
वर्ष बहत्तर आयु, पाय सबही दुख टारन ॥२२॥
सप्त हस्त तनु तुङ्ग, भङ्ग कृत जन्ममरनभय ।
बाल ब्रह्ममय ज्ञेय, हेय आदेय ज्ञानमय ॥
दे उपदेश उधारि, तारि भवसिन्धु जीवघन ।
आप बसे शिवमाहिं, ताहि वन्दों मनवचतन ।२३॥
जाके वन्दन थकी, दोष दुख दूरहि जावे ।
जाके वन्दन थकी, मुक्तितिय सन्मुख आवे ॥
जाके वन्दन थकी, वन्द्य होवें सुरगन के ।
ऐसे वीर जिनेश, वन्दिहों क्रमयुग तिनके ॥२४॥
सामायिक षट्कर्म, माहिं वन्दन यह पञ्चम ।
वन्दे वीर जिनेन्द्र, इन्द्रशतवन्द्य वन्द्य मम ॥
जन्ममरण भय हरो, करो अघशान्ति शान्तिमय ।
मैं अघकोष सुपोष, दोषको दोष विनाशय ॥२५॥

कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान, करों अन्तिम सुखदाई ।
काय त्यजनमय होय, काय सबको दुखदाई ॥
पूरब दक्षिण नमों, दिशा पश्चिम उत्तर में ।
जिनगृह-वन्दन करों, हरों भव-पापतिमिर मैं ॥२६॥
शिरोनती मैं करों, नमों मस्तक कर धरिके ।
आवर्त्तादिक क्रिया करों मनवच मद हरिके ॥
तीनलोक जिनभवन, माँहि जिन हैं जु अकृत्रिम ।
कृत्रिम हैं द्वय अर्ध, द्वीप मांहीं वंदों जिम ॥२७॥
आठ कोड़ि पर छप्पन, लाख जु सहस सत्यानों ।
च्यारि शतक परि असी, एक जिनमन्दिर जानों ॥
व्यंतर ज्योतिष मांहि, संख्य रहते जिनमन्दिर ।
जिनगृह-वन्दन करों, हरो मम पाप संघकर ॥२८॥
सामायिक सम नांहि, और कोउ वैर मिटायक ।
सामायिक सम नांहिं, और कोउ मैत्रीदायक ॥
श्रावक अणुव्रत आदि, अन्त सप्तम गुणथानक ।
यह आवश्यक किये, होय निश्चय दुखहानक ॥२६॥
जे भवि आतम काज, करण उद्यम के धारी ।
ते सब काज विहाय, करो सामायिक सारी ॥
राग दोष मद मोह, क्रोध लोभादिक जे सब ।
बुध 'महाचन्द्र' विलाय, जायँ तातें कीज्यो अब ॥३०॥

वैराग्य भावना

दोहा—बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जगमाहिं ।
त्यों चक्री नृप-सुख करे, धर्म विसारे नाहिं ॥

इस विध राज करे नरनायक, भोगे पुण्य विशालो ।
सुखसागर में रमत निरन्तर, जात न जाने कालो ॥
एक दिवस शुभकर्म संयोगे, क्षेमङ्कर मुनि वन्दे ।
देखे श्रीगुरु के पद-पंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥
तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी ।
साधुसमीप विनय कर बैठो, चरणों में दिठि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे ।
राजरमा वनितादिक जे रस, सो सब नीरस लागे ॥
मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भर्मबुधि भागी ।
भव तन भोग स्वरूप विचारो, परमधर्म अनुरागी ॥
या संसार महावन भीतर, भरमत ओर न आवे ।
जन्मन मरण जरा दव दाहे, जीव महादुख पावे ॥
कबहुं कि जाय नरकि पद भुंजे छेदन भेदन भारी ।
कबहुं कि पशु पर्याय धरे तहां, वध बंधन भयकारी ॥
सुरगति में पर सम्पति देखे, राग उदय दुख होई ।
मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई ॥
कोई इष्ट वियोगी विलखे, कोई अनिष्ट संयोगी ।
कोई दीन दरिद्री दीखे, कोई तनका रोगी ॥
किस ही घर कलिहारी नारी, कै वैरी सम भाई ।

किसहीके दुख बाहिज दीखे, किस ही उर दुचिताई ॥

कोई पुत्र विना नित झूरे, होय मरे तब रोवे ।
खोटी संतति सों दुख उपजे, नहिं प्राणी सुख सोवे ॥

पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता ।
यह जगवास यथारथ, देखें सबही हैं दुखदाता ॥

जो संसार विषें सुख होता, तीर्थङ्कर क्यों त्यागे ।
काहे को शिवसाधन करते, संयम सों अनुरागे ॥

देह अपावन अथिर घिनावनि, इसमें सार न कोई ।
सागर के जल सों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई ॥

सप्त कुधातु भरी मल मूतर, चर्म — लपेटी सोहै ।
अन्तर देखत या सम जग में, और अपावन को है ॥

नव मलद्वार स्रवें निशिवासर, नाम लिये घिन आवे ।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावे ॥

पोषत तो दुख दोष करे अति, सोखत सुख उपजावे ।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावे ॥

राचन-जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है ।
यह तन पाय महातप कीजे, यामें सार यही है ॥

भोग बुरे भवरोग बढ़ावें, वैरी हैं जग जी के ।
बेरस होंय विपाक-समय अति, सेवत लागें नीके ॥

वज्र अगनि विषसे विषधरसे, ये अधिकें दुखदाई ।
धर्मरतन के चोर चपल अति, दुर्गति — पन्थ सहाई ॥
मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जाने ।

ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानें ॥
ज्यों ज्यों भोगसंयोग मनोहर, मनवांछित जन पावे ।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके, लहर-लोभ विष लावे ॥
मैं चक्रीपद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे ।
तौ भी तनिक भये नहिं पूरण, भोग-मनोरथ मेरे ॥
राज समाज महा अघकारण, वैर बढ़ावन हारा ।
वेश्यासम लक्ष्मी अति चंचल, इसका कौन पत्यारा ॥
मोह महारिपु वैर विचारो, जगजिय संकट डारे ।
घर कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन हैं रखवारे ॥
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी ।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥
छोड़े चौदह रत्न नवों निधि, अरु छोड़े सँग साथी ।
कोटि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीरण-तृण-सम त्यागी ।
नीति विचार नियोगी सुतको, राज दियो बड़भागी ॥
होय निशल्य अनेक नृपति सँग, भूषण वसन उतारे ।
श्रीगुरु-चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी ।
ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥
दोहा—परिग्रह पोट उतार सब, लीनो चारित-पन्थ ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ ॥

शास्त्रस्वाध्याय का प्रारम्भिक मङ्गलाचरण

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः ॥ १ ॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञान -- तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

* श्रीपरमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः *

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री......नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर — ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः, प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्रीकुन्दकुन्दाद्याम्नाये श्री......विरचितं, श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी,
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्या, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥१॥

सर्वमङ्गल--माङ्गल्यं सर्वकल्याणकारकं ।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥२॥

दशलक्षण-धर्म-पूजा

(श्री रयधू कविकृत)

उत्तम-क्षान्तिमाद्यन्त - ब्रह्मचर्य-सुलक्षणम् ।
स्थापयेद्दशधा धर्म - मुत्तमं जिनभाषितम् ॥

ओं ह्लीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्यलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ओं ह्लीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्यलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ओं ह्लीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्यलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

प्रालेय-शैल-शुचि-निर्गत-चारु-तोयैः,
शीतैः सुगन्ध-सहितैर्मुनि-चित्त-तुल्यैः ।
सम्पूजयामि दशलक्षण - धर्ममेकं,
संसार-ताप-हननाय क्षमादियुक्तम् ॥

ओं ह्लीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्यधर्मेभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् ।

श्रीचन्दनैर्बहल-कुङ्कुम-चन्द्र-मिश्रैः ।
संवास-वासित-दिशा-मुख-दिव्य-संस्थैः ॥ सम्पूज०

ओं ह्लीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माङ्गाय संसार-तापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

शालीय-शुद्ध-सरलामल-पुण्यपुञ्जैः ।
रम्यैरखण्ड-शशि-लाञ्छन-रूप-तुल्यैः ॥ सम्पूज०

ओं ह्लीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् ।

अङ्ग-पूजा

(श्री रयधू कवि विरचित)

उत्तम क्षमा धर्मः

क्रोधादि-रहितां सारां, सर्वसौख्यकरां क्षमाम् ।
पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

येन केनापि दुष्टेन, पीडितेनापि कुत्रचित् ।
क्षमा त्याज्या न भव्येन, स्वर्गमोक्षाभिलाषिणा ॥

जिस किसी दुष्ट के द्वारा भी, जो पीड़ित कहीं कदाचित हों ।
फिर भी न क्षमा त्यागें सुभव्य, जो स्वर्गमोक्ष अभिलाषी हों ॥

कहीं पर किसी समय किसी दुष्टात्मा के द्वारा सताये जाने पर भी स्वर्ग-मोक्ष के अभिलाषी भव्य-जीव को उत्तमक्षमा का परित्याग कभी नहीं करना चाहिये ।

सुर असुर-नर तथा तिर्यञ्चों कृत हर प्रकार के उपसर्गो द्वारा होने वाले दुखों को विना किसी संक्लेश भावों के सहन

करने को शक्ति को उत्तमक्षमा कहते हैं। यह क्षमा आत्मा का गुण है। इसी आत्मीक गुण को भूले रहने के कारण संसारी प्राणी चतुर्गति में भ्रमण करता फिरता है। और अनेक दुखों को उठाता है। क्षमा के विरुद्ध क्रोध आत्मीक गुण नहीं है। क्योंकि क्रोध सदा आत्मा के साथ नहीं रहता। इसलिये क्षमा का त्याग कभी नहीं करना चाहिये।

उत्तम खम मद्दउ, अज्जउ सच्चउ, पुणु सउच्च,-संजमु सुतऊ।
चाउवि आकिंचणु, भव-भय-वंचणु, वंभचेरु धम्मु जिअखऊ॥

ये उत्तमक्षमा सुमार्दव औ, आर्जव-सत-शुचि-संयम-तपवर।
शुभ त्यागाकिंचन, भव-भय-भंजन, ब्रह्मचर्य दशधर्म सु-चिर॥

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्ताम सत्य, उत्ताम शौच, उत्ताम संयम, उत्ताम तप, उत्ताम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्ताम ब्रह्मचर्य ये आत्मा के शास्वत, अविनाशी, अक्षय धर्म हैं। ये सांसारिक सभी प्रकार के भयों को दूर करने वाले हैं। भवभ्रमणरूप संसार के नाश करने वाले हैं। ये आत्मीक धर्म अनादिकाल से ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों से आच्छादित हैं। विभावरूप कर्मों के अभाव होने पर ये धर्म दिनकर की तरह प्रकट होकर अज्ञानान्धकार का नाश करते हैं। इन सव में उत्ताम विशेषण सम्यक्त्व-सहित होने के लिये दिया है।

उत्ताम-खम तिल्लोयहँ सारी, उत्तम-खम जम्मोदहि तारी।
उत्तम-खम रयणत्तयधारी, उत्तम-खम दुग्गइ-दुह-हारी॥

त्रयलोक सार उत्तामक्षम है, भवजलधि तार उत्तामक्षम है।
त्रय रत्न धार उत्तामक्षम है, दुरगति निवार उत्तमक्षम है॥

उत्तमक्षमा तीनों लोकों में सार है—सब धर्मों में सर्वोत्कृष्ट है। उत्तमक्षसा जन्म-मरणरूपी भव-सागर से तारने वाली है—पार करने देने वाली है। उत्तमक्षमा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों सारभूत रत्नों को धारण करने वाली है। अर्थात् जहां उत्तमक्षमा होती है वहां निश्चयपूर्वक रत्नत्रय होते ही हैं। और उत्तम-क्षमा दुर्गति के समस्त भयावह दुखों को हरण करने वाली है।

उत्तमखम गुणगण-सहयारी, उत्तमखम मुणिविंदपियारी।
उत्तमखम बुहयण-चिन्तामणि, उत्तमखम संपज्जइ थिरमणि॥

गुण सहचारी उत्तमक्षम है, मुनिगण प्यारी उत्तमक्षम है।
बुध चिन्तामणि उत्तमक्षम है, थिर मन उपजत उत्तमक्षम है॥

उत्तमक्षमा समस्त सद्गुण-समूह की साथिनी (सह-कारिणी) है। अर्थात् उत्तमक्षमा के प्रगट होते ही आत्मा में और अनेकानेक सद्गुण प्रगट हो जाते हैं। उत्तमक्षमा मुनीश्वर-समूह को बहुत ही प्यारी है। मोक्षाभिलाषी मुनिश्रेष्ठ इसका पालन कर मानव-जीवन को सफल मानते हैं। उत्तम-क्षमा ज्ञानी, ध्यानी, विवेकशील पुरुषों के लिये चिन्तामणि के समान है। अर्थात् उत्तमक्षमा चिन्तामणि-रत्न के समान मनचाही वस्तुओं को देने वाली है। ज्ञानीजनों को इसी उत्तम क्षमा से ज्ञानादिक की प्राप्ति होती। यह उत्तमक्षमा मन के विकारों को दूर कर चंचल चित्त के स्थिर होने पर ही प्राप्त होती है।

उत्तमखम महणिज्जसयलजणि, उत्तमखम मिच्छत्ततमोमणि।
जहिं असमत्थह दोसु खमिज्जइ, जहिं असमत्थह णउ रूसिज्जइ॥

जहिं आक्कोसणवयण सहिज्जइ, जहिं परदोसु ण जणिभासिज्जइ।
जहिं चेयणगुण चित्त धरिज्जइ, तहिं उत्तमखम जिणे कहिज्जइ॥

जग से पूजित उत्तमक्षम है, मिथ्या-तम मणि उत्तमक्षम है।
असमर्थ दोष पर क्षमा जहां, नहिं रोष रञ्च असमर्थ जहां॥
आक्रोश वचन पर क्षमा जहां, परदोष प्रगट किंचित न जहां।
चेतन गुणधारो चित्त जहां, कहें उत्तमक्षम जिनराज तहां॥

उत्तमक्षमा संसार के समस्त प्राणियों द्वारा पूज्य है। सबको इष्ट है। और यह उत्तम क्षमा मिथ्यात्वरूपी गहन अंधकार को नाश करने के लिये देदीप्यमान दिनमणि के समान है। जैसे प्रकाशमान दिनमणि से अन्धकार दूर हो जाता है उसी तरह उत्तमक्षमा से मिथ्यात्वरूपी तिमिर दूर होकर सम्यक्त्व की अपूर्व ज्योति प्रगट होती है। जहां सामर्थ्यहीन प्राणियों के दोष क्षमा किये जाते हैं। जहां असमर्थ व्यक्तियों पर क्रोध नहीं किया जाता है। जहां अभद्र, आक्रोश और कठोर दुरवचनों को सहन किया जाता है। जहां दूसरों के दोष प्रकट नहीं किये जाते हैं। तथा जहां चित्तमें आत्मा का चेतनत्व गुण धारण किया जाता है वहाँ 'उत्तमक्षमा' होती है। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इय उत्तम-खम-जुय, णर-सुर-खग-णुय, केवलणाणु लहेवि थिरू।
हुय सिद्धणिरंजणु, भवदुहभंजणु, अगणिय-रिसिपुङ्गव जिचिरू॥

नमते उत्तम क्षमयुत को नर, सुर खग थिर केवलज्ञान लहे।
हो सिद्ध निरंजन, भव-दुख भंजन, ऋषिपुङ्गव चिर सुखी रहे॥

इस प्रकार उत्तमक्षमा कर विभूषित पुण्यशाली पुरुष की मनुष्य देव विद्याधर सुर असुर आदि सभी स्तुति करते हैं और नमस्कार हैं। वह भाग्यशाली पुरुष अविचल अविनाशी केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर मुनि ऋषि-तपस्वियों में श्रेष्ठ, सांसारिक आधि-व्याधियों-विपत्तियों और दुस्तर दुःखों से विलग होता हुआ सर्व कर्म-मल-कलंक रहित अजर अमर अविनश्वर सिद्धपद को प्राप्त करता है और वहाँ अनन्तकाल तक अनन्त सुख भोगता रहता है। अतएव सब मानवों को उत्तमक्षमा सदा धारण करना चाहिये।

मार्दव-धर्म

त्यक्त-मानं सुखागारं, मार्दवं कृपयान्वितम्।
पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये॥

मानरहित, सुख का आलय (घर) और कृपा से युक्त उत्तममार्दव धर्म की उसकी प्राप्ति के हेतु मैं विनम्रता पूर्वक बड़ी भक्ति के साथ पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय फलम् निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

मृदुत्वं सर्वभूतेषु, कार्यं जीवेन सर्वदा ।
काठिन्यं त्यज्यते नित्यं, धर्म-बुद्धि विजानता ।

जो धर्मबुद्धि के अधिकारी, वे नित प्रति ही जग जीवों पर ।
मृदुता के भाव धरें उरमें, या विजय कठिन परिणामों पर ॥

धर्मबुद्धि को जानने समझने वाले भव्य जीवों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे समस्त संसारी जीवों के प्रति सर्वदा मृदुता-नम्रता तथा अत्यन्त कोमलता के भाव रखें और कठोर व्यवहार न करें अर्थात् कठिन परिणामों का हमेशा परित्याग करें।

मद्दउ भव-मद्दणु, माण-णिकंदणु, दय-धम्महु मूल जि विमलू ।
सव्वहू हिययारउ, गुण-गण-सारउ, तिसहू व उ संजम सहलू ॥

मार्दव भवहारन, मान निवारन, दयामूल जिय विमल करे ।
ये सबका हितकर सारभूत गुन, व्रत-संयम को सफल करे ॥

यह मार्दव धर्म जन्म मरण रूप, परिवर्तन-शील संसार के परिभ्रमण का नाश करने वाला है। महाविषरूप मानकषाय को सर्वथा मर्दन करने वाला है। दया-धर्म का मूल है। निर्मल है, निष्कलङ्क है। समस्त संसारी जीवों का हितकारी है। समस्त गुणसमूह में यही एक सारभूत उपादेय गुण है। इसी मार्दवधर्म के प्रगट होते समस्त व्रत-तप-संयम सफल होते हैं।

मद्दउ माण-कसाय-विहंडणु, मद्दउ पंचिंदिय-मण-दण्डणु ।
मद्दउ धम्मे करुणा-वल्ली, पसरइ चित्त-महीहि ण वल्ली ॥

मार्दवगुण मान कषाय हरे, मार्दव इन्द्रिय मन दमन करे ।
मार्दव से दयाबेल बिखरे, भवि की चित्त पृथ्वी में प्रसरे ॥

मार्दवधर्म मानकषाय को—अहंकारी के अहंकार को नाश करने वाला है। मार्दवधर्म ही स्पर्शनादिक पांचों इन्द्रियों और चंचल मनको निग्रह करने वाला है। मार्दवधर्म करुणा-रूपी नवीन वल्लरी (लता) है, जो मानव के चित्तरूपी पृथ्वी पर पसरती हुई फैलती रहती है।

अभिमानी पुरुष का दिल पाषाण से भी अधिक कठोर होता है और जहां कठोरता होती है वहां दया का दरिया कदापि प्रवाहित नहीं हो सकता। दया—करुणा अहिंसाधर्म का कारण है और करुणा मार्दवधम से हो उत्पन्न होती है।

मद्दउ जिणवर-भत्ति पयासइ, मद्दउ कुमइ-पसरु णिएणासइ।
मद्वेण बहुविणय पवट्टइ, मद्वेण जणवइरु उहट्टइ ॥

मार्दव जिनभक्ति प्रकाश करे, मार्दव कुबुद्धि का नाश करे।
मार्दव बहुविनय-विकाश करे, मार्दव जिय वैर—विनाश करे ॥

आत्मा में मार्दवधर्म के प्रगट होते ही वीतराग जिनेन्द्र देव के प्रति प्रगाढ़ भक्ति का प्रकाश फैलने लगता है। मार्दव धर्म मिथ्यामति-कुमति और कुबुद्धि के बढ़ते हुए प्रसार (विस्तार) को रोकता है, नाश करता है। मार्दवधर्म से ही रत्नत्रय के प्रति विनम्रता के भाव अधिकाधिक रूप में बढ़ते हैं और इसी मार्दवधर्म से संसार में सब तरह की वैमनस्यता दूर हो जाती है। अर्थात् वैरी वैर को छोड़ देते हैं।

मद्वेण परिणाम—विसुद्धी, मद्वेण विहु लोयह सिद्धी।
मद्वेण दो—विहु तउ सोहइ, मद्वेण णरु तिजगु विमोहइ ॥

मार्दव से हैं भाव विशोधित, मार्दव से दुहु लोक संयोजित।
दुह विध तप शोधित मार्दव से, नर तिंहुजग मोहित मार्दव से।

मार्दवधर्म से आत्मा के परिणामों में अत्यन्त निर्मलता आती है—उज्ज्वलता बढ़ती है। मार्दवधर्म से हुए भावों की विशुद्धता से इस भव और परभव सम्बन्धी सभी कार्यों की सिद्धि होती है। मार्दवधर्म से अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग दोनों प्रकार के तप शोभा को प्राप्त होते हैं। और मार्दवधर्म से मनुष्य त्रिभुवन को सम्मोहित कर लेता है। अर्थात् सभी प्राणी प्रीति-भाव रखने लगते हैं।

मद्दउ जिण-सासण जाणिज्जइ, अप्पा-पर-सरूव भाविज्जइ।
मद्दउ दोस असेस णिवारइ, मद्दउ जम्म-उअहि उत्तारइ॥

जिनशासन ही जाने मार्दव, है स्वपररूप भावे मार्दव।
सब दोष निवारे ये मार्दव, जन्मोदधि से तारे मार्दव॥

मार्दवधर्म से ही मानव को जिनवरेन्द्र के अभूतपूर्व शासन का सद्ज्ञान तथा अपने और पराये स्वरूप का अनुभव होता है। मार्दव (मृदुता) से ही समस्त दोषों का विनाश होता है। तथा मार्दवधर्म ही प्राणियों को जन्म-मरण रूप संसार-समुद्र से पार कर देता है।

सम्मद्दंसण-अंगु, मद्दउ परिणामु जि मुणहु।
इय परियाणि विचित्त, मद्दउ धम्मु अमल थुणहु॥

मार्दव है निज परिणाम सही, सम्यग्दर्शन वर अंग यही।
इससे परिव्याप्त रहे चित ही, वृति करिये मार्दव की नित ही॥

हे भव्यात्मन्! यह मार्दवधर्म आत्मा का परिणाम है रूपान्तर है—अर्थात् आत्मा के विकास की पराकाष्ठा है। और सम्यग्दर्शन का अङ्ग है। ऐसा मानकर निर्मल और अद्भुत मार्दवधर्म की स्तुति करो तथा इसे अपने चित्त में धारण करो।

आर्जव धर्म

आर्जवं स्वर्ग–सोपानं कौटिल्यादिविवर्जितम् ।

पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये ॥

आर्जवधर्म स्वर्ग का सोपान है और कुटिलता-छल-कपटता से रहित है। आजर्वधर्म की प्राप्ति के लिए बड़ी विभूति के साथ मैं भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करता हूं।

ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उतमार्जवधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तामार्जवधर्माङ्गाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तामार्जवधर्माङ्गाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तामार्जवधर्माङ्गाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तामार्जवधर्माङ्गाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तामार्जवधर्माङ्गाय फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तामार्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

आर्जवं क्रियते सम्यक्, दुष्टबुद्धिश्च त्यज्यते ।

पाप-चिन्ता न कर्त्तव्या, श्रावकैर्धर्मचिन्तकैः ॥

हे वृषचिन्तक ! श्रावकजन ओ ! परिणाम सरल रक्खे मन जो ।
दुष्कृत चिन्तन कर्त्तव्य न हो, दुरमति-हर आर्जव प्रतिक्षण हो ॥

धर्म के स्वरूप का बारम्बार चिन्तन-स्मरण करने वाले श्रावकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने परिणाम सदा निर्मल वा निश्च्छल रक्खें और दुष्टतापूर्ण दुर्बुद्धि का परित्याग करें तथा आत्मा को शुभ कार्यों से रोकने वाले पापरूप कार्यों का चिन्तवन कभी भी नहीं करें। यही उत्ताम आर्जवधर्म है।

धम्महु वर-लक्खणु; अज्जउ थिरमणु, दुरिय-विहंडणु सुहजणणु।
तं इत्थ जि किज्जइ, तं पालिज्जइ, तं णि सुणिज्जइ, खय-जणणु॥

आर्जव वर वृप लक्षण कहिये, अघहर सुखकर थिर मन पइये।
इस प्राप्तिहेतु तत्पर रहिये, सुनिये आचरिये अघ हरिये॥

आर्जव धर्म का सर्वश्रेष्ठ लक्षण है। धर्म की पहिचान आर्जव से ही होती है। कपट का अभाव होकर जहां सरल-निर्मल भाव हो, मन-वचन-काय- का सरल छलछिद्ररहित वर्तात्र हो, इसी को आर्जव कहते हैं। यह चंचल मन को स्थिर करने वाला है। समस्त पापों का विनाशक है और सुखों को उत्पन्न करने वाला है। यह पापों का क्षय करने वाला है इसलिए हे भव्यात्मन्! इसे इस भव में आचारण में लाओ, इसी का पालन करो और इसी का श्रवण करो।

जारि सुणिज्जइ-चिंति चिंतिज्जइ, तारिसु अण्णहं पुणि भासिज्जइ।
किज्जइ पुणु तारिसु, सुहं संचणु, तं अज्जउ गुण मुणहु अवंचणु॥

जिस विधि निजचित चितन करते, उसविधि उच्चरते आचरते।
इसविधि संचित कर सकते, इसको अवंच आर्जव कहते॥

धर्म का स्वरूप जैसा श्रवण किया हो, वैसा ही आत्मा में चिन्तवन करना और जैसा चिन्तवन किया हो दूसरों से वैसा ही कहना तथा स्वयं तदनुरूप आचारण करना, इसी को 'आर्जवधर्म' कहते हैं। यही सुखों का संचय कराने वाला है। वंचकता (कुटिलता) का त्याग ही 'आर्जव धर्म' है।

माया-सल्लु, मणहु णिस्सारहु, अज्जउ धम्मु, पवित्त वियारहु।
वउ तउ मायावियहु णिरत्थउ, अज्जउ सिवपुर-पंथहु सत्थउ॥

कर दूर शल्य माया भाई, उत्तम आर्जव धर सुखदाई।
व्रत-तप व्यर्थ करे कपटाई, आर्जव शिवपुर पन्थ सहाई॥

भो भव्यजन! अपने चंचल-चित्त से अत्यन्त कुटिलता रूप मायाशल्य निकालकर इस उज्ज्वल पवित्र (आजर्व धर्म का विचार करो। मायाचारी अर्थात् छल-कपट करने वाले पुरुष के व्रत-तप-संयम आदि निरर्थक हैं। यह 'आर्जव धर्म' शिवपुर का प्रशस्त मार्ग है।

जत्थ कुटिल परिणामु चइज्जइ, तहिं अज्जउ धम्मु जि संपज्जइ।
दंसण-णाण सरूव अखंडउ, परम-अतिंदिय सुक्ख-करंडउ॥

जो कुटिल भाव विच्छिन्न करे, वो आर्जव वृप उत्पन्न करे।
निज दर्शन ज्ञान अखण्ड धरे, सु अतीन्द्रिय सुक्ख करण्ड भरे॥

जिस आत्मा में वक्र (कुटिल) परिणामों का परित्याग किया जाता है उसी आत्मा में आर्जवधर्म का आविर्भाव होता है। अर्थात् टेड़े-मेड़े-छल-कपटपूर्ण कुटिल परिणामों का त्याग करना ही 'आर्जवधर्म' है। यह अखण्ड दर्शन और ज्ञानरूप है। तथा परम (उत्कृष्ट) अतीन्द्रिय सुख का पिटारा है।

अप्पिं अप्पउ भवहु तरंडउ, एरिसु चेयण-भाव पयंडउ।
सो पुणु अज्जउ धम्मे लब्भइ, अज्जवेण वइरिय-मणु खुब्भइ॥

है भवतरण्ड नौका निज से, निज के पवित्त ही भावन से।
ये भाव उपजते आर्जव से, हो जाय द्रवित वैरी जिससे॥

जो स्वयं ही आत्मा को संसार-समुद्र से उबारने वाला है। इस प्रकार समस्त कषायों से रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन ज्ञान स्वरूप अविनाशी अतीन्द्रिय परम सुखरूप आत्मा में जो इस

चैतन्य के ऐसे प्रचण्ड भाव पैदा होते हैं, यह सब आर्जवधर्म से ही होता है। इसी परम आर्जवधर्म के कारण शत्रु का मन भी क्षुब्ध हो जाता है। वह वैर-भाव को त्याग देता है।

अज्जउ परमप्पउ, गय-संकप्पउ चिम्मत्तु जि सासउ अभऊ।
तं णिरु झाइज्जइ, संसउ हिज्जइ, पाविज्जइ जिहिं अचल-पऊ॥

निश्चय असंग अविकल्प अभै, शाश्वत परमातम आर्जव है।
इसको संशय तज ध्याते जो, वो अविचल-पद को पाते हैं॥

आर्जवधर्म निश्चयपूर्वक परमात्मस्वरूप आत्मा का सच्चा साथी है। सदा बना रहने वाला शाश्वत है। सप्त भय रहित (निर्भय) है। भव्यजनों को ऐसे 'आर्जवधर्म' का सन्देह रहित सदा ध्यान करना चाहिये। इसके निरन्तर ध्यान करने से अविनाशी मोक्ष-पद की प्राप्ति होती है।

शौच धर्म

शौचं लोभ-विनिर्मुक्तं, मुक्ति-श्री-चित्त-रञ्जकम्।
पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये॥

लोभ-लालच से रहित और मुक्तिरमा के चित्त को अनुरक्त-आनन्दित करनेवाले शौचधर्म की मैं उसकी प्राप्ति के हेतु भक्तिपूर्वक अलौकिक विभूति के साथ उपासना करता हूं।

ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय फलम् निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

बाह्यमाभ्यन्तरं चापि, मनोवाक्कायशुद्धिभिः ।
शुचित्वेन सदा भाव्यं, पापभीतैः सुश्रावकैः ॥

भय-भीत पाप से श्रावक जन, रख के पवित्र निज मन-वच-तन ।
बाह्याभ्यन्तर शुचि कर चेतन, ये उत्तम शौचधर्म वरनन ॥

इस लोक में बुरे माने जाने वाले और परलोक में अशुभ फल देने वाले जितने भी पाप हैं उन समस्त पापों से जो बड़भागी महाश्रावक अत्यन्त भयभीत हैं उनको मन वचन काय की शुद्धतापूर्वक बाह्य शरीरादिक तथा आभ्यन्तर आत्मा को सदा उज्ज्वल और पवित्र रखना चाहिये । यह शौचधर्म हमेशा चिन्तनीय है ।

सउच जि धम्मंगउ तं जि अभंगउ, भिण्णंगउ उवओगमऊ ।
जरमरणविणासणु, तिजगपयासणु, झाइज्जइ अहणिसि निधुऊ ॥

सुचिधर्म अङ्ग उपयोगरूप, तन से ये भिन्न अभङ्ग खरो ।
जरमरणविनाशक त्रिजगप्रकाशक, निश्चय अहनिशि ध्यान धरो ॥

भावों की विशुद्धि का होना ही शौच है । शौचधर्म धर्म का एक अंग है । वह अभंग है । शरीर से सर्वथा भिन्न है । ज्ञान दर्शनरूप उपयोगमय है । जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक है । तीन लोक को आलोकित करनेवाला है और स्थिर है—ध्रुव है । इसलिये शौचधर्म का निश्चयरूप से निरन्तर ध्यान करो ।

धम्मसउच्चु, होइ मणसुद्धिएँ, धम्मसउच्च, वयण-धणगिद्धिएँ।
धम्मसउच्चु, कसाय अहावे, धम्मसउच्चु, ण लिप्पइ पावे॥

मन की शुद्धी में वर शुचि है, जिनवचवृद्धी में वर शुचि है।
ये कषाय उन्मूलन शुचि है, शोभित पाप-पङ्क विन शुचि है॥

शौचधर्म मन की पवित्रता (उज्ज्वलता) से होता है। शौचधर्म सत्यदेव द्वारा प्रतिपादित जिनागम के वचन-धन को गृद्धतापूर्वक संग्रह करने से होता है। शौचधर्म क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायों के अभाव से होता है। और यह शौचधर्म मानव को पापरूपी पङ्क से लिप्त नहीं होने देता।

धम्मसउच्चु, लोहु वज्जंतउ, धम्मसउच्चु, सुतवपहि जंतउ।
धम्मसउच्चु, बंभवयधारणि, धम्मसउच्चु, मयट्ठ-णिवारणि॥

औ लोभ हीन में वर शुचि है, शुभ तप तपने में वर शुचि है।
मन ब्रह्मचर्य में वर शुचि है, मद आठ हरण में वर शुचि है॥

यह शौचधर्म उसी के होता है जिसने लोभ कषाय का त्याग कर दिया है। शौचधर्म मानव को श्रेष्ठ तप के मार्ग पर अग्रसर करता है। शौचधर्म ब्रह्मचर्य के धारण करने से होता है। तथा ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर के मद न करने से अर्थात् आठ मदों का निवारण करने से 'शौचधर्म' होता है।

धम्मसउच्चु, जिणायम-भणणे, धम्मसउच्चु, सगुण-अणुमणणे।
धम्मसउच्चु, सल्ल-कय-चाए, धम्मसउच्चु, जि णिम्मलभाए॥

जिनश्रुत प्रवचन में वर शुचि है, सद्गुण सु मननमें वर शुचि है।
ये वृषशल्यहनन वर शुचि है, सम्यक्सद्भावसृजन वर शुचि है॥

शौचधर्म जिनागम के कथन करने से होता है। शौचधर्म आत्मा के उत्तमोत्तम गुणों के मनन व विचार करने से होता है। शौचधर्म माया (छल-कपट) मिथ्यात्व (अतत्त्व श्रद्धान) निदान (आगामी काल में भोगों की इच्छा) इन तीन शल्यों के त्याग करने से होता है। और शौचधर्म आत्मा के भावों को निर्मल बनाये रखने से होता है।

अहवा जिणवरपुज्जविहाणे, णिम्मल-फासुय-जल-कय-एहाणे।
तंपि सउच्च गिहत्थहं भासिउ, णवि मुणिविरहंकहिउ लोयासिउ॥

अथवा जिन अर्चा विधान ये, निर्मल प्रासुक जलन्हान ये।
शुचि गृहस्थ का धर्म मान ये, नहिं ऋषिन्हन करें प्रमान ये॥

निश्चय शौच का कथन करने के उपरान्त अब लोकप्रचलित शौच को कहते हैं, कि:—

अथवा जिनेन्द्रदेव की विधिपूर्वक पूजार्चन करने से और स्वच्छ-प्रासुक जल--स्नान करने से शौचधर्म होता है, किन्तु यह लोकप्रचलित स्नानादिक शौचधर्म गृहस्थों के लिए ही कहा गया है—दिगम्बर मुनियों के लिये नहीं।

भव मुणिवि अणिच्चउ, धम्म सउच्चउ पालिज्जइ एयग्गमणी।
सुहमग्गसहायउ सिवपयदायउ, अण्णु म चिंतह किंपि खणं॥

जयअथिरसमझमन थिरकरिये, शिवदायकवरशुचि आचरिये।
शुचिपथसहाय ये सरदहिये, क्षण भी परचिंतन परिहरिये॥

इस संसार को असार और अनित्य जानकर एकचित्त से इस महान शौचधर्म का पालन करना चाहिये। यह शाश्वत सुख के मार्ग का सहायक है और निर्वाण-पद को देनेवाला है। इसलिये इसको छोड़कर अन्य किसी का पल मात्र के लिये चिन्तवन मत करो।

ओं ह्रीं उत्तम शौचधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यम्।

सत्य धर्म

असत्य-दूरगं सत्यं; वाच्यं सर्व-हितावहम् ।
पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये ॥

असत्य से रहित और सबका हित करने वाले सत्य-वचन की मैं उसकी प्राप्ति के लिए विनम्रतापूर्वक भक्तिसहित बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

असत्यं सर्वथा त्याज्यं, दुष्ट-वाक्यं च सर्वदा ।
परनिन्दा न कर्त्तव्या, भव्येनापि च सर्वदा ॥

भो भवि ! उत्तम सतधर्म यथा, यों झूठ वचन मत कहो कदा ।
परनिन्दा नहिं कर्तव्य तथा, मन ! दुष्ट वचन परिहरो सदा ॥

अप्रिय-असत्य वचन बोलने का और कटुतापूर्ण गाली गलीज आदि दुष्टवचनों का सब प्रकार से सदा त्याग करना

चाहिये तथा दूसरों को निन्दा करने का भी त्याग करना चाहिये । यही परम 'सत्य-धर्म' है ।

दय-धम्मह कारणु, दोस-णिवारणु, इहभवि परभवि सुक्खयरू।
सच्चु चि वयणुल्लउ, भुवणि अतुल्लउ, बोलिज्जइ वीसासधरू ॥

दयाधर्म का मूल सत्य ही, अघहर औ दुहुभव सुख करही ।
जगतश्रेष्ठ विश्वास वास ही, तुलना रहित कहो वच सत ही ॥

सत्यधर्म दया का मूल स्रोत है और समस्त अपराधों का नाश करने वाला है । इस भव में और परभव में सुख को देने वाला है । वचनों में उत्कृष्ट वचन सत्य-वचन ही है । तीन लोक में सत्यवचन अतुलनीय है—अर्थात् इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता । सत्यवचन प्रगाढ़ विश्वास का मन्दिर है । इसे विश्वासपूर्वक निःसंकोच बोलना चाहिये ।

सच्चु जि सव्वइ धम्मह पहाणु, सच्चु जि महियलि गरुउ विहाणु।
सच्चु जि संसार-समुद्द-सेउ, सच्चु जि सव्वएं मणसुक्खहेउ ॥

सब धर्मों में प्रधान सत है, भू-पर भारी विधान सत है ।
भव-जल को तरणसेतु सत है, सब जग के सुक्खहेतु सत है ॥

सत्यधर्म संसार के समस्त धर्मों में प्रधान धर्म है । सत्यधर्म समस्त भूमण्डल में सबसे बड़ा विधान है—एक सुन्दर उत्तम व्यवस्था है । सत्यधर्म निश्चय से संसार-समुद्र से पार उतरने का कारण है और सत्यधर्म सब जीवों के मन में सुख उत्पन्न करने का हेतु है ।

सच्चेण जि सोहइ मणुव-जम्मु, सच्चेण पवत्तउ पुण्णकम्मु।
सच्चेण सयल गुणगण महंति, सच्चेण तियस सेवा वहंति॥

ये मनुजजन्म शोभित सत से, हो पुण्यकर्म संचित सत से।
है गुण समस्त पूजित सत से, सुर द्वारा वन्दित भवि सत से॥

सत्य मानवजीवन का सुन्दर भूषण है। इसी सत्य से वह शोभा पाता है। सत्य से ही पवित्र पुण्य कार्यों की ओर झुकाव बढ़ता है। सत्य से आत्मा के अन्य समस्त गुणों का समुदाय महानता को प्राप्त होता है। अर्थात् सत्यधर्म से अन्य समस्त गुणों की महत्ता बढ़ती है और इसी सत्यधर्म के प्रभाव से स्वर्गों में निवास करने वाले देवता भी सत्यमानव की सेवा करना स्वीकार करते हैं।

सच्चेण अणुव्वय-महवयाइ, सच्चेण विणासइ आवयाइ।
हिय-मियभासिज्जइ णिच्चभास, ण वि भासिज्जइ परदुहपयास॥

अणुव्रत महव्रत पाले सत से, आपत्ति विनाशे सब सत से।
बोलो परमित हित वचन सभी, परदुखकारक बोलो न कभी॥

सत्यधर्म से अणुव्रत और महाव्रत प्राप्त होते हैं। सत्य-धर्म से ही सब तरह की आपदाएँ नष्ट होती हैं। इस प्रकार निश्चय सत्यधर्म का वर्णन किया अब व्यवहार सत्यधर्म का स्वरूप कथन करते हैं:—

भो भव्यजीवो! हमेशा हितरूप, प्रिय और परिमित वचन बोलना चाहिये। जिन वचनों से दूसरों को पीड़ा पहुंचे ऐसे असत्य-दुर्वचन कभी नहीं बोलना चाहिये।

परबाहायरु भासहु म भव्वु, सच्चु जि तं छंडहु विगयगव्वु।
सच्चु जिपरमप्पउ अत्थिइक्कु, सोभावहु भवतमदलणअक्कु॥

बोलो जिय ! मत बाधाकर भी, सत बोलो छोड़ो मान अभी।
है सत-रवि-भव-तम दलने को, भज सत परमातम बनने को ॥

हे भव्यात्मन् ! दूसरों को किसी भी तरह की बाधा या पीड़ा पहुंचाने वाले वचन कभी मत बोलो। यदि वह सत्यतापूर्ण भी हो तो उसे गर्वरहित होकर त्याग दो। केवल सत्य ही एकमात्र परमात्मा है वह संसाररूप गहन-अन्धकार को विघटन करने के लिये सूर्य के समान प्रतापशाली है। उसका अहर्निश आराधन करो।

लंभिज्जइ मुणिणा वयण-गुत्ति, जं खणि फिट्टइ संसारअत्ति।

मन-वच-तन गुप्ति सुधरने को, है सत समर्थ दुख हरने को।

साधुसमूह सत्यधर्म के लिये वचनगुप्ति का आश्रय करते हैं। मन-वचन काय की हलन चलन रूप क्रियाओं को रोकना अर्थात् उनको वश में करना गुप्ति है। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति का पालन करना भी सत्यधर्म है। यह गुप्तिरूप सत्यधर्म संसार की समस्त पीड़ाओं का क्षणमात्र में अन्त कर देता है। इसे निश्चयात्मक सत्य का स्वरूप जानकर मानो।

सच्चु जि धम्म-फलेण, केवलणाणु लहेइ जणू।
तं पालहु भो भव्व भणहु, म अलियउ इह वयणू॥

हे भवि ! सत्यधर्म फल जानो, "केवलज्ञान लहे" सरधानो।
अतः सदा सतवचन प्रमानो, मिथ्यावचन कभी न बखानो ॥

साधुपुरुष इस महान सत्यधर्म के फलस्वरूप से सर्वदर्शी केवलज्ञान को निश्चयसे प्राप्त करते हैं। हे भव्य ! सत्यधर्म का पालन करो और मिथ्या-वचन कभी मत बोलो।

ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यम्।

संयम-धर्म

दयाढ्यं संयमं मुक्ती-कर्तारं स्वेच्छयातिगम् ।
पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये ॥

निर्वाणपद के प्रदाता और स्वेच्छा से प्राप्त दया से परिपूर्ण 'संयमधर्म' की मैं उसकी उपलब्धि के लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूं ।

ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

संयमं द्विविधं लोके, कथितं मुनिपुङ्गवैः ।
पालनीयं पुनश्चित्ते, भव्यजीवेन सर्वदा ॥

मुनिपुंगव गणधरादि उत्तम, संयम विधि कहते हैं सुगमम ।
पालें सदैव भवि जीव स्वयम्, करके अपने परिणाम प्रशम ॥

सं अर्थात् भले प्रकार, यम अर्थात् नियम (प्रतिज्ञा) करना तथा अपने को वश में रखना संयम है । इस संयम को साधु परमेष्ठियों में श्रेष्ठ श्री अरिहन्त देव ने दो प्रकार का कहा है । एक इन्द्रिय (वाह्य) संयम और दूसरा प्राण (आभ्यन्तर)

संयम। मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को अपने चित्त में दोनों प्रकार का संयम सदा पालना चाहिये।

संजमु जणि दुल्लहु, तं पाविल्लहु, जो छंडइ पुणु मूढमई।
सो भमइ भवावलि, जर-मरणावलि किं पावेसइ पुणु सुगई॥

दुर्लभ उत्तम संयम पाकर, महामूर्ख जो इसे त्याग कर!
संयम विन भवभ्रमण सहे नर, भला सुगति फिर पावे क्यों कर॥

संसार में संयमधर्म की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। अनमोल संयम को पाकर जो उसे छोड़ देता है वह मन्दमति महामूर्ख है। और इसीलिए वह जन्म-मरण-रूपसंसार की अनेक आपदापूर्ण योनियों में चिरकाल तक कष्ट झेलता हुआ घूमता रहता है। फिर भला संयमरहित मूढ़ पुरुष को संसार परिभ्रमण करते हुए उत्तम गति कैसे मिल सकती है? कदापि नहीं। इसलिए धर्मप्रवर्त्तक तीर्थङ्करों ने हमेशा यही उपदेश दिया है कि संयम को पाकर उसे फिर कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

संजमु पंचिंदियदंडणेण, संजमु, जि कसायविहंडणेण।
संजमु दुद्धरतवधारणेण, संजमु रसचायवियारणेण॥

पंचेन्द्रियदण्डन संयम है, स्वकषायविहण्डन संयम है।
दुद्धरतपधारण संयम है, रसत्यागविचारण संयम है॥

यह महान संयमधर्म पांचों इन्द्रियों के विषय को वशीभूत करने से होता है। संयमधर्म क्रोध-मान-माया-लोभ इन चारों दुखप्रद कषायों के निग्रह (अवरोध) करने से होता है। संयमधर्म अत्यन्त कठिनता से धारण किये जाने वाले दुर्द्धर तप के धारण करने से होता है और यह संयमधर्म छह प्रकार के रसों के त्याग का वार वार विचार करने से होता है।

संजमु उववास-विजंभरगेण, संजमु मण-पसरहथंभरगेण।
संजमु गुरुकायकिलेसरगेण, संजमु परिगहगहचायरगेण॥

व्रत उपवास किये संयम है, मनको रोक दिये संयम है।
कायकलेश किये संयम है, परिग्रहत्याग किये संयम हे

संयमधर्म वेला-तेला आदि उपवासों के वढ़ाने से होता है संयमधर्म अत्यन्त चंचल चित्त के प्रसार को रोकने से होता है। संयमधर्म कठिन तपश्चरण से होने वाले कायक्लेश को सहन करने से होता है और यह सात्विक संयमधर्म परिग्रह में वढ़ती हुई लिप्सा को त्याग करने से होता है। विना परिग्रह के त्याग के संयम नहीं होता।

संजमु तसथावररक्खरगेण, संजमु तियजोयणियंतरगेण
संजमु सत्तत्थपरिक्खरगेण, संजमु वहुगमणु चयंतएण॥

त्रस थावर-रक्षण संयम है, त्रययोग-नियन्त्रण संयम है।
सूत्रार्थपरीक्षण संयम है, वहुगमन-निवारण संयम है॥

संयमधर्म त्रस-स्थावर जीवों की सुरक्षा से होता है। संयमधर्म मन-वचन और काय इन तीन योगों के नियन्त्रण से होता है। संयमधर्म जैन-शासन के सूत्रों के अर्थ की परीक्षा करने, पठन-पाठन, मनन और वारम्वार विवेचन करने से होता है, व्यर्थ-वहुत गमन का त्याग करने और सीमित गमन करने से भी संयमधर्म होता है।

संजमु अणुकंप कुणंतरगेण, संजमु परमत्थ-वियाररगेण।
संजमु पोसइ दंसणहपंथु, संजमु णिच्छय णिरु मोक्खपंथु॥

अनुकम्पा-धारण संयम है, परमार्थ-विचारण संयम है।
सम्यक्त्व-सु-पोषक संयम है, निश्चय-शिव-मारग संयम है॥

संसारी जीवों के प्रति दया (करुणा, अनुकम्पा) के भाव रखने से संयमधर्म होता है। परमार्थ की बारबार भावना करने से अर्थात् दूसरों के उपकार का निरन्तर विचार करने से संयमधर्म होता है। संयमधर्म सम्यग्दर्शन के मार्ग को मजबूत करता है और संयमधर्म नियम से एकमात्र निर्वाण का मार्ग है।

संजमुविणु, णरभवसयलु सुण्णु, संजमुविणु, दुग्गइजि उववण्णु।
संजमुविणु, घडियमइत्थजाउ, संजमुविणु, विहलियअत्थि आउ॥

संयम विन मानवता निष्फल, संयम विन है देवत्व विफल।
संयम विन एकहु पल न जाय, संयम बिन निष्फल कहा काय॥

संयम के बिना मानव-पर्याय शून्य के समान (व्यर्थ) है। संयम का पालन मनुष्य-भव में हो संभव है। इसीलिये संयम धारण करने के लिए ऊर्ध्वलोक के देव-देवेन्द्र तक मनुष्यपर्याय पाने की कामना करते हैं। जिसने मनुष्यभव पाकर संयम-धारण नहीं किया उसका नर-देह पाना ही व्यर्थ है। संयम के विना यह जीव दुर्गति में जन्म लेता है। इसलिये संयम के विना एक घड़ी भी व्यर्थ मत जाने दो क्योंकि संयम के विना सम्पूर्ण जीवन विफल है।

इह-भवि पर-भवि, संजम सरणु, हुज्जउ जिणणाहे भणिऊ।
दुग्गइ-सर-सोसण-खर-किरणोवम, जेण भवालि विसमु हणिऊ॥

संयम ऐसा जिननाथ कही, इहभव परभव में शरण सही ।
संयम-रवि भवदुख - घात कही, दुर्गति सरशोषण - हेतु यही ॥

'जीव को इस लोक और परलोक में एकमात्र संयम ही शरण हो सकता है ।' ऐसा जिनवरेन्द्रदेव ने कहा है । क्योंकि दुर्गतिरूप–सरोवर को सोखने के लिए संयम ही तेज़ किरणों वाले सूर्य के समान है । संयम से ही विषम भव-भ्रमण का विनाश होता है ।

ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यम् ।

—o—

तप-धर्म

कामेन्द्रियदमं सारं, तपः कर्मारिनाशनम् ।
पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये ॥

कामेन्द्रिय का दमन करनेवाले सारभूत और कर्म-शत्रु का नाश करने वाले तपोधर्म की मैं उसकी प्राप्ति के लिये भक्तिपूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूं ।

ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय चंदनम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

द्वादशं द्विविधं चैव, बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
स्वयं शक्तिप्रमाणेन, क्रियते मर्मवेदिभिः ॥

उत्तम तप द्वादशविध लखकर, भेद प्रमानो बाह्याभ्मन्तर ।
भवि ! धर्मज्ञ ! सुदृढ़ श्रद्धाकर, शक्तिप्रमाण तपो तप स्थिर ॥

जो कष्टकर धार्मिक कार्य चंचल चित्त को भोग-विलास से हटाने के लिये किये जाते हैं उन्हें तप कहते हैं । शरीर और इन्द्रियों को वश में रखने के लिये तप किया जाता है । यह तप बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है । तथा आभ्यन्तर के छह और बाह्य के छह इस तरह मिलाकर तपके बारह भेद आचार्यों ने बतलाये हैं । धर्मज्ञ भव्यपुरुषों को अपनी शक्ति के अनुसार यह तप अवश्य करना चाहिये ।

णर-भव पावेप्पिणु, तच्चमुणेप्पिणु,खंचिवि पंचिंदिय समणू ।
णिव्वेउ पमंडिवि, संगइ छंडिवि, तउ किज्जइ जाएवि वणू ॥

ज्ञान जगाओ नरतन पाकर, पञ्चेन्द्रिय मन वश में लाकर ।
परिग्रह तजि वनवास निभाकर, उत्तमतपमें ध्यान लगाकर ॥

सर्वश्रेष्ठ मनुष्य-पर्याय को प्राप्त कर सात-तत्व और नौ पदार्थों का अध्ययन कर उनका ज्ञान हृदयङ्गत करना चाहिये । पश्चात् मन के साथ पांचों इन्द्रियों के व्यापार को रोककर वैराग्य धारण कर सब प्रकार के परिग्रह को त्यागना चाहिये और तदुपरान्त वनके एकान्त में जाकर यह उत्तमतप करना चाहिये ।

तं तउ जहिं परिगहु छंडिज्जइ,तं तउ जहिं मयणु जि खंडिज्जइ ।
तं तउ जहिं णग्गत्तणु दीसइ,तं तउ जहिं गिरिकंदरि णिवसइ ॥

उत्तमतप परिग्रह त्याग जहां, उत्तमतप कामविनाश जहां ।
उत्तमतप नगन सु भेष जहाँ, उत्तमतप गिरि आवास जहां ॥

तप वहां होता है जहां चौदह प्रकार का अन्तरङ्ग परिग्रह और दस प्रकार का वहिरङ्ग परिग्रह का त्याग कर दिया जाता है। तप वहां होता है जहां स्त्री-पुरुष के संयोग की प्रेरणा करने वाले कामदेव को वशीभूत कर लिया जाता है। तप वहां होता है जहां साक्षात् परम दिगम्बररूप दिखाई देता है और तप वहां होता है जहां वीहड़ जंगलों और गिरि-कन्दराओं में निवास किया जाता है ।

तं तउ जहिं उवसग्ग सहिज्जइ, तं तउ जहिं रयाइ जिणिज्जइ ।
तंतउ जहिं भिक्खइ भुंजिज्जइ, सावहगेहकालि णिवसिज्जइ ॥

उत्तमतप उपसर्ग सहन है उत्तमतप रागादि-हनन है ।
उत्तमतप जहँ नियत समय है, श्रावकगृह-शुचि-अशन-ग्रहण है ॥

तप वहां होता है जहां सुर, असुर, मानव, पशु या किसी अचेतन पदार्थ कृत उपसर्ग सहन किया जाता है । तप वहाँ होता है जहां रागद्वेषादिक विभाव परिणामों को जीता जाता है और तप वहां होता है जहां योग्यकाल में श्रद्धावान् श्रावक के घर गृहस्वामी द्वारा पड़गाहने पर प्रवेश कर भिक्षा-पूर्वक निरन्तराय शुद्ध प्रासुक भोजन किया जाता है ।

तं तउ जत्थ समिदि-परिपालणु, तं तउ गुत्तित्तयहं णिहालणु ।
तंतउ जहिंअप्पापरुबुज्भिऊ, तं तउजहिं भवमाणुजिउज्झिऊ ॥

तप तहँ पंच समितिपरिपालन, तपतहँजहँ त्रयगुप्तिसुधारण ।
तप तहँ निजपरभेदपरीक्षण, तप कारण मानादिविदारण ॥

तप वहां होता है जहां यत्नाचारपूर्वक ईर्य्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण तथा उत्सर्ग समितियों का भले प्रकार से पालन किया जाता है। तप वहां होता है जहाँ मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति का सम्यक् प्रकार पालन किया जाता है। तप वहां होता है जहां अपने और दूसरे के स्वरूप का अर्थात आत्मा और आत्मा से भिन्न शरीरादिक पर पदार्थों की श्रद्धा होती है और तप वहां होता है जहां संसार को वढ़ाने वाले अहंकार छल-कपट-क्रोध लोभादिक का परित्याग किया जाता है।

तं तउजहिं समरूव मुणिज्जइ, तं तउजहिं कम्महगणु खिज्जइ।
तंतउ जहिं सुरभत्ति पयासइ, पवयणत्थ भवियणह पभासइ॥

निजरूप विकाश जहां तप है, विधिगण सव नाश जहां तप है।
करते सुर विनय तहां तप है, भविहित श्रुत अर्थ कहें तप है॥

तप वहां होता है जहां केवल अपने आत्मस्वरूप का मनन-चिन्तन किया जाता है। तप वहां होता है जहां आत्मा की असलियत को प्रगट न होने देने वाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय इन आठ कर्मों का नाश किया जाता है। तप वहां होता है जहाँ स्वर्ग निवासी इन्द्रादिक देव आकर अपनी अभूतपूर्व भक्ति का प्रदर्शन करते हैं—स्तुति करते हैं और नमस्कार करते हैं। तथा तप वहां होता है जहां भव्यात्माओं के हित के लिये आगम-सूत्रों का पठन-पाठन किया जाता है।

जेण तवे केवलु उप्पज्जइ, सासयसुक्खु णिच्च संपज्जइ।

श्रेष्ठ कहा वह तपश्चरण वल, उपजे जिससे ज्ञान सु निश्चल।
जिस तपद्वारा हो न कर्ममल, अविनाशी सुख पावें अविचल॥

सर्वश्रेष्ठ और प्रशंसा के योग्य तप वही है जिसके द्वारा नियम से सर्वदर्शी (त्रिकालदर्शी) केवलज्ञान उत्पन्न होता है और नित्य-शाश्वत, आकुलतारहित, अविनाशी मोक्षसुख की प्राप्ति होती है।

बारह-विहु तउ वरु, दुग्गइ परिहरु,तं पूजिज्जइ थिरमणिणा।
मक्छरु मउ छंडिवि,करणइ दंडिवि,तंपि धइज्जइ गउरबिणा॥

द्वादशविध ये दुर्गतिपथहर, उत्तमतप अर्चो कर मन थिर।
इन्द्रियवशकर मत्सर मदहर, गौरवयुत धारो भवि! तपवर॥

बारह प्रकार का तप श्रेष्ठ है—उत्तम है-प्रशंसनीय है। और दुखप्रद दुर्गति का पथ अबरुद्ध करनेवाला है। इसलिये स्थिरचित्त होकर उसकी पूजा-उपासना करना चाहिये और उसका आदर करना चाहिये। तथा भद्रों को ईश्या मद मत्सरता छोड़कर पांचों इन्द्रियों का निरोध कर बड़े गौरव के साथ उसे धारण करना चाहिये।

ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यम्।

त्याग धर्म

त्यक्तसङ्ग मुदात्यन्तं, त्यागं सर्वसुखाकरम्।
पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये॥

जो चौबीस प्रकार के परिग्रह के त्याग से प्राप्त होता है और सब प्रकार के सुखों का खजाना है--भण्डार है, उस महान् त्यागधर्म की प्राप्ति के लिये सोत्साह भक्तिपूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूं।

चतुर्विधाय संघाय, दानं चैव चतुर्विधम् ।
दातव्यं सर्वदा सद्भिः, चिन्तकैः पारलौकिकैः ॥

दान चार समुचित सज्जन के, देना चार सङ्घ भविजन के ।
सदा दान ये शोभित उनके, परभव का है चिन्तन जिनके ॥

किसी पदार्थ पर से अपना स्वत्व हटा लेने और उसमें पर का स्वत्व स्थापित करने के भाव को 'त्याग' कहते हैं । अथवा वह धर्मार्थ कृत्य जिसमें श्रद्धा या दयापूर्वक किसी को धर्म-धन आदि दिया जाता है उसे दान कहते हैं । मोक्षरूप महान सम्पत्ति का समीचीन कारणस्वरूप वह दान आहार-दान, औषधिदान, अभयदान और ज्ञानदान इस प्रकार चार भेदरूप है । परलोक का चिन्तन करने वाले चिन्तकों को उक्त चारों प्रकार का दान दिगम्बर मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका के चतुर्विध संघ के लिए सदा देना चाहिये ।

चाउवि धम्मंगउ, तं जि अभंगउ, णिय सत्तिए भत्तिए जणहु ।
पत्तहं सुपवित्तह, तव-गुण-जुत्तह, परगइ-संवलु तं मुणहु ॥

त्याग अंग वृष पूर्ण रीतिसे, शक्त्यनुसार भक्तियुत चित से ।
पात्र-सुपात्र सहित गुण तपसे, दो "परगति पाथेय" समझसे ॥

त्याग करना अर्थात् दान देना भी धर्म का एक अङ्ग है । वह नियम से अभङ्ग है—खण्डरहित है । तपगुण के धारक, अत्यन्त निर्मल, पवित्र पात्र के लिए अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक पूर्णरीति से उस त्यागधर्म का पालन करना चाहिये । सुपात्र को दान देना दूसरी गति के लिये पाथेय (पथ या रास्ते में काम आने वाला खाद्य-पदार्थ-यात्रा की सामग्री या व्यय के धन) के समान है ।

चाए अवगुण-गणु जि उहट्टइ, चाए णिम्मल-कित्ति पवट्टइ ।
चाए वयरिय पणमइ पाए, चाए भोगभूमि सुह जाए ॥

त्याग से आवागमन मिटै खल, त्याग से प्रसरे कीर्ति समुज्ज्वल ।
त्याग से तनु हो जावे अरिदल, त्याग से लहे मनुज भोगवल ॥

त्याग से अर्थात् दान देने से समस्त अवगुणों का समुदाय सहज ही में दूर हो जाता है । त्याग से चारों तरफ निर्मल कीर्ति फैल जाती है । त्याग से शत्रुसमूह भी पैरों पड़कर नमस्कार करता है और त्याग से भोगभूमि के इच्छित सुख मिलते हैं ।

चाए विहिज्जइ णिच्च जि विणए, सुहवयणइ भासेप्पिणुपणए ।
अभयदाणु दिज्जइ पहिलारउ, जिमि णासइ परभवदुहयारउ ॥

दान करो नित विनय प्रगटकर, नेह सहित शुभ वचन कहो थिर ।
श्रेष्ठ प्रधान-दान सु-अभय वर, 'अभयदान' ही है भवदुखहर ॥

अत्यन्त विनम्रभाव से प्रेम दर्शाते हुए मधुर वचन बोलकर सदा नियमपूर्वक त्याग करना चाहिये । सबसे पहिले सर्वोत्कृष्ट महान अभयदान देना चाहिये, जिससे परलोक सम्बन्धी दुःखों का विनाश होता है और अविनाशी मोक्षपद की प्राप्ति होती है ।

सत्थदाणु बीजउ पुण किज्जइ, णिम्मल णाण जेण पाविज्जइ ।
ओसहु दिज्जइ रोय-विणासणु, कह वि ण पेच्छइ वाहिपयासणु ॥

दीजे 'शास्त्रदान' सुद्वितिय पुन, 'शास्त्रदान' सद्बुद्धि प्रकाशन ।
औषधि दीजे रोगविनाशन, 'औषधिदान' सुआधि-व्याधिहन ॥

जो परम्परा से सर्वज्ञ वीतराग प्रभु का कहा हुआ हो, प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाण से बाधारहित हो, किसी युक्ति से खण्डित न हो, सत्यवस्तु का प्रतिपादक हो, कुमार्ग का निषेध करने वाला तथा प्राणिमात्र का हितकारी हो वही सच्चा शास्त्र है।

सम्यग्ज्ञानवर्धक ऐसे ही समीचीन सम्यक् शास्त्रों का दान दूसरा शास्त्रदान कहलाता है, उसे देना चाहिये। सम्यग्ज्ञान का देना—शास्त्र का प्रकाश करना—शास्त्र वितरण करना, ज्ञान की उन्नति के साधन जुटाना आदि करना चाहिये। ऐसा करने से निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है। शास्त्रदान और विद्यादान से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

आधि-व्याधि और रोगों का नाश करने वाला तीसरा औषधिदान देना चाहिये। औषधिदान देने से रोगरहित निर्मल और स्वस्थ शरीर की प्राप्ति होती है।

आहारे धणरिद्धि पवट्टइ, चउविहु चाउ जि एहु पवट्टइ।
अहवा दुट्ठवियप्पह चाए, चाउ जि एहु मुणहु समवाए॥

है 'आहारदान' सु-ऋद्धिकर, दान चतुर्विध दो समृद्धिवर।
अथवा दुष्टविकल्प बुद्धिहर, 'निश्चय' त्याग सु साम्यपृष्टिवर॥

शुद्ध, प्रासुक आहार देने से धन और ऋद्धि-सिद्धि में वृद्धि होती है। इस प्रकार यह चार प्रकार का त्यागधर्म सनातन काल से चला आ रहा है। दान देने से त्याग की प्रवृत्ति होती है। चारों प्रकार का दान देना व्यवहार त्याग है और समता परिणामों से समस्त दुष्ट विकल्पों के त्याग को निश्चय (सर्वोत्तम) 'त्याग' जानो।

दुहियहं दिज्जइ, दाण, किज्जइ माणु जि गुणियणहं ।
दयभावीय अभंग, दंसणु चिन्तिज्जइ मणहं ।।

दान सदा दो दुखी देखि नर, गुणी पुरुष प्रति अति श्रद्धाकर ।
सद्दर्शन-चिन्तन करो निरन्तर, रहे सदा ही अटल दया थिर ।।

संसार के समस्त दुखी दरिद्री अनाथ अपाहिज जनों को करुणापूर्वक दान देना चाहिये। जो गुणीजन हैं (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से विभूषित हैं) उनका विनयपूर्वक आदर-सत्कार करना चाहिये। सब जीवों पर दया की अमिट भावना होना चाहिये और अन्तःकरण से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की अभिलाषा रखना चाहिये। यही उत्तमत्यागधर्म है।

ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

—o—

आकिंचन्य धर्म

आकिञ्चन्यं ममत्वादि, कृतदूरं सुखाकरम् ।
पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये ।।

'समस्त प्रकार के परिग्रहों से अपनत्व और ममत्वरूप बुद्धि हटाने से पैदा हुए और सुख के अपरिमित भण्डारस्वरूप आकिञ्चन्य धर्म की मैं उसकी प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा (उपासना) करता हूं।

ओं ह्रीं आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय चंदनम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

ओं ह्रीं आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

चतुर्विंशतिसंख्याकः, आगमोक्तः परिग्रहः ।
तस्य संख्या प्रकर्तव्या, तृष्णारहित-चेतसा ॥

चौविस भेद परिग्रह परिहर, भेद कहे द्वय वाह्याभ्यन्तर ।
अपने चित्त से तृष्णा तजकर, 'परिग्रहनियम' बनाओ हितकर ॥

जो जीव तृष्णा को छोड़कर संसार, देह और भोगों से विरक्त होता हुआ बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह के भेद से चौवीस प्रकार के परिग्रह का परित्याग करता है अथवा शक्ति के अनुसार संख्या (प्रमाण) करता है उसके 'आकिञ्चन्य-धर्म' होता है । सब जीवों को इस आकिञ्चन्यधर्म' का पालन करना चाहिये ।

आकिंचणु भावहु, अप्पउज्झावहु देहहु भिण्णउ, णाणमऊ ।
णिरुवमगय-वण्णउ सुहसंपण्णउ, परमअतिंदिय विगयभऊ ॥

ज्ञानमई तन भिन्नसु चिन्तन, आतम-ध्यान ध्याओ आकिंचन ।
निरभय निरुपम वर्णन वन्धन, परम अतीन्द्रिय सुखमय चेतन ॥

आकिञ्चन्य धर्म का चिन्तवन इस प्रकार करो कि आत्मा शरीर से भिन्न है । ज्ञानरूप हैं । अनुपम है । स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण से रहित है । स्वाधीन ज्ञानानन्द सुख से परिपूर्ण है । परमोत्कृष्ट है । अतीन्द्रिय है और सर्वभय रहित (निर्भय) है । इस प्रकार अपने आत्मा को अनुभव करना ही उत्तम 'आकिञ्चन्य' धर्म है ।

आकिंचणुवउ संगह-णिविति, आकिञ्चणुवउ सुहझाण-सत्ति।
आकिंचणुवउ वियलियममत्ति, आकिञ्चणु रयणत्तय पवित्ति॥
परिग्रह निरवृतिवृत आर्चिकन, शुभध्यानासक्तीव्रत आकिंचन।
है ममतत्याग व्रत आकिंचन, रत्नत्रयधारण आकिंचन॥

वाह्य दस और आभ्यन्तर चौदह भेदरूप चौवीस प्रकार के परिग्रह का छोड़ना 'आकिञ्चन्यव्रत' है। आत्मा में चार प्रकार के शुभ-ध्यानों के करने की शक्ति का होना आकिञ्चन्य व्रत है। शरीरादिक पर द्रव्यों से ममत्व हटाना आकिञ्चन्यव्रत है और रत्नत्रय में प्रवृत्ति होना अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की ओर आत्मा का झुकाव होना या इनको धारण करना 'आकिञ्चन्य व्रत' है।

आकिंचणु आउचियइ चित्तु, पसरंतउ इंदिय-वणि विचित्तु।
आकिंचणु देहहु णेह चत्तु, आकिंचणु जं भवसुहविरत्तु॥
इन्द्रिय-वन विचित्र में ये मन, प्रसरण संकोचे आकिंचन।
देह-नेहपरित्याग अकिंचन, भवसुखविरक्तता आकिंचन॥

आकिञ्चन्य व्रत इन्द्रियों के विषयरूपी विचित्र वाटिका में स्वच्छन्द विचरण करने वाले चंचल-मन का संकोचन करता है। जड़वत् शरीर से स्नेह या प्रेम का त्याग करना 'आकिञ्चन्यव्रत' है। और सांसारिक सुखों और उनके साधनों से विरक्त होना भी 'आकिञ्चन्यव्रत है।'

तिणमित्तु परिग्गहु जत्थ णत्थि, आकिंचणु सो णियमेण अत्थि।
अप्पापर जत्थ वियारसत्ति, पयडिज्जइ जहिं परमेट्ठिभत्ति॥
तुषमात्र-परिग्रह हो न जहां, स्वपरविचारण शक्ति जहां।
या हो परमेष्ठी भक्ति जहां, आकिंचनव्रत होवे सु तहां।

जहां पर तिलतुषमात्र भी परिग्रह नहीं होता वहां नियम से आकिञ्चन्यव्रत होता है। जहां पर अपनी आत्मा और पर पदार्थ के स्वरूप के विचार करने की शक्ति प्रकट होती है। तथा जहां पर अरिहन्त सिद्ध आदि पंच परमेष्ठी की भक्ति करने की सत्प्रेरणा होती है अर्थात् पंच परमेष्ठी की भक्ति की जाती है वहाँ आकिञ्चन्य वृत नियम से होता है।

छंडिज्जइ जहिं संकप्पदुट्ठ भोयणु, वंछिज्जइ जहिं अणिट्ठ।
आकिंचणु धम्मु जिएम होइ, तं झाइज्जइ णिरु इत्थ लोइ॥

भवि जीव ! दुष्ट संकल्प हरे, नीरस भोजन को चाह करे।
व्रत आकिंचन इस भाँति वरे, यह जग जिसका नित ध्यान धरे॥

जहां पर अशुभ कषायरूप मन के दुष्ट संकल्प-विकल्पों का त्याग किया जाता है। जहां पर रुचि उत्पन्न करने वाले स्वादिष्ट भोजन की वाञ्छा नहीं रहती वहां आकिञ्चन्यधर्म होता है। अपनी आत्मा की भलाई चाहने वाले मनुष्यों को इस लोक में इच्छारहित होकर उसका ध्यान करना चाहिए।

एहुजि पहावे लद्धसहावे, तित्थेसर सिव-णयरि गया।
गय-काम-वियारा, पुण रिसि-सारा वंदणिज्ज ते तेणसया॥

आकिंचन धर्म प्रभाव महा, जो तीर्थङ्कर शिव-नगर गया।
गतकामविकार-ऋषी गणया, व्रत के कारण नितपूज्य भया॥

इसी महान् परमोत्कृष्ट आकिञ्चन्यधर्म के प्रभाव और सहयोग से धर्मप्रवर्त्तक तीर्थङ्कर परमदेवाधिदेव शिवनगरी को प्राप्त हुए हैं। इसी आकिञ्चन्यधर्म के प्रताप से काम-विकार से रहित परमपूज्य श्रेष्ठ ऋषीश्वर सदा वन्दनीय होते हैं, हुए हैं और होते रहेंगे।

ओं ह्रीं उत्तमआकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा

ब्रह्मचर्य धर्म

स्त्रीत्यक्तं त्रिजगत्पूज्यं, ब्रह्मचर्यं गुणार्णवम् ।
पूजया परया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये ॥

स्त्री का त्याग करने से जो प्राप्त होता है—तीनों लोकों में पूज्य है और गुणों का समुद्र है—उस ब्रह्मचर्य व्रत की मैं उसकी प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

नवधा सर्वदा पाल्यं, शीलं सन्तोषधारिभिः ।
भेदाभेदेन संयुक्तं, सद्गुरूणां प्रसादतः ॥

नवविध ब्रह्मचर्य आचरना, भेदाभेद सहित कर गणना ।
भव्यजीव ! चित धीरज धरना, गुरुप्रसाद से सदा सुमरना ॥

शील और सन्तोष को धारण करने वाले भव्यजीवों को श्रेष्ठगुरुओं के प्रसाद से भेद और अभेदरूप नव-वाढ़ (नौ प्रकार के शील) संयुक्त ब्रह्मचर्यव्रत का सदा पालन करना चाहिये ।

वंभव्व उ दुद्धरु धारिज्जइ वरु, फेडिज्जइ विसयास णिरू।
तिय-तुक्खइ रत्तउ मण-करि मत्तउ तं जि भव्य रक्खेहु थिरू॥

भवि ! वर ब्रह्मचर्य व्रत दुर्द्धर, धारो इसे वासना तजकर।
तियसुखलीनहृदय-गजमदकर, उससे रख निजको भवि सुस्थिर।

भो भव्यपुरुषो ! महादुर्द्धर-दुर्दमनीय और उत्कृष्ट-ब्रह्मचर्य-व्रत को अंगीकार करना चाहिये और विषयों की समस्त आशाओं का त्याग कर देना चाहिये। स्त्रीसुख में लवलीन मनरूपी मदोन्मत्त हाथी को विवेकरूपी अंकुश से वश कर हे भव्यजीव ! उस महान ब्रह्मचर्य व्रत की स्थिरचित्त होकर रक्षा करो।

चित्तभूमिमयणु जि उपज्जइ, तेण जि पीडिउ, करइ अकज्जइ।
तियह सरीरइ, णिंदइ सेवइ, णिय-पर-णारि ण मूढउ वेयइ॥

काम-विषयकी उपज भूमि चित, करे अकाज काम से पीड़ित।
निन्दित जो नारी वन सेवत, मूर्ख स्व-पर स्त्री नहिं देखत॥

मदनदेव नियम से चित्तरूपी भूमि में उत्पन्न होता है। उस कामदेव से प्रपीड़ित प्राणी न करने योग्य निन्द्यनीय और पाप-पूर्ण काम करता है। वह स्त्रियों के अत्यन्त निन्दित, और दूषित शरीर का सेवन करता है, उपभोग करता है तथा वह कामान्ध महामूढ अपनी स्त्री और दूसरे को स्त्री में भेद नहीं करता। अर्थात् स्वस्त्री और परस्त्री को भी नहीं देखता।

णिवडइ णिरइ महादुह भुंजइ, जो हीणु जि बम्भव्वउ भंजइ।
इय जाणेप्पिणु, मण-वय-काए, बंभचेरु पालहु अणुराए॥

उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत तजकर, पावे जीव नरक सो दुखकर।
ऐसा जान सु मन वच तन कर, ब्रह्मचर्य अनुराग सहित धर॥

जो निष्कृष्ट (हीनबुद्धि) मानव महान ब्रह्मचर्य व्रत को खण्डित करता है भङ्ग करता है वह नरक में पड़ता है और वहां के कष्टदायक आवर्णनोय महान् दुःखों को भोगता है। यह जानकर मन, वचन और काय से अनुरागपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो।

तेण सहु जि लब्भइ भवपारउ, बंभयविणु वउतउ जि असारउ।
बंभव्वय विणु कायकिलेसो, विहलसयल भासियइ जिणेसो॥

ब्रह्मचर्य सब जिय भवतारन, व्रततप व्यर्थ सुब्रह्मचर्य विन।
व्यर्थ क्लेश तन ब्रह्मचर्य विन, इस प्रकार से भाषे श्रीजिन॥

संसारी जीव इस ब्रह्मचर्य के पूर्णतया धारण करने से संसार-सागर से पार होते हैं। ब्रह्मचर्य के विना व्रत, जप, तप करना सब निरर्थक है-फल रहित है। और बिना ब्रह्मचर्य के जितने भी शारोरिक क्लेश व कष्ट सहन किये जाते हैं, व्यर्थ हैं; निष्फल हैं, ऐसा भगवान जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

बाहिर फरसिंदिय सुख रक्खउ परम बंभु अभिंतरि पेक्खउ।
एण उवाए लब्भइ सिव-हरु, इमि रइधू बहु भणइ विणययरु॥

स्पर्शन सुख वाह्यत्याग नित, ब्रह्म अभ्यन्तर ध्यावो नितप्रति।
यही उपाय वनो भवि शिवपति, इमि रयधू अति कहे विनययुत॥

वाहर तो स्पर्शन इन्द्रिय से उत्पन्न शारीरिक विषय-सुखों का त्याग करो और अपने आत्मा की रक्षा करो तथा भीतर परमब्रह्मस्वरूप ब्रह्मचर्य-आत्मा को सद्ज्ञान दृष्टि से देखो और

उसी आत्मस्वरूप में लीन रहो। इस भांति इस सदुपाय से जो नौ–बाढ़ सहित शील का पालन करते हैं उन्हें शिवमन्दिर अर्थात् निर्वाणरूपी घर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार रयधू कवि इस प्राकृत दशलक्षण जयमाल के कर्त्ता अत्यन्त विनम्रभाव से सज्जन पुरुषों के हित के लिए धर्मोपदेशरूप वचन कहते हैं उन्हें वारम्वार सुनो, मनन करो और उसरूप अपने आत्मा को बनाओ।

जिणणाहमहिज्जइ,मुणि पणमिज्जइ,दहलक्खणु पालियइणिरू।

भो खेमसींहसुय,भव्यविणयजुय, होलुव मणु इह करहु थिरू॥

मुनिगण प्रणमित जिनवर भाषित, दशलक्षणमय योग रखो।
खेमसिंहसुत भव्य विनययुत, 'हौलुव' समसुस्थिर करलो चित॥

जिसकी गरिमा, महिमा, प्रभाव और प्रताप का वर्णन स्वयं त्रिलोकीनाथ जिनवरेन्द्रदेव ने किया है, और निर्ग्रन्थ साधुसमूह नतमस्तक होकर वारम्वार जिसे नमस्कार करते हैं। उस महान दशलक्षणधर्म का उत्तमप्रकार से पालन करो। भव्यात्मन् क्षेमसिंह के पुत्र होलू के समान अपने चित्त को इसमें सुस्थिर करो।

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

इय काऊण णिज्जरं, जे हणंति भवपिंजरं।
णीरोयं अजरामरं, ते लहंति सुक्खं परं॥

इस विधि जो कर्म करें निर्जर, सो हरते हैं भवदुखपिंजर।
वे रोगरहित हों अजर–अमर, औ प्राप्त करें सुख अविनश्वर॥

इस प्रकार कर्मों की निर्जरा करके जो संसाररूपी पिंजरे

का नाश करते हैं, वे लोग रोगरहित अजर-अमर परमसुख को प्राप्त करते हैं ।

जेण मोक्ख-फलु तं पाविज्जइ, सो धम्मंगो एहहु किज्जइ ।
खयय खमायलु तुंगय देहउ, मद्दउ पल्लउ अज्जउ साहउ ॥

मिले मोक्ष-फल, पालो वृष दश, धारो धर्म-अङ्ग वल समुचित ।
'धर्म-वृक्ष' की क्षमा-भूमि शुभ, 'मार्दव'-पल्लव 'आर्जव' शाख सु ॥

जिससे महान मोक्ष-फल की प्राप्ति होती है—उस धर्माङ्ग क्षमा का पालन करना चाहिये । वह क्षमारूपी पृथ्वीतल से युक्त उत्तुङ्ग देह वाला है । उसके मार्दवरूपी पल्लव और आर्जवरूपी शाखाएँ हैं ।

सच्च-सउच्च मूल संजमु दलु, दुविह महातव णव कुसुमाउलु ।
चउ विह चाउ पसारियपरिमलु, पीणिय भव्वलोय छप्पयउलि ॥

मूल 'शौच' 'सत' पत्रसु 'संयम', द्विविध महा 'तप' पुष्पसुवासित ।
'चारदान' शुभगन्धप्रसारित, भव्य-भ्रमर अतिही चितप्रमुदित ॥

सत्य और शौचरूपी जड़ है । संयमरूपी पत्ते हैं । दो प्रकार के महातपरूपी नूतन पुष्पों से व्याप्त हैं । चार प्रकार का त्यागरूपी सुगन्धियुक्त परिमल फैल रहा है । प्रीणित भव्यलोक-रूपी भ्रमरदल है ।

दिय-संदोह-सद्द-कयकलयलु, सुर-णरवर-खेयर सुह सयफलु ।
दीणाणाह-दीह-सम-णिग्गहु, सुद्धु-सोम-तणुमत्तु परिग्गहु ॥

सुर-नर-खेचर पक्षी सम ते, कलकल करते सुखफल लहते ।
दीन-अनाथ दीर्घ श्रम हरते, 'आकिञ्चन' सुसौम्य तन धरते ॥

भव्यरूपी पक्षिसन्दोह कलकल शब्द कर रहे हैं। देव-मनुष्य और विद्याधरों के सुखरूपी सैकड़ों फल लग रहे हैं। जो दीन और अनाथ जीवों के दीर्घश्रमका निग्रह करने वाले शुद्ध और सौम्य शरीरमात्र परिग्रह (आकिञ्चन्य) से युक्त है।

बम्भचेरु छायाइ सुहासिउ, रायहंस-णियरेहिं समासिउ।
एहउ धम्म-रुक्खुलक्खिज्जइ, जीवदया बहुविधि पालिज्जइ॥

'ब्रह्मचर्य' छाया शुभ शोभित, राजहंसगण जिसके आश्रित।
'धर्मवृक्ष' यह रखो सुरक्षित, जीव दयामय वचन सुभाषित॥

राजहंसों के समूह के द्वारा आश्रय किया गया ब्रह्मचर्य इसकी छाया में फल-फूल रहा है। यह धर्मरूपी वृक्ष है। जीव दया के द्वारा इसका अनेकप्रकार से पालन करना चाहिये।

झाण-ट्ठाणु भल्लारउ किज्जइ, मिच्छामयहं पवेसु ण दिज्जइ।
सील-सलिल धारहिं सिंचिज्जइ, एम पयत्ते वड्ढारिज्जइ॥

इस वृष-तरु-तल, ध्यानथानकर, मिथ्यातमप्रवेश सब परिहर।
सींचो शीलसलिल धाराधर, करो इसे इस विधि समृद्धिवर॥

इसे भले प्रकार ध्यान का स्थान बनाना चाहिये और मिथ्यामतों का अपने में प्रवेश नहीं होने देना चाहिये। शील-रूपी जलकी धारा से इसका अभिषिञ्चन करना चाहिये। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक इसे बढ़ाना चाहिये।

कोहाणलु चुक्कउ, होउ गुरुक्कउ, जाइ रिसिंदहिं सिट्ठगई।
जगताइ सुहंकरु, धम्म-महातरु, देइ फलाइ सुमिट्ठमई॥

गम्भीर वनो हर क्रोधअनिल, जिससे गति श्रेष्ठ मिले निर्मल ।
दशधर्म महातरु सुखी सकल, जय करे फले नित मिष्ट सुफल ॥

क्रोधानल का त्याग कर महान वनो, ऐसा ऋषिवरों ने सदुपदेश दिया है । शुभ करने वाला यह धर्मरूपी महावृक्ष संसार को मीठे फल प्रदान करता है ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्मेभ्य अर्घ्यम् ।
॥ इत्याशीर्वादः ॥

卐

पद्यानुवादक की ओर से

परमपूज्य पद पञ्च हृदय धर, निकटभव्य श्री 'रयधू' कविवर ।
दशलक्षण की जयमाला वर, स्वपरहितार्थ रची शुभमतिकर ॥
पूज्य-पिता ने अपभ्रंश कृति, लिखकर अंग्रेजी में उसको ।
भाषाहेतु प्रेरणा हमको, भक्तिसहाय रची तब इसको ॥
नभ नव चतुद्वय वर्धमान का, संवत दिन रक्षावन्धन का ।
हेतु कर्मक्षय इस वर्णन का, भूल सुधारो प्रण सज्जन का ॥
संवरकारण सु-प्रयास धरें, मानादि कषाय विनाश करें ।
जब तक शिवनगरी वास वरें, तब तक इनका अभ्यास करें ॥

नित्य-नैमित्तक-जाप्य-मन्त्र

सामायिक की विधि

प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन सवेरे ही एकवार, दूसरी प्रतिमाधारी को शाम सवेरे दो वार, तीसरी प्रतिमाधारी को तीन बार सामायिक अवश्य करना चाहिये ।

प्रातः सायं और मध्याह्न तीन समय उत्कृष्ट ६ घड़ी, मध्यम ४ घड़ी और जघन्य २ घड़ी सामायिक का काल है ।

सर्व प्रथम पूर्व या उत्तर मुख खड़ा होकर हाथ जोड़ मस्तक से लगाकर तीन बार शिरोनति करना चाहिये । पश्चात सीधे खड़े होकर दोनों हाथ छोड़ देना चाहिये । दोनों एड़ियों में ४ अंगुल का वा अंगूठों में १२ अंगुल का अन्तर रहे । दृष्टि नासा पर तथा मस्तक सीधा रहे ।

फिर णमोकार मन्त्र की ९ जापें २७ स्वासोच्छ्वासों में पढ़कर कायोत्सर्ग कर उसी दिशा में अष्टाङ्ग नमस्कार करना चाहिये । पश्चात् खड़े होकर प्रतिज्ञा करे कि "मैं इतने समय तक सामायिक करूँगा । तब तक के लिये मेरे थोड़ी सी जगह के सिवाय अन्य समस्त परिग्रहों का त्याग है । मैं आये हुए विघ्न, उपसर्ग और परीषहों को समता से सहन करूँगा ।" आदि ।

फिर उसी दिशा में खड़े होकर ९ या ३ वार णमोकार मन्त्र पढ़, ३ आवर्त और एक शिरोनति (नमस्कार) करना चाहिये । फिर दाहिने हाथ की ओर से प्रत्येक दिशा में ९ या ३ बार णमोकार मन्त्र पढ़कर ३।३ आवर्त और १।१ शिरोनति करना चाहिये । पश्चात्—

उसी पूर्व या उत्तर दिशा की ओर खड्गासन या पद्मासन माड़कर समान स्वर से 'सामायिकपाठ' पढ़ना चाहिये । पश्चात् आगमोक्त किसी भी मन्त्र का १०८ वार जाप्य देकर आत्मस्वरूप का चिन्तवन कर अपने कृत दोषों की आलोचना करना चाहिये । आलोचनापाठ, बारह भावना, आध्यात्मिक भजन, जिनस्तुति, पूजा की जयमाल, मेरी भावना आदि का पाठ करना चाहिये ।

फिर उसी दिशा में खड़ा होकर ९ वार णमोकार मन्त्र पढ़कर दण्डवत् करके अथवा पहिले की तरह खड़े होकर चारों दिशाओं में तीन या नौ वार णमोकार मन्त्र पढ़कर ३।३ आवर्त और १।१ शिरोनति कर दण्डवत् कर सामायिक पूर्ण करना चाहिये ।

—०—

दैनिक जाप्य मन्त्र

पणतीस – सोल-छप्पण, चदु–दुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं, अरणं च गुरूवएसेण॥

परमेष्ठी के वाचक पैंतीस, सोलह, छह, पांच, चार, दो और एक अक्षर वाले मंत्र का प्रतिदिन जाप और ध्यान करना चाहिये।

(१) पैंतीस अक्षर वाला महामंत्र–

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

(२) सोलह अक्षर का मंत्र–

अरिहंत-सिद्ध–आयरिय–उवज्झाय–साहू।

(३) छै अक्षर का मंत्र–अरिहंत–सिद्ध।

(४) पांच अक्षर का मंत्र–अ सि आ उ सा।

(५) चार अक्षर का मंत्र–अरिहंत।

(६) दो अक्षर का मंत्र–सिद्ध।

(७) एक अक्षर का मंत्र–ॐ, ओम्।

ॐ ह्रीं अरिहंतसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा नमः।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

ॐ ह्रां ह्रिं ह्रीं ह्रुं ह्रूँ ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा
सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रेभ्यो ह्रीं नमः।

आष्टाह्निक-व्रत-जाप्य-मन्त्र

समुच्चय—मन्त्र

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरसंज्ञाय नमः ।

प्रत्येक-मन्त्र

१. ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरसंज्ञाय नमः । २. ॐ ह्रीं श्रीअष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः । ३. ॐ ह्रीं श्रीत्रिलोकसार-संज्ञाय नमः । ४. ॐ ह्रीं श्रीचतुर्मुखसंज्ञाय नमः । ५. ॐ ह्रीं श्रीपञ्चमहालक्षणसंज्ञाय नमः । ६. ॐ ह्रीं श्री स्वर्गसो-पानसंज्ञाय नमः । ७. ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्रसंज्ञाय नमः । ८. ॐ ह्रीं श्रीइन्द्रध्वजसंज्ञाय नमः ।

षोडशकारणव्रत के जाप्य मन्त्र

समुच्चय मन्त्र

ॐ ह्रीं षोडशकारणभावनाभ्यः नमः ।

१. ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये नमः । २. ॐ ह्रीं विनय-सम्पन्नतायै नमः । ३. ॐ ह्रीं शीलव्रतानतिचाराय नमः । ४. ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः । ५. ॐ ह्रीं संवेगाय नमः । ६. ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः । ७. ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः । ८. ॐ ह्रीं साधुसमाधये नमः । ९. ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः । १०. ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये नमः ११. ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये नमः । १२. ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तये नमः । १३. ॐ ह्रीं प्रवचन-भक्तये नमः । १४. ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये नमः ।

१५. ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै नमः । १६. ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय नमः ।

दशलक्षणव्रत के जाप्यमन्त्र

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जव-सत्यशौचसंयम-तपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्यधर्मेभ्यः नमः ।

१. ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः । २. ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नमः । ३. ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय नमः । ४. ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय नमः । ५. ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय नमः । ६. ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय नमः । ७- ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय नमः । ८. ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय नमः । ९. ॐ ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्य-धर्माङ्गाय नमः । १०. ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः ।

पुष्पाञ्जलि व्रत के जाप्य मन्त्र

१. ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिजिनालयेभ्यः नमः २. ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनालयेभ्यः नमः । ३. ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धिजिनालयेभ्यः नमः । ४. ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धिजिनालयेभ्यः नमः ५. ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धिजिनालयेभ्यः नमः ।

रत्नत्रयव्रत जाप्यमन्त्र

१. ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय नमः । २. ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय नमः । ३. ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकार-सम्यक्चारित्राय नमः ।

अनन्त चतुर्दशी जाप्य-मन्त्र

एकादशी-ॐ ह्रीं अर्हं हं सः अनन्तकेवलिने नमः स्वाहा।

द्वादशी--ॐ ह्रीं क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रौं हं सः अमृतवाहिने नमः

त्रयोदशी--ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अनन्तनाथतीर्थङ्कराय नमः मम सर्वशान्ति कुरुत कुरुत स्वाहा।

चतुर्दशी-ॐ ह्रीं अर्हं अनन्तकेवली भगवान् मम अनन्तदान-लाभ-भोगोपभोगवीर्याभिवृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।

अनन्त बांधने का मन्त्र

ॐ ह्रीं अनन्तनाथतीर्थङ्कराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु अनन्तसूत्रबन्धनं करोमि स्वाहा।

अनन्त बदलने का मन्त्र

ॐ ह्रीं अर्हं हं सः सर्वकर्मविमुक्ताय अनन्तसुखप्राप्ताय अनन्तनाथतीर्थङ्कराय पूर्वसूत्रबन्धनमोचनं करोमि स्वाहा।

रविव्रत जाप्य मन्त्र

ॐ नमो भगवते पार्श्वनाथाय मम ऋद्धिं, वृद्धिं, सौख्यं वा कुरु कुरु स्वाहा।

सर्वरोग विनाशक मन्त्र

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कलिकुण्डदण्डस्वामिने नमः आरोग्यं परमैश्वर्यं वा कुरु कुरु स्वाहा।

यह मन्त्र श्री पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा के सामने बैठकर शुद्धभाव से क्रियापूर्वक १०८ बार जपना चाहिये।

मनोरथ-सिद्धि दायक-मन्त्र

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः

प्रतिदिन १०८ वार मन्त्र का जाप करना चाहिये ।

मङ्गल-दायक-मन्त्र

ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा नमः ।

किसी एकान्तस्थान में बैठकर प्रतिदिन शुद्धभावपूर्वक धूप खेते हुए १०८ वार मन्त्र जपना चाहिये ।

ऐश्वर्यप्रदायक मन्त्र

ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा नमः स्वाहा ।

सूर्योदय के समय पूर्वदिशा में मुख करके प्रतिदिन १०८ वार शुद्धभाव से जपना चाहिये ।

सर्व सिद्धिदायक मन्त्र

ॐ ह्रीं क्लीं अर्हं श्री वृषभनाथतीर्थङ्कराय नमः ।

समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक १०८ वार जपना चाहिये ।

卐

जाप्य की विधि

कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिये जाप्य का करना नितान्त आवश्यक है। जाप्य जिनमन्दिर या किसी एकान्त, स्वच्छ, पवित्र, कोलाहलरहित, हवादार स्थान में प्रारम्भ करना चाहिये। दूसरी मंजिल या छत पर जाप्य नहीं करना चाहिये कार्यसिद्धि के लिये सवालक्ष, इकहत्तर हजार, इक्यावन हजार अथवा इक्कीस हजार जाप्य करना चाहिये।

जाप्य करने वाले व्यक्ति को:—मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य का त्याग हो। अनुष्ठान के दिनों में ब्रह्मचर्य। रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग और अपने कार्य में रुचि, श्रद्धा और उत्साह रखना आवश्यक है।

कमसे कम आठ व्यक्ति इस पुनीत कार्य को निराकुलता से पूरा कर सकते हैं। इससिये इन्हें पहिले से निश्चित कर प्रतिष्ठाचार्य एतत्सम्वन्धी सव विधि समझा देवें।

जाप्य करने वाले महाशय शुद्ध और नये धोती दुपट्टे पहिनें। एक वस्त्र धारण कर जाप्य में नहीं बैठें।

जिस स्थान पर जाप्य करना हो वहां बीच में एक वाजोटा (चौकी) रखकर उस पर पुष्पों से नन्द्यावर्त स्वस्तिक (सांथिया) वनाना चाहिये। फिर पांच कलशों को श्रीफल, लाल या पीला टूल, माला आदि से सजाकर नाड़ा (पँचरँगा सूत) लपेट कर तैयार रक्खे। ये कलश मिट्टी के ही क्यों न हों, पर काम में लाये हुए न हों—कोरे हों।

एक कलश में हल्दी, सुपारी तथा अक्षतों के साथ १।) सवा रुपया डाला जावे। शेष चार कलशों में हल्दी सुपारी और अक्षत डाले जावें। प्रधान कलश (मङ्गल कलश) जिसमें

रुपया डाला गया है वाजौटा के वीच में रक्खा जावे और शेष कलश उसकी चारों दिशाओं में रक्खे जावें। उसी वजौटा पर एक सिंहासन पर पूर्व या उत्तर मुख 'विनायक यन्त्र' विराजमान किया जावे।

यदि यन्त्र को पूर्व की ओर विराजमान किया है तो उत्तर में और उत्तर में विराजमान किया है तो पूर्व में घृत का एक वड़ा दीपक प्रज्वलित कर रखा जावे। इस दीपक की अखण्ड ज्योति जलती रहे, ऐसी व्यवस्था करना वहुत आवश्यक है।

मिट्टी या लकड़ी के चार थपा वनाकर उनमें पांच रंग को छोटी छोटो ध्वजायें लगाई जावें और वे थपा वाजौटा के चारों कोनों पर रखे जावें।

जाप्य करने दालों का मुख दक्षिण दिशा की ओर न हो। जाप्य करने वालों के सामने एक चौकी पर एक धूपघट, एक धूपपात्र, एक प्रज्वलित दीपक, एक स्फटिक अथवा सूत की माला और माला की गणना के लिये एक रकेवी में कुछ वदाम या लवङ्गें रखी जावें। जाप्य का मन्त्र मुखाग्र याद न हो तो कागज पर लिखकर सामने रखा जावे।

विनायक यन्त्र के सन्मुख पूजा के लिये अष्ट द्रव्य तथा पूजा के वर्तनों का पूरा सेट जमाकर रखा जावे। रक्षासूत्र और यज्ञोपवीत भी पहले से तैयार कर लेना चाहिये।

इतनी तैयारी के वाद प्रतिष्ठाचार्य जाप्य में वैठने वालों को अपने-अपने आसन पर खड़ा कर सर्वप्रथम अग्रिम मङ्गल-मय मङ्गलाष्टक पढ़े। सवके हाथ पुष्प दे दे और समझा दे कि 'कुर्वन्तु ते मङ्गलम्' के उच्चारण के साथ वे पुष्प वाज़ौटा पर स्थापित कलशों के आगे थोड़े-थोड़े छोड़ते जावें।

मङ्गलाचरण

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ॥१॥

नमः स्यादर्हद्भ्यो, विततगुणराड्भ्यस्त्रिभुवने ।
नमः स्यात् सिद्धेभ्यो, विगतगुणवद्भ्यः सविनयम् ॥
नमो ह्याचार्येभ्यः, सुरगुरुनिकारो भवति यैः ।
उपाध्यायेभ्योऽथ, प्रवरमतिधृद्भ्योऽस्तु च नमः ॥२॥

नमः स्यात् साधुभ्यो, जगदुदधिनोभ्यः सुरुचितः ।
इदं तत्त्वं मन्त्रं, पठति शुभकार्ये यदि जनः ॥
असारे संसारे, तव पदयुग – ध्यान – निरतः ।
सुसिद्धः सम्पन्नः, स हि भवति दीर्घायुररुजः ॥३॥

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः, सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः ।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः,पूज्या उपाध्यायकाः ॥
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥४॥

---

१. अनुष्टुप् । २, ३. शिखरिणी । ४. शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

अथ मङ्गलाष्टकम्

(शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः)

श्रीमन्नम्र – सुरासुरेन्द्र – मुकुट – प्रद्योतरत्न–प्रभा–
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः ।
ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥१॥

नाभेयादिजिनाः प्रशस्तवदनाः, ख्याताश्चतुर्विंशतिः ।
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश ॥
ये विष्णुप्रतिविष्णुलाङ्गलधराः, सप्तोत्तरा विंशतिः ।
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥२॥

ये पञ्चौषधिऋद्धयः श्रुततपो–वृद्धिं गताः पञ्च ये ।
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशलाश्चाष्टौविधाश्चारिणः ॥
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि वलिनो, ये बुद्धिऋद्धीश्वराः ।
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥३॥

ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे, मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः ।
जम्बूशाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा, वक्षाररूप्याद्रिषु ॥
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे, द्वीपे च नन्दीश्वरे ।
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥४॥

कैलाशो वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरी ।
चम्पा वा वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलोऽर्हताम् ॥

शेषाणामपि चोर्जयन्त-शिखरी, नेमीश्वरस्यार्हताम् ।
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥५॥

सर्पो हारलता भवत्यसिलता, सत्पुष्पदामायते ।
सम्पद्येत रसायनं विषमपि, प्रीतिं विधत्ते रिपुः ॥
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः, किं वा वहुं ब्रूमहे ।
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति तरां, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥६॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां, जन्माभिषेकोत्सवो ।
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो, यः केवलज्ञानभाक् ॥
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा, सम्पादितः स्वर्गिभिः ।
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥७॥

आकाशं मूर्त्यभावा-दघकुलदहना-दग्निरुर्वी क्षमाप्त्या ।
नैःसङ्गाद्वायुरापः प्रगुणशमतया, स्वात्मनिष्ठैः सुयज्वा ॥
सोमः सौम्यत्वयोगा-द्रविरिति च विदुस्तेजसः सन्निधानाद् ।
विश्वात्मा विश्वचक्षु-र्वितरतु भवतां, मङ्गलं श्रीजिनेशः ॥८॥

इत्थं श्रीजिनमङ्गलाष्टकमिदं, सौभाग्यसम्पत्करं ।
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणां मुखाः ॥
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैः, धर्मार्थकामान्विता ।
लक्ष्मीर्लभ्यत एव मानवहिता, निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥९॥

॥ इति मङ्गलाष्टकम् ॥

मङ्गलकलश स्थापना मन्त्र

ओम् अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मतेऽस्मिन् विधीयमाने कर्मणि अमुकवीरनिर्वाणसम्वत्सरे अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकदिने, प्रशस्तलग्ने, भूमिशुद्ध्यर्थं, पात्रशुद्ध्यर्थं, क्रियाशुद्ध्यर्थं, शान्त्यर्थं पुण्याहवाचनार्थं नवरत्नगन्धपुष्पाक्षतबीजपूरादिशोभितं शुद्धप्रासुकतीर्थ–जलपूरितं मङ्गलकलशस्थापनं करोमि, श्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा ।

इस मन्त्र को पढ़कर बाजौटा के बीच में जल, अक्षत, पुष्प, हल्दी, सुपारी और १।) सवा रुपया सहित मङ्गलकलश स्थापित किया जावे । इस कलश को पुण्याहवाचन कलश भी कहते हैं ।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरि–पुण्डरीकमहापुण्डरीकगङ्गासिन्धुरोहितरोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्ता–स्वर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाक्षीराम्भोनिधिजलं सुवर्णघटप्रक्षिप्तं सर्वगन्धपुष्पाढ्यमामोदकं पवित्रं कुरु पवित्रं कुरु ओं झं झं झ्रौं झ्रौं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर मङ्गलकलश में थोड़ा जल डाल कर उसके जल को पवित्र किया जावे ।

ये सन्ति केचिदिह दिव्यकुलप्रसूताः,
नागाः प्रभूतबलदर्पयुता विबोधाः ।
संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां,
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥

ॐ क्षां क्षीं क्षूँ क्षौं क्षः मेघकुमाराः धरां प्रक्षालयत प्रक्षालयत स्वाहा । यह मन्त्र पढ़कर डाभपूल से जलसिंचन कर जाप्य भूमि की शुद्धि की जावे ।

'ओं नमोऽर्हते सुरेन्द्रमुकुटरत्नप्रभा – प्रक्षालितपाद–पद्माय भगवते शुद्धिमज्जलेन पादप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर पादप्रक्षालन किया जावे ।

ॐ ह्रीं अर्हं असुजर भव भव हस्तशुद्धिं करोमि स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर जल से हस्तशुद्धि की जावे ।

ॐ ह्रीं क्लीं क्ष्वीं हं सः परमपावनाय वस्त्रपावनं करोमि स्वाहा । यह मन्त्र पढ़कर अधोवस्त्र (धोती) की शुद्धि की जावे ।

ॐ ह्रीं परिधानोत्तरीयं धारयामि स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर उत्तर वस्त्र (दुपट्टा) की शुद्धि की जावे ।

ॐ ह्रीं अर्हं क्षां ठः ठः दर्भासनं निक्षिपामि स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर बैठने के स्थान पर आसनी बिछाई जावे ।

ॐ ह्रीं अर्हं ह्यूं ह्यूं निःसहि–निःसहि आसनोपरि उपविशामि । यह मन्त्र पढ़कर आसन पर बैठें ।

ॐ नमः परमशान्ताय परमशान्तिकराय पवित्री-कृतायायं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधाति एतद्गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर यज्ञोपवीत पहिनाया जावे ।

जिनेन्द्रगुरुपूजनं, श्रुतवचः सदा धारणं,
स्वशीलयमरक्षणं, ददनसत्तपो बृंहणम् ।
इतिप्रथितषट् क्रिया-निरतिचारमास्तां तवे,
यत्थ प्रथनकर्मणे विहितरक्षिकाबन्धनम् ॥

यह मन्त्र पढ़कर आचार्य यजमानादिक को दाहिने हाथ में रक्षाबन्धन करे तथा मुख्य यजमानके द्वारा अपने दाहिने हाथ में भी रक्षाबन्धन करावे ।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अस्य सर्वाङ्गशुद्धिं कुरुत कुरुत स्वाहा । यह पद्य और मन्त्र पढ़कर जाप्यकर्त्ताओं को तिलक किया जावे ।

ओं ह्रीं अर्हं क्ष्मां ठः ठः स्वाहा । यह मन्त्र पढ़कर बाजोटा पर सिंहासन रख, उस पर विनायक यन्त्र स्थापित किया जावे ।

अङ्गन्यास वा सकलीकरण

शरीर की सुरक्षा और दशों दिशाओं से आने वाली विघ्न-बाधाओं की निवृंत्ति (छुटकारे) के लिये नीचे लिखे अनुसार अङ्गन्यास (शारीरिक पवित्रता) किया जावे ।

दोनों हाथों के अंगुष्ठ से लेकर कनिष्ठा पर्यन्त पांचों अंगुलियों में क्रमशः श्री अरिहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु परमेष्ठी की स्थापना की जावे ।

जाप्य में बैठने वाले महानुभाव सर्वप्रथम दोनों हाथों के अंगूठों को बराबरी से मिलाकर सामने करें । तथाः—

"ओं ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः ।"

इस मन्त्र का उच्चारण कर अंगूठों पर मस्तक झुकावें । फिर दोनों हाथों की तर्जनियों (अंगूठा के पास की अंगुलियों) को बराबरी से मिलाकर सामने करें । और:—

"ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः ।"

यह मन्त्र पढ़कर उन पर शिर झुकावें । फिर बीच की अंगुलियों को मिलाकर सामने करें । और:—

"ओं ह्रू णमो आइरीयाणं ह्रू मध्यमाभ्यां नमः ।"

यह मन्त्र पढ़कर मध्यमाओं पर शिर झुकावें । फिर दोनों अनामिकाओं को मिलाकर सामने करें, और:—

ओं ह्रीं णमो उवज्झायाणं ह्रौं अनामिकाभ्यां नमः ।"

यह मन्त्र पढ़कर अनामिकाओं पर शिर झुकावें । फि

दोनों छिंगुरियों को मिलाकर सामने करें । और:—

"ओं हः णमो लोए सव्वसाहूणं हः कनिष्ठाभ्यां नमः।"

यह मन्त्र पढ़कर कनिष्ठाओं पर शिर झुकावें। फिर दोनों हथेलियों को बराबर सामने फैलाकर —

"ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः करतलाभ्यां नमः।"

यह मन्त्र पढ़कर करतलों पर शिर झुकावें। फिर दोनों करपृष्ठों को बराबर सामने फैलाकर:--

"ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः करपृष्ठाभ्यां नमः।"

यह मन्त्र पढ़कर करपृष्ठों पर शिर झुकावें। तदनन्तरः—

"ओं ह्रां णमो अरिहन्ताणं ह्रां मम शीर्षं रक्ष रक्ष स्वाहा।"

यह मन्त्र पढ़कर दाहिने हाथ से शिर का स्पर्श करें या शिर पर फिर पुष्प छोड़ें।

"ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं मम वदनं रक्ष रक्ष स्वाहा।"

यह मन्त्र पढ़कर मुख का स्पर्श करें।

"ओं ह्रूं णमो आइरीयाणं ह्रूं मम हृदयं रक्ष रक्ष स्वाहा।"

यह मन्त्र पढ़कर हृदय का स्पर्श करें।

'ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं मम नाभिं रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर नाभि का स्पर्श करें।

'ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः मम पादौ रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर पैरों का स्पर्श करें।

'ओं ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां पूर्वदिशासमागतविघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर पूर्वदिशा में पुष्प अथवा पीले त

'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं दक्षिणदिशासमागतविघ्नान् निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर दक्षिणदिशा में पुष्प या पीले सरसों फेकें।

'ॐ ह्रूँ णमो आइरीयाणं ह्रूँ पश्चिमदिशासमागत-विघ्नान् निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर पश्चिमदिशा में पुष्प या पीले सरसों फेकें।

'ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं उत्तरदिशासमागत-विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर उत्तरदिशा में पुष्प या पीले सरसों फेकें।

ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः सर्वदिशासमागत-विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर दशों दिशाओं में पुष्प या पीले सरसों फेकें।

'ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां मां रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर अपने शरीर का स्पर्श करें।

'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं मम वस्त्रं रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर अपने वस्त्रों का स्पर्श करें।

'ॐ ह्रूँ णमो आइरीयाणं ह्रूँ मम पूजाद्रव्यं रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर पूजा की सामग्री का स्पर्श करें।

'ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं मम स्थलं रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर अपने खड़े होने की जगह की ओर देखें।

'ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः सर्वजगत् रक्ष रक्ष स्वाहा।'

यह मन्त्र पढ़कर चुल्लू में जल लेकर सब ओर फेकें।

ओं क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः।

यह मन्त्र पढ़कर सर्व दिशाओं में पुष्प फेकें।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः।

यह मन्त्र पढ़कर सर्व दिशाओं में पुनः पुष्प फेकें।

ओं ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूँ ब्लूँ द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय ठः ठः ह्रीं स्वाहा।

इस मन्त्र से चुल्लू के जल को मन्त्रित कर अपने सिर पर सींचें। फिर प्रतिष्ठाचार्यः—

'ओं नमोऽर्हते सर्वं रक्ष हूं फट् स्वाहा।'

इस मन्त्र से पुष्प या पीले सरसों को सात वार मन्त्रित कर परिचारकों के शिर पर डाले। और:—

'ओं क्षूं हूं फट् किरीटिं घातय घातय परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखण्डान् कुरु कुरु, परमुद्रां छिन्द छिन्द, परमन्त्रान् भिन्द भिन्द, क्षां क्षः फट् स्वाहा।'

इस मन्त्र से पुष्पों अथवा पीले सरसों को नौ वार मन्त्रित कर सब दिशाओं में फेंके।

इसके बाद जाप्य करने वाले महाशय अपने अपने आसनों पर बैठ जावें और यन्त्र के सामने बैठने वाला कोई एक जाप्यकर्त्ता नीचे लिखे अनुसार दैनिक पूजन, नवदेव पूजन तथा विनायकयन्त्र की पूजा करे।

अथ पूजन प्रारम्भः

यन्त्राभिषेक (स्रग्धरा छन्द)

मध्ये तेजस्ततः स्याद्, वलयमथ धनुःसंख्यकोष्ठेषु पञ्च ।
पूज्यान् संस्थाप्य वृत्ते, तत उपरितने, द्वादशाम्भोरुहाणि ॥
तत्र स्यु र्मङ्गला-न्युत्तमशरणपदान्, पञ्चपूज्यानमरर्षीन् ।
धर्मप्रख्यातिभाज-स्त्रिभुवनपतिना, वेष्टयेदं कुशाढ्यम् ॥

ओं ह्रीं भूर्भुवः स्वरिह एतद्विघ्नौघवारकं यन्त्रं वयं परिषिञ्चयामः । यह मन्त्र बोलकर सिद्धयन्त्र का अभिषेक करे ।

पूजन-पीठिका

ओं जय, जय, जय । नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु ।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व — साहूणं ॥

चत्तारि मङ्गलं-अरिहंता मङ्गलं, सिद्धा मङ्गलं, साहू मङ्गलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मङ्गलं । चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

(ओं नमोऽर्हते स्वाहा) थाल में पुष्पाञ्जलिक्षेपण करना चाहिए ।

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत् पञ्च-नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥

अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् परमात्मानं, स वाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥२॥
अपराजित—मन्त्रोऽयं, सर्व—विघ्न—विनाशकः ।
मङ्गलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मङ्गलं मतः ॥३॥
एसो पञ्च णमोयारो, सव्वपावप्प — णासणो ।
मङ्गलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मङ्गलम् ॥४॥
अर्ह – मित्यक्षरं ब्रह्म, – वाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्ध चक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥
कर्माष्टक—विनिर्मुक्तं, मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी – भूतपन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् (थाल में पुष्पाञ्जलि क्षेपना)

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकै-श्चरुसुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः ।
धवलमङ्गलगान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाम यजामहे ॥

ओं ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामधेयेभ्यः अर्घ्यम् ।

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरों ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु, जन्म के पातक हरों ॥
इह भांति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिवपँकति मचों ।
अरिहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निर-ग्रन्थ नित पूजा रचों ॥
दोहा—वसुविध अर्घ सँजोय के, अति उछाह मन कीन ।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम् ।
जल फल आठों दर्व, अरघ कर प्रीति धरी है ।
गणधर इन्द्रनि हूतैं, थुति पूरी न करी है ॥
द्यानत सेवक जानके, (हो) जगतें लेहु निकार ।
सीमन्धर जिन आदि दे, बीस विदेह मँझार ॥
श्री जिनराज हो, भव तारण तरण जहाज ॥
ओं ह्रीं श्रीसीमन्धरादिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽर्घ्यम् ।
यावन्ति जिन-चैत्यानि, विद्यन्ते भुवन - त्रये ।
तावन्ति सततं भक्त्या, त्रिः परीत्य नमाम्यहम् ॥
ओं ह्रीं त्रिलोकसम्बन्ध्यकृत्रिमजिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यम् ।

अथ सिद्ध पूजा

इन्द्रवज्रा छन्द

सिद्धान् विशुद्धान्—वसुकर्ममुक्तान्,
त्रैलोक्य-शीर्षस्थित—चिद्विलासान् ।
संस्थापये भाव—विशुद्धि—दातॄन्,
सन्मङ्गलं प्राज्य—समृद्धयेऽहम् ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री वसुकर्मनाशक सिद्धसमूह ! अत्रावतर २ सम्वौषट् ।
ओं ह्रीं श्री वसुकर्मनाशक सिद्धसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्री वसुकर्मनाशकसिद्ध समूह । अत्र मम सन्निहितो
भव भव वषट् परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

नोट—यदि आकुलता न होवे तो यहां पर पूजन की पुस्तकों में छपी हुई सिद्धपूजा का अष्टक और जयमाल विधिपूर्वक पढ़ना चाहिये । किन्तु अर्घ्य नीचे लिखा पद्य पढ़कर ही चढ़ाया जाय ।

रथोद्धताच्छन्द

अष्टकर्मगणनाशकारकान्, कष्टकुण्डलिसुदष्टगारुडान् ।
स्पष्टबोधपरिमीतविष्टपान्, अर्चतोऽघनशनाय पूजये ॥
ओं ह्रीं श्री वसुकर्मरहितेभ्यः सिद्धेभ्यः अर्घ्यम् ।

नव देव पूजन

अरिहन्तसिद्धसाधु-त्रितयं, जिनधर्म-बिम्ब-वचनानि ।
जिननिलयान् नवदेवान्, संस्थापये भावतो नित्यम् ॥१॥
ओं ह्रीं श्री नवदेवसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट ।
ओं ह्रीं श्री नवदेवसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।
ओं ह्रीं श्री नवदेवसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ॥

ये घाति-जाति-प्रतिघातजातं, शक्राद्यलङ्घ्यं जगदेकसारम् ।
प्रपेदिरेऽनन्तचतुष्टयं तान्, यजे जिनेन्द्रानिह कर्णिकायाम् ॥
ओं ह्रीं श्री अर्हत्परमेष्ठिने अर्घ्यम् ॥२॥

निःशेषबन्धक्षयलब्धशुद्ध – बुद्धस्वभावान्निजसौख्यवृद्धान् ।
आराधये पूर्वदले सुसिद्धान्, स्वात्मोपलब्ध्यै स्फुटमष्टधेष्ट्या ॥
ओं ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ॥२॥

ये पञ्चधाचारमरं मुमुक्षू-नाचारयन्ति स्वयमा-चरन्तः ।
अभ्यर्चये दक्षिणदिग्दले ता, नाचार्यवर्यान्स्वपरार्थचर्यान् ॥
ओं ह्रीं श्री आचार्यपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ॥३॥

येषामुपान्त्यं समुपेत्य शास्त्रा–ण्यधीयते मुक्तिकृते विनेयाः ।
अपश्चिमान्पश्चिमदिग्दलेस्मिन् – नमूनुपाध्यायगुरून्महानि ॥
ओं ह्रीं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ॥४॥

ध्यानैकतानानवहिःप्रचारान्, सर्वंसहान् निर्वृति-साधनार्थं ।
सम्पूजयाम्युत्तरदिग्दले तान्,साधूनशेषान् गुणशीलसिन्धून् ॥
ओं ह्रीं श्री साधुपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ॥५॥

आराधकानभ्युदये समस्तान्, निःश्रेयसे वा धरति ध्रुवं यः ।
तं धर्ममाग्नेयविदिग्दलान्ते, सम्पूजये केवलिनोपदिष्टम् ॥
ओं ह्रीं श्री जिनधर्माय अर्घ्यम् ॥६॥

सुनिश्चितासम्भवबाधकत्वात्, प्रमाण-भूतं सनयप्रमाणम् ।
यजे हि नानाष्टकभेदवेदं मत्यादिकं नैर्ऋतकोणपत्रे ॥
ओं ह्रीं श्री जिनागमाय अर्घ्यम् ॥७॥

व्यपेतभूषायुध-वेषदोषान्, उपेत - निःसङ्गत-यार्द्रमूर्तीन् ।
जिनेन्द्रबिम्बान्भुवनत्रयस्थान्,समर्चये वायुविदिग्दलेऽस्मिन् ॥
ओं ह्रीं श्री जिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यम् ॥८॥

शालत्रयान्सध्वनि कन्तुमान-स्तम्भालयान्मङ्गल-मङ्गलाढ्यान् ।
गृहान् जिनानामकृतान्कृतांश्च, भूतेशकोणस्थदले यजामि ॥
ओं ह्रीं श्री जिनचैत्यालयेभ्यः अर्घ्यम् ॥९॥

मध्ये — कर्णिकमर्हदार्यमनघं, बाह्येऽष्टपत्रोदरे ।
सिद्धान् सूरिवरांश्च पाठकगुरून्, साधूंश्च दिक्पत्रगान् ॥
सद्धर्मागम-चैत्य-चैत्य-निलयान्, कोणस्थदिक्पत्रगान् ।
भक्त्या सर्वसुरासुरेन्द्रमहितान्, तानष्टधेष्ट्या यजे ॥
ओं ह्रीं श्री अर्हदादिनवदेवेभ्यः पूर्णार्घ्यम् ॥१०॥

१, ४, ७, ९ उपजाति । २, ३, ५, ६ इन्द्रवज्रा । ८ उपेन्द्रवज्रा ।
१० शार्दूलविक्रीडित ।

पञ्च-परमेष्ठी पूजा

(सिद्धयन्त्र या विनायकयन्त्र पूजा)

परमेष्ठिन् ! जगत्त्राण-करणे मङ्गलोत्तम !
इतः शरण ! तिष्ठ त्वं, सन्निधौ भव पावन !!

ओं ह्रीं श्रीअसिआउसा मङ्गलोत्तमशरणभूताः ! अत्रावतरतावतरत संवौषट् ! ओं ह्रीं श्रीअसिआउसा मङ्गलोत्तमशरणभूताः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीअसिआउसा मङ्गलोत्तम-शरणभूताः ! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत ।

अथाष्टकम्

पङ्केरुहायातपराग-पुञ्जैः, सौगन्ध्यवद्भिः सलिलैः पवित्रैः ।
अर्हत्पदाभाषित-मङ्गलादीन्, प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ।।
गङ्गा-सिन्धू वर पानी, सुवरण भारी भर लानी ।
गुरु पञ्च परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ।।

ओं ह्रीं श्रीमङ्गलोत्तमशरणभूतेभ्यः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः जलम् ।

काश्मीर-कर्पूर-कृतद्रवेण, संसार-तापाप-हृतौ युतेन ।
अर्हत्पदाभाषित-मङ्गलादीन्, प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ।।
शुचि गन्ध लाय मनहारी, भव ताप-शमन करतारी ।
गुरु पञ्च परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ।।

ओं ह्रीं श्रीमङ्गलोत्तमशरणभूतेभ्यः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः चन्दनम् ।

शाल्यक्षतैरक्षत-मूर्तिमद्भि - रब्जादिवासेन सुगन्धवद्भिः ।
अर्हत्पदाभापित-मङ्गलादीन्, प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ॥
शशिसम शुचि अक्षत लाये, अक्षयगुण हित हुलसाये ।
गुरु-पञ्च-परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ॥

ओं ह्रीं श्रीमङ्गलोत्तमशरणभूतेभ्यः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः अक्षतम् ।

कदम्बजात्यादिभवैः सुरद्रुमै, र्जातैर्मनोजातविपाशदक्षैः ।
अर्हत्पदाभापित-मङ्गलादीन्, प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ॥
शुभ कल्पद्रुम सुम लीजे, जग वशकर काम नशीजे ।
गुरु पञ्च-परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ॥

ओं ह्रीं श्रीमङ्गलोत्तमशरणभूतेभ्यः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः पुष्पम् ।

पीयूषपिण्डैश्च शशाङ्ककांति-स्पर्धाभिविष्टै - र्नयनप्रियैश्च ।
अर्हत्पदाभापित-मङ्गलादीन्, प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ॥
पकवान मनोहर लाये, जासे क्षुद-रोग नशाये ।
गुरु-पञ्च-परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ॥

ओं ह्रीं श्रीमङ्गलोत्तमशरणभूतेभ्यः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः नैवेद्यम् ।

ध्वस्तान्धकारप्रसरैः सुदीपै-र्घृतोद्भवैः रत्नविनिर्मितैर्वा ।
अर्हत्पदाभापित-मङ्गलादीन्, प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ॥
मणि-रत्नमई शुभ दीपा, तम-मोह-हरण उद्दीपा ।
गुरु-पञ्च-परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ॥

ओं ह्रीं श्रीमङ्गलोत्तमशरणभूतेभ्यः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः दीपम् ।

स्वकीयधूमेन नभोऽवकाश-संव्याप्नु - वह्निश्च सुगन्धधूपैः ।
अर्हत्पदाभाषित-मङ्गलादीन् , प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ॥
शुभ गन्धित धूप चढ़ाऊँ, कर्मों के वंश जलाऊँ ।
गुरु पञ्च परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीमङ्गलोत्तमशरणभूतेभ्यः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः धूपम् ।

नारङ्ग - पूगादिफलैरनर्घ्यैं, - हृन्मानसादिप्रियतर्पकैश्च ।
अर्हत्पदाभाषित-मङ्गलादीन् , प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ॥
सुन्दर - स्वर्भव फल लाये, शिवहेतु सुचरण चढ़ाये ।
गुरु-पञ्च - परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीमङ्गलोत्तमशरणभूतेभ्यः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः फलम् ।

अच्छाम्भः शुचिचन्दनाक्षतसुभै-र्नैवेद्यकैश्चारुभिः ।
दीपधूपफलोत्तमैः समुदितैरेभिः सुपात्रस्थितैः ॥
अर्हत्सिद्धसुसूरिपाठकमुनीन् , लोकोत्तमान् मङ्गलान् ।
प्रत्यूहौघनिवृत्तये शुभकृतः, सेवे शरण्यानहम् ॥
सुवरण के पात्र धराये, शुचि आठों द्रव्य मिलाये ।
गुरु-पञ्च परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीमङ्गलोत्तमशरणभूतेभ्यः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः अर्घ्यम् ।

卐

अथ प्रत्येक पूजनम्

वसन्ततिलकाच्छन्द

कल्याणपञ्चक-कृतोदयमाप्त-मीश—
मर्हन्त—मच्युतचतुष्टय--भासुराङ्गम् ।
स्याद्वादवागमृत-सिन्धुशशाङ्क-कोटि-
मर्चे जलादिभि-रनन्तगुणालयं तम् ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तचतुष्टयादिलक्ष्मीं विभ्रतेऽर्हत्परमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

कर्माष्टकेध्म-चय - मुत्पथमाशु हुत्वा,
सद्ध्यानवन्हिविसरे स्वयमात्मवन्तम् ।
निश्रेयसा-मृत - सरस्यथ सन्निनाय ,
तं सिद्धमुच्चपददं परिपूजयामि ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टकर्मकाष्ठगणभस्मीकृते श्रीसिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

स्वाचार-पञ्चक-मपि स्वय-माचरन्तः,
ह्याचारयन्ति भविका-न्निजशुद्धि-भाजः ।
तानर्चयामि विविधैः सलिलादिभिश्च,
प्रत्यूहनाशनविधौ निपुणान् पवित्रैः ॥३॥

ॐ ह्रीं पञ्चाचारपरायणाय आचार्यपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

अङ्ग-बाह्यपरिपाठन - लालसाना—
मष्टाङ्गज्ञानपरिशीलन - भवितानाम् ।
पादारविन्दयुगलं खलु पाठकानां,
शुद्धैर्जलादिवसुभिः परिपजयामि ॥४॥

ॐ ह्रीं श्रीद्वादशाङ्गपठनपाटनोद्यताय उपाध्यायपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

आराधनासुखविलास — महेश्वराणां,
सद्धर्म्मलक्षण—मयात्मविकस्वराणाम् ।
स्तोतुं गुणान् गिरिवनादिनिवासभाजाम्,
एषोऽर्घतश्चरणपीठभुवं — यजामि ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीत्रयोदशप्रकारचारित्राराधकसाधुपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

अर्हन्मङ्गलमर्चामि, जगन्मङ्गलदायकम् ।
प्रारब्धकर्मविघ्नोघ - प्रलयाय पयोमुखैः ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हन्मङ्गलायार्घ्यम् ।

चिदानन्दलसद्वीची—मालीढं गुणशालिकम् ।
सिद्धमङ्गलमर्चेऽहं, सलिलादिभिरुज्ज्वलैः ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धमङ्गलायार्घ्यम् ।

बुद्धिक्रियारसतपो - विक्रियौषधिमुख्यकाः ।
नर्धयो मोहदा यस्य, साधुमङ्गलमर्चये ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री साधुमङ्गलायार्घ्यम् ॥८॥

लोकालोकस्वरूपस्य, वक्तृ धर्ममङ्गलम् ।
अर्चे वादित्रनिर्घोष-गीतनृत्यैः घनादिभिः ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री केवलिप्रज्ञप्तधर्ममङ्गलायार्घ्यम् ९॥

लोकोत्तमोऽर्हन् जयतां, भवबाधाविनाशकः ।
अर्च्यतेऽर्घ्येण स मया, कुकर्मगणहानये ॥१०॥

ॐ ह्रीं श्री अर्ह लोकोत्तमायार्घ्यम् ॥१०॥

विश्वाग्रशिखरस्थायी, सिद्धो लोकोत्तमो मया ।
मह्यते महसामन्द—चिदानन्दसुमेदुरः ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धलोकोत्तमायार्घ्यम् ॥११॥

राग–द्वेष – परित्यागी, साम्य – भावाव-बोधकः ।
साधुलोकोत्तमोऽर्घ्येण, पूज्यते सलिलादिभिः ॥१२॥

ॐ ह्रीं श्री साधुलोकोत्तमायार्घ्यम् ॥१२॥

उत्तमत्वमया भास्वान् सद्धर्मो विष्टपोत्तमः ।
अनन्तसुख-संस्थानं, यज्यतेऽम्भः सुमादिभिः ॥१३॥

ॐ ह्रीं श्री केवलिप्रज्ञप्तधर्मलोकोत्तमायार्घ्यम् ॥१३॥

अर्हंस्त्वमेव शरणं, नान्यथा शरणं मम ।
तत्त्वां भावविशुद्ध्यर्थम्, अर्हयामि जलादिभिः ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हच्छरणायार्घ्यम् ॥१४॥

व्रजामि सिद्धशरणं, परावर्तनपञ्चकम् ।
भित्वा स्वसुखसन्दोह, – सम्पन्नमिति पूजये ॥१५॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धशरणायार्घ्यम् ॥१५॥

आश्रये साधुशरणं, सिद्धान्त – प्रतिपादनैः ।
न्यक्कृताज्ञानतिमिर-मिति शुद्ध्या यजामि तम् ॥१६॥

ॐ ह्रीं श्री साधुशरणायार्घ्यम् ॥२६॥

धर्म एव सदा बन्धुः, स एव शरणं मम ।
इह वान्यत्र संसारे, इति तं पूजयेऽधुना ॥१७॥

ॐ ह्रीं श्री केवलिप्रज्ञप्तधर्मशरणायार्घ्यम् ॥२७॥

संसार – दुःखहनने निपुणं जनानां ।
नाद्यन्त-चक्रमिति सप्तदश-प्रमाणम् ॥
सम्पूजये विविधभक्ति—भरावनम्रः ।
शान्तिप्रदं भुवनमुख्यपदार्थसार्थैः ॥१८॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हदादिसप्तदशमन्त्रेभ्यः समुदायार्घ्यम् ॥२८॥

जयमाला

वसन्ततिलका छन्द

विघ्नप्रणाशन-विधौ सुरमर्त्य-नाथा,
अग्रेसरं जिन ! वदन्ति भवन्तमिष्टम् ॥
आनाद्यनन्तयुगवर्तिनमत्र कार्ये,
विघ्नौघवारणकृतेऽहमपि स्मरामि ॥
गणानां मुनीनामधीशत्वतस्ते ।
गणेशाख्यया ये भवन्तं स्तुवन्ति ।
सदा विघ्नसन्दोहशान्तिर्जनानां,
करे संलुठत्यायतक्षेमकाणाम् ॥

भुजङ्गप्रयात छन्द

कलेः प्रभावात्कलुषाशयेषु,
जनेषु मिथ्या - मदवासितेषु ।
प्रवर्तितो यो गणराजनाम्ना,
कथं स कुर्याद् भववाधिशोषम् ॥

उपजाति छन्द

यो दृक्सुधातोषित-भव्यजीवो,
यो ज्ञानपीयूषपयोधि-तुल्यः ।
यो वृत्तदूरी - कृतपापपुञ्जः,
स एव मान्यो गणराजनाम्ना ।

यतस्त्वमेवासि विनायको मे,
दृष्टेष्टयोगान्नविरुद्धवाचः।
त्वन्नाममात्रेण पराभवन्ति,
विघ्नारयस्तर्हि किमत्र चित्रम्॥

* मालती छन्द *

जय जय जिनराज त्वद्गुणान् को व्यनक्ति,
यदि सुरगुरुरिन्द्रः कोटि-वर्ष-प्रमाणम्।
वदितुमभिलषेद्वा पारमाप्नोति नो चेत्,
कतिथ इह मनुष्यः स्वल्पबुद्धया समेतः॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हदादिसप्तदशमन्त्रेभ्यः अर्घ्यम्।

श्रियं बुद्धिमनाकुल्यं, धर्म-प्रीति-विवर्धनम्।
गृहिधर्मे स्थितिं भूयः, श्रेयांसि मे दिश त्वरम्॥

इत्याशीर्वादः।

—०—

जप का संकल्प

पूजा के पश्चात् प्रतिष्ठाचार्य जाप्यकर्त्ताओं के हाथ में कुछ फल-अक्षत-चांदी तथा पुष्प (फूल) देकर अथवा कुछ न हो तो जलमात्र देकर निम्नलिखित संकल्प पढ़वावे-

ओम् जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे ...... देशे ... .प्रान्ते ... नगरे...... ऋतौ ... मासे ... ... पक्षे ... तिथौ .... सम्वत्सरे ... जैनमन्दिरे ... कार्यस्य निर्विघ्नसमाप्त्यर्थं ....इति मन्त्रस्य...........................इति प्रमितस्य जाप्यस्य सङ्कल्पं कुर्मः । निर्विघ्नं समाप्तिर्भवतु अर्हं नमः स्वाहा ।

यह संकल्प मंत्र पढ़कर हाथ में लिया हुआ सामान अथवा जल यन्त्र के सामने चढ़ा दे ।

प्रतिष्ठाचार्य सबके मुख से जाप्य-मन्त्र का उच्चारण सुनकर यदि मन्त्र अशुद्ध हो तो शुद्ध करा दे । जाप्य करने वाले नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़कर निश्चित जाप्य मन्त्र का जाप शुरू कर दें ।

जाप्य के लिये धूप शुद्ध तैयार की जाय । बाजार की अशुद्ध धूप अग्नि में क्षेपना पाप का कारण है । जाप्य में जप की प्रधानता है, आहुति की नहीं । क्योंकि आहुतियां हवन के साथ हो ही जाती हैं । प्रत्येक माला की समाप्ति पर धूप की आहुति दाहिने हाथ से दी जा सकती है । अतएव माला

दाहिने हाथ से ही फेरना चाहिए । हवन में आहुति की प्रधानता है, अतः आहुति भी दाहिने हाथ से ही देना चाहिये । जाप्यकर्त्ता महाशयों को जप पर्यन्त ब्रह्मचर्य से रहना और शुद्ध भोजन करना चाहिये । परिणाम अत्यन्त उज्ज्वल एवं निर्मल रखना चाहिये । जाप्यकर्त्ताओं की देखरेख के लिये एक परिचारक पास में नियुक्त रखना चाहिये । जाप्यकर्त्ता परस्पर वार्तालाप नहीं करे ।

जाप्य के लिये जो संकल्प किया है उसे एक कागज पर लिखकर मध्य कलश के पास रख लेना चाहिए । एक व्यक्ति एक कागज पर जाप्य का हिसाव लिखता रहे । निश्चित अवधि के भीतर अपना संकल्पित जाप्य पूरा कर लेना चाहिये ।

हवन-विधि

जिस दिन हवन करना हो उसके दो दिन पूर्व मण्डप में वेदी के सन्मुख आपस में एक अंगुल का अन्तर देकर चौकोर, गोल और त्रिकोण तीन कुण्ड वनवा लेना चाहिने । वीच का चौकोर कुण्ड १-१ अरत्नि (मुट्ठी वंधे हुए हाथ के वरावर) लम्वा, चौड़ा और उतना ही गहरा वनाया जावे ।

चौकोर कुण्ड की दक्षिण दिशा में जिसकी प्रत्येक भुजा १-१ अरत्नि चौड़ी हो और जो १ अरत्नि गहरा हो ऐसा त्रिकोण कुण्ड वनाया जाय ।

बीच के चौकोर कुण्ड की उत्तरदिशा में गोलकुण्ड बनाया जाय। इस कुण्ड का व्यास व गहराई भी १-१ अरत्नि प्रमाण हो।

कुण्डों के बाहरी भागों में ३-३ कटनी बनाई जावें। यदि तीन कुण्ड बनवाने में असुविधा हो तो एक चौकोर कुण्ड बनाकर शेष दो कुण्डों की उसी में स्थापना की जावे।

यदि हवन में बैठने वालों की संख्या अधिक हो तो अलग से १-१ अरत्नि प्रमाण लम्बे चौड़े तथा चार इंच ऊँचाई वाले चौकोर स्थण्डिल बना लेना चाहिये।

प्रत्येक हवनकुण्ड के चारों कोनों में पलाश की खूंटी बनाकर गाड़ी जावें वा उनमें नाड़ा लपेटा जावे। तथा चारों कोनों में दीपक जलाकर रखे जांय। वा तूस वेष्ठित श्रीफल सहित मिट्टी के कलश रखे जावें।

कुण्डों के भीतर १-१ चांदी का सांथिया रखा जावे। यदि चांदी के सांथिया न हों तो कुण्डों के भीतर केशर से सांथिया बना दिये जावें।

हवनकुण्डों के बाजुओं में इन्द्र, इन्द्राणी और जाप्य करने वाले व्यक्ति ही बैठें। अन्य लोग स्थण्डिलों पर बैठाये जावें। हवन के लिये साकल्य (हव्य-सामग्री) और समिधाएँ पहले से तैयार करली जावें। हवन में बैठने वाले केवल एक वस्त्र पहिन कर हवन में कदापि नहीं बैठें।

हवनकुण्ड का आकार
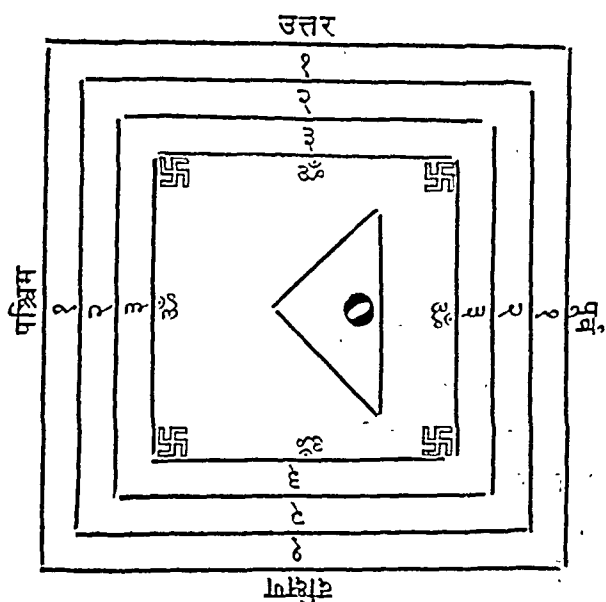
वेदी का आकार

नोट—यदि कारणवश वेदी न बन सके तो चौड़े पटिया या पीपा आदि से निम्नप्रकार रचना कर कार्य चला लेना चाहिये।
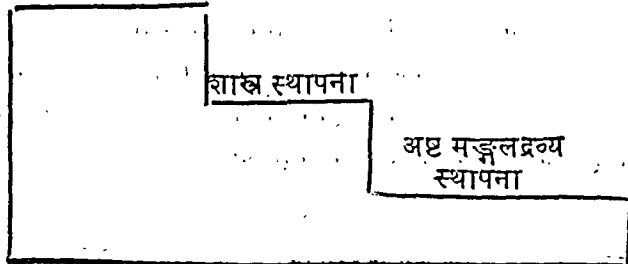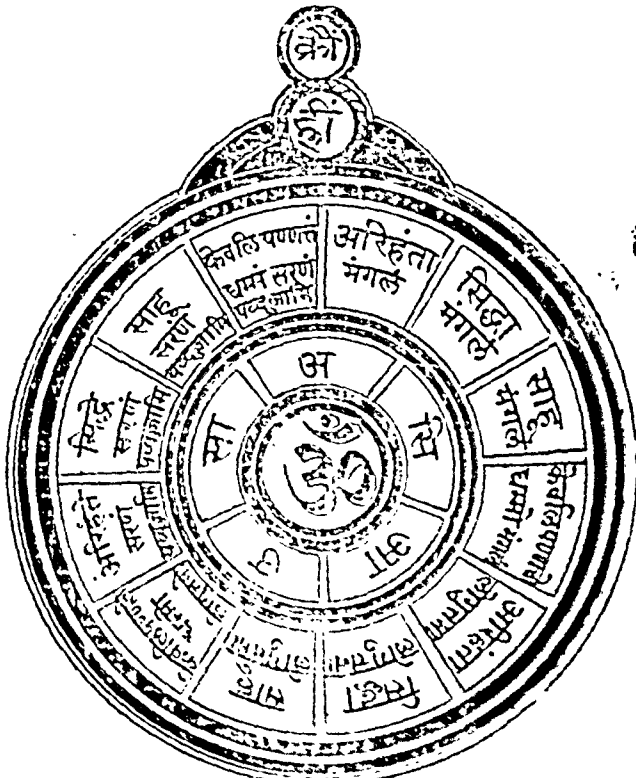
सिद्धयंत्र
या
[विनायक यंत्र.]
क्रौं
ह्रीं
अरिहंता मंगलं
सिद्धा मंगलं
साहू मंगलं
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि
साहू सरणं पव्वज्जामि
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
अरिहंते सरणं पव्वज्जामि
अ
सि
आ
उ
सा
ॐ
सूचना
यह यंत्र यदि समय पर बना बनाया न मिले तो केशर से रकाबी पर बनाकर स्थापन कर देना चाहिये।

वेदी पर स्थापना का नियम

ऊर्ध्वायां सिद्धबिम्बस्य, स्थापनां श्रुतवान् क्रियात् ।
तद्भावे तु पूर्वोक्तं, सिद्धादिकं तु यन्त्रकम् ॥
स्थापयेत् तदधोभागे, श्रुतमापं तु पूजयेत् ।
तृतीय-कटनी — मध्ये, मङ्गल-द्रव्य-संस्थिते ॥
तत्रैव गुरु—पूजार्थं, स्थाप्याः ऋद्धयः क्रमात् ॥

प्रथम कटनी पर सिद्धप्रतिमा या सिद्धयन्त्र, द्वितीय कटनी पर शास्त्र, तृतीय कटनी पर अष्ट मङ्गलद्रव्य और चौंसठ ऋद्धि-यन्त्र की स्थापना करना चाहिये । ऋद्धियां रकावी या कागज पर केशर से लिखकर रखना चाहिये । उक्त पद्य में सिद्धप्रतिमा की स्थापना लिखी है, परन्तु उसकी जगह सिद्धयन्त्र ही स्थापित करना योग्य है ।

वेदी का परिमाण

विस्तारितां हस्तचतुष्टयेन, हस्तोच्छ्रितां मण्डपवामभागे ।
स्तम्भैश्चतुर्भिःकृतशोभितांगां, वेदीं विधानेप्रवदन्ति सन्तः ॥

प्रथम कटनी की लंबाई ४ हाथ, चौड़ाई ३ हाथ, ऊँचाई १ हाथ,
द्वितीय कटनी की लंबाई ४ हाथ, चौड़ाई २ हाथ, ऊँचाई १ हाथ,
तृतीय कटनी की लंबाई ४ हाथ, चौड़ाई १ हाथ, ऊँचाई १ हाथ,

विनायक मन्त्र जहां स्थापित किया है उसी के बगल में 'मङ्गलकलश' की स्थापना करना चाहिये । मंगलकलश में ४ सुपाड़ी, ३ हल्दी की गांठें वा १।) रुपया डाला जावे । ऊपर श्रीफल (नारियल) रखकर तूस या पीला वस्त्र लपेट कर वह कलश नाल (पंचरंगसूत) से सुन्दर रीति से बांधा जावे ।

हवन का सामान

अष्टद्रव्य और साकल्य — चांवल, गरी (गोला), बादाम, लवङ्ग, कपूर, केशर, धूप, अगरबत्ती, घी, बूरा, गरी का चूरा, नारियल, पिस्ता, छुहारा, जायफल।

समिध्—पांचों चन्दन, पीपल की लकड़ी, बड़ की लकड़ी, आम की लकड़ी, आकड़ा (अकौवा), कपास, ढाक और भरभूंट (अद्धाझारा), ये सब सूखी, पतली, छोटी और बेघुनी हों।

मन्दिरजी का सामान—छत्र ७, चंवर ४, सिंहासन १, ठोना, धूपदान, जलकलश १, पूजा के वर्तन २ जोड़ी, कलशा ७, अष्टमंगल-द्रव्य, सिद्धयंत्र, चन्देवा १, पलासना (अछावर) ४, शास्त्र जी १, बन्धनवार ४, जपमाला २, उरसा, मूठा।

फुटकर सामान - सुपारी, हल्दीगांठ, रोली, पंचरंगा सूत, रुई, माचिस, लोटा, छोटे दीपक, खूटियां, चमची, आम के घौरा, पिसी हल्दी, मँहदी, फूलमायें बड़ी छोटी, यज्ञोपवीत, छोटी ध्वजायें, गोटा लच्छी, पगड़ी छोटी, खादी आधा मीटर, टूल पीला आधा मीटर, भोडल (चमक सुनहरी), स्वस्तिक, चन्देवा, सुई, धागा, पंचरंग कागज, नकद रुपया, चुवन्नी टकी चार, सफेद कागज, कूंड़ो इत्यादि। शुद्ध, स्वदेशी और यथाशक्ति होना चाहिये। अधिक और अप्राप्य वस्तुओं के लिये श्रावकों को बाध्य नहीं करना चाहिये।

मुहूर्त—कई जगह विधिविधान के मुहूर्त का उल्लंघन कर दिया जाता है, किन्तु इससे विधानकर्त्ता को भारी हानि होती है। इसलिये सभी विधिविधान सुनिश्चित मुहूर्त में ही होना चाहिये।

हवन की तैयारी

आधानादि समस्त संस्कारों में होम करना आवश्यक है। होम की संक्षिप्त विधि इस प्रकार है:—

होमादि क्रिया विवाहादि संस्कारों में घर पर तथा प्रतिष्ठा, व्रतावतरण आदि में श्रीजिनमन्दिरजी में की जाती है। इसलिए गृह या मन्दिर के किसी प्रशान्त वा उत्तम स्थान में आठ हाथ लम्बी, आठ हाथ चौड़ी तथा एक हाथ ऊँची तीन कटनीं की एक वेदी वनाई जावे।

यह वेदी और कुण्ड आदि जिस दिन हवन करना हो उसके दो दिन पूर्व तैयार कर लेना चाहिये।

इस बड़ी वेदी के ऊपर पश्चिम की ओर एक हाथ जगह छोड़कर एक हाथ लंबी, एक हाथ चौड़ी, एक हाथ ऊँची एक छोटी वेदी और वनाई जावे।

इसमें भी तीन कटनीं हों। इस छोटी वेदी पर विनायक यन्त्र स्थापित किया जावे।

यन्त्र के सामने तीन छत्र, तीन चक्र (धर्मचक्र) और स्वस्तिक (सांथिया) स्थापित किया जावे।

वेदी की दूसरी कटनी पर शास्त्र जी वा तीसरी कटनी पर अष्टमङ्गलद्रव्य स्थापित किये जावें।

इस छोटी वेदी के सामने एक हाथ जगह छोड़कर तीन कुण्ड वनाये जावें। वीच का कुण्ड १-१ अरत्नि (मुट्ठी बँधे हुए हाथ के बरावर) लम्बा, चौड़ा और उतना ही गहरा चतुष्कोण (चौकोर) वनाया जाय। इस कुण्ड के ऊपर के भाग में चारों ओर तीन तीन मेखलायें (कटनीं) वनाई जावें।

इस चौकोर कुण्ड के दक्षिण की ओर (दांई ओर) त्रिकोण कुण्ड बनाया जावे। इस कुण्ड की तीनों भुजायें एक एक अरत्नि लम्बी हों, गहराई भी एक ही अरत्नि हो। तीनों भुजाओं में चौकोर कुण्ड के समान मेखला (कटनियां) भी तीन तीन हों तथा चौकोर कुण्ड के उत्तर की ओर गोल कुण्ड बनाया जावे। जिसका व्यास और गहराई एक अरत्नि-प्रमाण हो तथा मेखलायें भी तीन हों।

इन सब कुण्डों की मेखलाओं में से प्रथम मेखला की चौड़ाई-ऊँचाई पांच मात्रा (पांच-अंगुल) द्वितीय मेखला की चार मात्रा (चार-अंगुल) और तृतीय मेखला की चौड़ाई ऊंचाई तीन मात्रा (तीन अंगुल) होना चाहिये। तथा प्रत्येक कुण्ड का अंतर एक मात्रा (एक अंगुल) होना चाहिये।

इन कुण्डों की आठों दिशाओं में आठ दिक्पालों के पीठ (स्थान) बनाये जावें। यह सब बनाकर जलादिक से शुद्धता कर सबकी पूजा की जावे। चतुष्कोण, त्रिकोण और गोल कुण्ड को जलचन्दनादि से चर्चा जावे।

इनमें से चतुष्कोण कुण्ड की तीर्थङ्करकुण्ड, त्रिकोण की गणधरकुण्ड और गोलकुण्ड की शेषकेवलिकुण्ड संज्ञा है।

चतुष्कोण कुण्ड की अग्नि 'गार्हपत्य', त्रिकोणकुण्ड की अग्नि 'आह्वनीय' और वृत्तकुण्ड की अग्नि की 'दक्षिणाग्नि' संज्ञा है।

बड़ी वेदी के चारों कोनों पर चार स्तम्भ खड़े कर ऊपर चँदोवा बांधा जावे। तोरण, माला, मुक्ताहार और बन्धनवार आदि से मण्डप सुसज्जित किया जावे। तथा अष्टमङ्गलद्रव्य भी यथास्थान स्थापित किये जावें।

यदि तीन कुण्ड वनाने में असुविधा हो तो एक चौकोर कुण्ड वनाकर शेष दो कुण्डों की उसी में स्थापना की जावे।

यदि हवनकर्त्ताओं की संख्या अधिक हो तो एक अरत्निप्रमाण तथा पांचमात्रा (पांच अंगुल) ऊँचाई वाले चौकोर स्थण्डिल और वना लेना चाहिये।

हवन कुण्डों के चारों कोनों में पलाश की खूंटियां गाढ़ कर उनमें पंचरंगा सूत (नाल) लपेट देना चाहिए। तथा चारों कोनों में प्रज्ज्वलित घृत के चार २ दीपक रखना चाहिए।

कुण्डों के भीतर चांदी का एक एक सांथिया रखना चाहिए। यदि चाँदी का सांथिया न हो तो कुण्डों के भीतर केशर से सांथिया का आकार वना देना चाहिये।

समिधा

जो लकड़ी हवन में डाली जाती है उसे समिधा कहते हैं। पीपल, पलाश, आक, आम, अपामार्ग, खदिर तथा कपास की सूखी, वेघुनी, पतली और छोटी लकड़ी को समिधा वनाना चाहिये। शक्त्यानुसार सफेद और लाल चन्दन भी ले लेना चाहिये। समिधा की प्रत्येक लकड़ी सीधी तथा दश अथवा वारह अंगुल लम्वी होना चाहिये।

खदिर (खैर) और पलाश की लकड़ी उसी दिन की टूटी काम में आती है। अपामार्ग और आक (अ-कौवा) की लकड़ी एक ही दिन की काम में आ सकती है।

होम करने वाला कुण्डों की पूर्वदिशा की ओर दर्भासन पर पद्मासन माड़कर पश्चिम की ओर (विनायकयन्त्र

के सन्मुख) मुख कर बैठे। होमादि द्रव्यों को यथास्थान स्थापित कर परिचारकों को (सहायता देने वालों को) अपने २ काम में नियुक्त करे। होम की समाप्तिपर्यन्त मौन धारण कर परमात्मा का ध्यान कर श्रीजिनेन्द्रदेव को अर्घ्य दे।

अनन्तर एक दर्भपूल में थोड़ासा घी लपेटकर मन्त्र पढ़ते हुए अग्नि जलाई जाय साथमें शुद्धघृत भी छोड़ा जाय।

अग्नि जलने के वाद अग्नि का आह्वानन कर अर्घ्य दिया जाय। फिर गार्हपत्य अग्नि में से थोड़ीसी अग्नि लेकर उत्तर दिशा के गोलकुण्ड में अग्नि जलाई जावे। तथा गोलकुण्ड में से अग्नि लेकर दक्षिणदिशा के त्रिकोणकुण्ड में अग्नि जलाई जावे।

दाहिने हाथ को ऊँचा उठाकर अँगुलियों को मिलाकर अंगुलियों पर अँगूठे को रखकर मन्त्र पढ़ते हुये आहुति दी जाय। बीच में जो घी की आहुति दी जाती है वह इस प्रकार दी जावे कि जिससे अग्नि की ज्वाला वढ़ जाय। यदि ज्वाला अधिक बढ़ जाय तो दर्भपूल से गाय के दूध का सिंचन किया जावे।

होम का समय

व्रतावतरण (व्रतोद्यापन), विवाह, सूतक, पातक, मन्दिर वेदी प्रतिष्ठा, नूतनगृह - निर्माण (उद्घाटन), ग्रहपीड़ा और महारोगादि की शान्ति के हेतु तथा आधानादि विधानों (संस्कारों) में होम करना आवश्यक है।

सुसज्जित होमशाला में हवनकर्त्ता-जन अपने अपने स्थान पर खड़े होकर सर्व प्रथम मङ्गलाष्टक पढ़ते हुए होमकुण्ड पर पुष्पवर्षा करें। जबतक हवनकार्य समाप्त न हो तब तक के लिये हवनकर्त्ता मौन धारण करें।

ॐ ह्रीं च्वीं भूः स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर होमकुण्ड की भूमिपर पुष्पवर्षा को जावे।

'ॐ ह्रीं अत्रस्थक्षेत्रपालाय स्वाहा ।'

यह मन्त्र पढ़कर हवनभूमिस्थ क्षेत्रपाल को नैवेद्य दिया जावे।

'ॐ ह्रीं वायुकुमाराः सर्वविघ्नविनाशाय महीं पूतां कुरुत कुरुत हूं फट् स्वाहा' इति भूमिसम्मार्जनम्)

यह मन्त्र पढ़कर दर्भपूल से भूमि का मार्जन किया जावे।

'ॐ ह्रीं मेघकुमारा धरां प्रक्षालयत प्रक्षालयत अं हं सं तं पं स्वं झं यं क्षः फट् स्वाहा' (इति भूमिसेचनम्)

यह मन्त्र पढ़कर हवन की भूमि (कुण्ड) पर जल सिञ्चन किया जावे।

ॐ ह्रीं अग्निकुमार ! हल्व्यूं ज्वल ज्वल तेजःपतये अमिततेजसे ते स्वाहा' (इति कर्पूरदर्भाग्निज्वालनम्)

यह मन्त्र पढ़कर कर्पूर या सूखे डाभ जलाकर भूमि को सन्तप्त किया जावे।

'ॐ ह्रीं भूमिदेवते ! इदं जलादिकमर्चनं ग्रहाण ग्रहाण स्वाहा' (इति भूम्यर्चनम्)

यह मन्त्र पढ़कर हवनभूमि पर अर्घ्य चढ़ाया जावे।

'ॐ ह्रीं अर्हं क्षं वं वं श्रीपीठस्थापनं करोमीति स्वाहा' (इति होमकुण्डात्प्रत्यक् पीठस्थापनम्)

यह मन्त्र पढ़कर होम कुण्ड के पश्चिम में निर्मित तीन कटनी वाली वेदी की ऊपर वाली कटनी पर पीठ (सिंहासन) स्थापित किया जावे।

'ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः स्वाहा' (इतिश्रीपीठार्चनम्)

यह मन्त्र पढ़कर सिंहासन को अर्घ्य दिया जावे ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं जगतां सर्वशान्ति करोतु । श्रीपीठे प्रतिमा (विनायकयन्त्र) स्थापनं करोमि स्वाहा । (इति श्रीपीठे प्रतिमा (विनायकयन्त्र) स्थापनम् ।)

यह मन्त्र पढ़कर सिंहासनपर प्रतिमा या विनायकयन्त्र विराजमान किया जावे । और पूर्वोक्त विनायकयन्त्रपूजा की जावे । या

संक्षिप्त विनायक यन्त्र-पूजा

ॐ ह्रीं अर्हं नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा ॥अर्घ्यम्

ॐ ह्रीं अर्हं नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा ॥अर्घ्यम्॥

ॐ ह्रीं अर्हं नमोऽनादिनिधनेभ्यः स्वाहा ॥अर्घ्यम्॥

ॐ ह्रीं अर्हं नमो नृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा ॥अर्घ्यम्॥

ॐ ह्रीं अर्हं नमोऽनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा ॥अर्घ्यम्॥

ॐ ह्रीं अर्हं नमोऽनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा ॥अर्घ्यम्॥

ॐ ह्रीं अर्हं नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा ॥अर्घ्यम्॥

ॐ ह्रीं अर्हं नमोऽनन्तसुखेभ्यः स्वाहा ॥अर्घ्यम्॥

इत्यष्टाभिः मन्त्रैः प्रतिमा (विनायकयन्त्र) पूजनम् ।

उपरोक्त आठ मन्त्र पढ़कर प्रतिमा (विनायक-यन्त्र) की पूजा की जावे ।

'ॐ ह्रीं धर्मचक्रायाप्रतिहततेजसे स्वाहा' (इति धर्मचक्रार्चनम्)

यह मन्त्र पढ़कर धर्मचक्रके लिये अर्घ्य चढ़ाया जावे ।

ॐ ह्रीं श्वेतछत्रत्रयश्रियै स्वाहा' (इति छत्रत्रयार्चनम्) ।'
यह मन्त्र पढ़कर छत्रत्रय को अर्घ दिया जावे ।

'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं हूँ सौं ह्रौं सर्वशास्त्रप्रकाशिनि वाग्वादिनि अत्रअवतर अवतर, अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः, अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट् ।' (इति सरस्वतीदेव्याः आह्वाननम्)। यह मन्त्र पढ़कर जिनवाणी (सरस्वती देवी) का आह्वान किया जावे ।

'ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूत -- स्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्ग-श्रुतज्ञानायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।' (इति सरस्वतीपूजनम्)
यह मन्त्र पढ़कर जिनवाणी (सरस्वती देवी) को अर्घ्य चढ़ाया जावे ।।

'ॐ ह्रींसम्यग्दर्शन-ज्ञानचरित्र-पवित्र तरगात्रचतुरशीतिलक्षोत्तर गुणाष्टादशसहस्रशीलधर-गणधरचरण अत्र आगच्छ आगच्छ, तिष्ठ तिष्ठ, सन्निहितं भव भव (इति निर्ग्रन्थगुरुवराह्वाननम्) यह मन्त्र पढ़कर निर्ग्रन्थ गुरु का आह्वान किया जावे ।

'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादि-गुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।' (इति निर्ग्रन्थगुरुपूजनम्) यह मन्त्र पढ़कर निर्ग्रन्थ गुरु को अर्घ्य चढ़ाया जावे।

'ॐ ह्रीं उपवेशनभूः शुध्यतु स्वाहा' (इति होमकुण्डपूर्वभागे दर्भपूलेनोपवेशनभूमिशोधनम्)

यह मन्त्र पढ़कर होमकुण्ड के पूर्वभाग में हवन करने वाले अपने बैठने की भूमि को दर्भपूल से शुद्ध करें।

'ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमोनमः ब्रह्मासने अहमुपविशामि स्वाहा' (इति होमकुण्डाग्रे पश्चिमाभिमुखं होता उपविशेत्)

यह मन्त्र पढ़कर होम करने वाले व्यक्ति होमकुण्ड के पश्चिम की ओर मुख करके आसन बिछाकर बैठें।

'ॐ ह्रीं स्वस्तिविधानाय पुण्याहवाचनार्थं च कलशं स्थापयामीति स्वाहा, (इति शालिपुञ्जोपरि श्रीफलसहित-पुण्याह-कलश-स्थापनम्)

यह मन्त्र पढ़कर चांवल की पुञ्ज पर शुद्ध प्रासुक जल से परिपूर्ण, एवं सूतवेष्ठित श्रीफलसहित तथा मालाओं से सुशोभित पुण्याहवाचन कलश स्थापित किया जावे।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरिपुण्डरीकमहापुण्डरीक-गङ्गा- सिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदापयोधिशुद्धजलसुवर्णघटप्रक्षालितनवरत्नगन्धाक्षतपुष्पार्जितमामोदकं पवित्रं कुरु कुरु झं झं झौं झौं वं वं मं मं हं हं

सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः स्वाहा' (इति जलेन प्रसिञ्च्य जलपवित्रीकरणम्)

'ॐ ह्रीं नेत्राय संवौषट्' (इतिपुण्याहकलशार्चनम्)

यह मन्त्र पढ़कर मङ्गलकलश को अर्घ्य दिया जावे।

'ॐ ह्रीं अज्ञानतिमिरहरं दीपकं स्थापयामीति स्वाहा' (इति प्रज्वलितदीपस्थापनम्) यह मन्त्र पढ़कर चारों दिशाओं में प्रज्वलित चार घृतदीप स्थापित किये जावें। यन्त्र के निकट एक 'अखण्ड दीपक' भी स्थापित किया जावे।

'ॐ ह्रीं पवित्रतरजलेन होमद्रव्यशुद्धिं करोमि' (इति होमद्रव्यप्रक्षालनम्)

यह मन्त्र पढ़कर जलसिंचन कर होमसामग्री शुद्ध की जावे।

'ॐ ह्रीं होमद्रव्यमादधामि स्वाहा' (इति होमद्रव्याधानम्)

यह मन्त्र पढ़कर होमद्रव्य अपने पास रखी जावें।

'ॐ ह्रीं आज्यपात्रमुपस्थापयामि' (इत्याज्यपात्रस्थापनम्)

यह मन्त्र पढ़कर घृतपात्र अपने पास रखा जावे।

'ॐ ह्रीं परमेष्ठिभ्यो नमः' (इति परमात्मध्यानम्)

यह मन्त्र पढ़कर परमात्मा का ध्यान किया जावे।

'ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं ध्यातृभ्यः अभीप्सितफलदाय स्वाहा' (इति परमपुरुषायार्घ्यप्रदानम्)

यह मन्त्र पढ़कर परमात्मा को अर्घ्य दिया जावे। पश्चात्-निम्नलिखित मन्त्रोचारण कर क्रम से जल, चन्दन आदि अष्ट द्रव्य चढ़ाये जावें।

ॐ ह्रीं नीरजसे नमः	(जलम्) ।
ॐ ह्रीं शीलगन्धाय नमः	(चन्दनम्) ।
ॐ ह्रीं अक्षताय नमः	(अक्षतम्) ।
ॐ ह्रीं विमलाय नमः	(पुष्पम्) ।
ॐ ह्रीं दर्पमथनाय नमः	(नैवेद्यम्) ।
ॐ ह्रीं ज्ञानोद्योताय नमः	(दीपम्) ।
ॐ ह्रीं श्रुतधूपाय नमः	(धूपम्) ।
ॐ ह्रीं अभीष्टफलदाय नमः	(फलम्) ।
ॐ ह्रीं परमसिद्धाय नमः	(अर्घ्यम्) ।

'ॐ ह्रीं नीरजसे नमः' यह मन्त्र सुगन्ध द्रव्य से कागज पर लिखकर त्रिकोण कुण्ड में स्थापित किया जाय वा सांथिया रखा जावे ।

'ॐ ह्रीं दर्पमथनाय नमः यह मन्त्र सुगन्ध द्रव्य से कागज पर लिखकर गोल कुण्ड में स्थापित किया जावे तथा रजतपत्र का सांथिया भी रखा जावे ।

'ॐ ह्रीं होमार्थम् अग्नित्रयाधारभूतां समिधां स्थापयामि' (इति समित्स्थापनम्) यह मन्त्र पढ़कर कुण्ड में विधिवत् समिधाएँ स्थापित की जावें ।

'ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं अग्नि स्थापयामि' (इत्यग्निस्थापनम्) यह मन्त्र पढ़कर कपूर जलाकर कुण्ड में अग्नि स्थापित की जावे ।

जिनेन्द्र-वाक्यैरिव सुप्रसन्नैः

संशुष्कदर्भाग्र-धृताग्नि-कीलैः ।

कुण्ड-स्थिते सेन्धनशुद्धवह्नौ,

संधूक्षणं सम्प्रति सन्तनोमि ॥

'ॐ ह्रीं श्रीं रं रं रं रं दर्भपूलेन ज्वलय ज्वलय नमः फट् स्वाहा' (इत्यग्निसन्धूक्षणम्) यह मन्त्र पढ़कर डाभ के पूल से अग्नि का सन्धूक्षण किया जावे ।

श्री तीर्थनाथ-परिनिर्वृतिपूतकाले,

ह्यागत्य वह्निसुरपा मुकुटोल्लसद्भिः ।

वह्निव्रजै जिनपदेह-मुदार-भक्त्या,

देहुस्तदग्नि-सहमर्चयितुं दधामि ॥

'ॐ ह्रीं चतुरस्रे तीर्थङ्करकुण्डे गार्हपत्याग्नये अर्घ्यम् ।

गणाधिपानां शिव-लब्धि-कालेऽ

ग्नीन्द्रोत्तमाङ्गस्फुरदुग्ररोचीः ।

संस्थाप्य पूज्यश्च समाह्वनीयः,

प्रत्यूहशान्त्यै विधिना हुताशः ॥२॥

ॐ ह्रीं वृत्ते द्वितीये गणधरकुण्डे आह्वनीयाग्नये अर्घ्यम् ।

श्री दक्षिणाग्निः परिकल्पितश्च,

किरीटदेशात्प्रणताग्नि-देवैः ।

निर्वाण-कल्याणक-पूत-काले,

तमर्चये विघ्नविनाशनाय ॥३॥

,ॐ ह्रीं त्रिकोणे तृतीयसामान्यकेवलिकुण्डे दक्षिणाग्नयेऽर्घ्यम् ।

पश्चात् शुद्ध घृत से निम्नलिखित आहुतियां दी जावें।

ॐ ह्रीं अर्हद्भ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा।
ॐ ह्रीं सूरिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं पाठकेभ्यः स्वाहा।
ॐ ह्रीं साधुभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं जिनधर्मेभ्यः स्वाहा।
ॐ ह्रीं जिनागमेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं जिनबिम्बेभ्यः स्वाहा।
ॐ ह्रीं जिनचैत्यालयेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रायस्वाहा।

इसके बाद नीचे लिखे आहुतिमन्त्रों का उच्चारण करते हुए उनके अन्त में नमः और स्वाहा शब्द लगाकर हस्तक्रिया पूर्वक थोड़ा थोड़ा साकल्य अग्निकुण्ड में क्षेपना चाहिये।

अथ आहुति मन्त्राणि

पीठिका—मन्त्र

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओं परमजाताय नमः स्वाहा ॥३॥ ओं अनुपमजाताय नमः स्वाहा ॥४॥ ओं स्वप्रधानाय नमः स्वाहा ॥५॥ ओं अचलाय नमः स्वाहा ॥६॥ ओं अक्षयाय नमः स्वाहा ॥७॥ ओं अव्याबाधाय नमः स्वाहा ॥८॥

ओं अनन्तज्ञानाय नमः स्वाहा ॥९॥ ओं अनन्तदर्शनाय नमः स्वाहा ॥१०॥ ओं अनन्तवीर्याय नमः स्वाहा ॥११॥ ओं अनन्तसुखाय नमः स्वाहा ॥१२॥ ओं नीरजसे नमः स्वाहा ॥१३॥ ओं निर्मलाय नमः स्वाहा ॥१४॥

ओं अच्छेद्याय नमः स्वाहा ॥१५॥ ओं अभेद्याय नमः

स्वाहा ॥ १६ ॥ ओं अजराय नमः स्वाहा ॥ १७ ॥ ओं अमराय नमः स्वाहा ॥१८॥ ओं अप्रमेयाय नमः स्वाहा ॥१९॥ ओं अगर्भवासाय नमः स्वाहा ॥२०॥ ओं अक्षोभाय नमः स्वाहा ॥२१॥ ओं अविलीनाय नमः स्वाहा ॥२२॥

ओं परमघनाय नमः स्वाहा ॥ २३ ॥ ओं परमकाष्ठायोगरूपाय नमः स्वाहा ॥२४॥ ओं लोकाग्रनिवासिने नमः स्वाहा ॥२५॥ ओं परमसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२६॥ ओं अर्हत्सिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२७॥ ओं केवलिसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२८॥ ओं अन्तःकृतसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२९॥ ओं परम्परासिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥३०॥ ओं अनादिपरम्परासिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥३१॥ ओं अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥३२॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! आसन्नभव्य ! आसन्नभव्य ! निर्वाणपूजार्ह ! निर्वाणपूजार्ह ! अग्नीन्द्र ! अग्नीन्द्र ! स्वाहा ॥३३॥

इस प्रकार ३३ आहुतियां देकर नीचे लिखा आशीर्वादसूचक काम्यमन्त्र पढ़कर एक आहुति देकर जनता पर पुष्पवर्षा करे।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा।

जाति-मन्त्र

ओं सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥२॥ ओं अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥ ३ ॥ ओं अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्ये स्वाहा

॥४॥ ओं अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥५॥ ओं अनुपमजन्मनः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥ ६ ॥ ओं रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥७॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! ज्ञानमूर्ते ! ज्ञानमूर्ते ! सरस्वति ! सरस्वति ! स्वाहा ॥८॥ सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

निस्तारक-मन्त्र

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्ञाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओं षट्कर्मणे स्वाहा ॥३॥ ओं ग्राम-पतये स्वाहा ॥ ४ ॥ ओं अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा ॥ ५ ॥ ओं स्नातकाय स्वाहा ॥६॥ ओं श्रावकाय स्वाहा ।७॥ ओं देवब्राह्मणाय स्वाहा ॥८॥ ओं सुब्राह्मणाय स्वाहा ॥ ९ ॥ ओं अनुपमाय स्वाहा ॥१०॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! निधिपते ! निधिपते ! वैश्रवण ! वैश्रवण ! स्वाहा ॥ ११ ॥ सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

ऋषि-मन्त्र

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्ञाताय नमः ॥२॥ ओं निर्ग्रन्थाय नमः ॥ ३ ॥ ओं वीतरागाय नमः ॥४॥ ओं महाव्रताय नमः ॥५॥ ओं त्रिगुप्तये नमः ॥६॥ ओं महायोगाय नमः ॥७॥ ओं विविधयोगाय नमः ॥८॥ ओं विविधर्धये नमः ॥ ९ ॥ ओं अङ्गधराय नमः ॥१०॥ ओं पूर्वधराय नमः ॥११॥ ओं गणधराय नमः

स्वाहा ॥ १६ ॥ ओं अजराय नमः स्वाहा ॥ १७ ॥ ओं अमराय नमः स्वाहा ॥१८॥ ओं अप्रमेयाय नमः स्वाहा ॥१९॥ ओं अगर्भवासाय नमः स्वाहा ॥२०॥ ओं अक्षोभाय नमः स्वाहा ॥२१॥ ओं अविलीनाय नमः स्वाहा ॥२२॥

ओं परमघनाय नमः स्वाहा ॥ २३ ॥ ओं परमकाष्ठायोगरूपाय नमः स्वाहा ॥२४॥ ओं लोकाग्रनिवासिने नमः स्वाहा ॥२५॥ ओं परमसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२६॥ ओं अर्हत्सिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२७॥ ओं केवलिसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२८॥ ओं अन्तःकृतसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२९॥ ओं परम्परासिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥३०॥ ओं अनादिपरम्परासिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥३१॥ ओं अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥३२॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! आसन्नभव्य ! आसन्नभव्य ! निर्वाणपूजार्ह ! निर्वाणपूजार्ह ! अग्नीन्द्र ! अग्नीन्द्र ! स्वाहा ॥३३॥

इस प्रकार ३३ आहुतियां देकर नीचे लिखा आशीर्वादसूचक काम्यमन्त्र पढ़कर एक आहुति देकर जनता पर पुष्पवर्षा करे।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा।

जाति-मन्त्र

ओं सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥२॥ ओं अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥ ३ ॥ ओं अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्ये स्वाहा

॥४॥ ओं अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥५॥ ओं अनुपमजन्मनः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥ ६ ॥ ओं रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥७॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! ज्ञानमूर्ते ! ज्ञानमूर्ते ! सरस्वति ! सरस्वति ! स्वाहा ॥८॥
सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

निस्तारक–मन्त्र

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओं षट्कर्मणे स्वाहा ॥३॥ ओं ग्रामपतये स्वाहा ॥ ४ ॥ ओं अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा ॥ ५ ॥ ओं स्नातकाय स्वाहा ॥६॥ ओं श्रावकाय स्वाहा ॥७॥ ओं देवब्राह्मणाय स्वाहा ॥८॥ ओं सुब्राह्मणाय स्वाहा ॥ ९ ॥ ओं अनुपमाय स्वाहा ॥१०॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! निधिपते ! निधिपते ! वैश्रवण ! वैश्रवण ! स्वाहा ॥ ११ ॥
सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

ऋषि–मन्त्र

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय नमः ॥२॥ ओं निर्ग्रन्थाय नमः ॥ ३ ॥ ओं वीतरागाय नमः ॥४॥ ओं महाव्रताय नमः ॥५॥ ओं त्रिगुप्तये नमः ॥६॥ ओं महायोगाय नमः ॥७॥ ओं विविधयोगाय नमः ॥८॥ ओं विविधर्द्धये नमः ॥ ९ ॥ ओं अङ्गधराय नमः ॥१०॥ ओं पूर्वधराय नमः ॥११॥ ओं गणधराय नमः

॥१२॥ ओं परमर्षिभ्यो नमोनमः ॥१३ ओं अनुपमजाताय नमोनमः ॥१४॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! भूपते ! भूपते ! नगरपते ! नगरपते ! कालश्रमण ! कालश्रमण ! स्वाहा ॥१५॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु । अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

सुरेन्द्र—मन्त्र

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय नमः ॥२॥ ओं दिव्यजाताय स्वाहा ॥३ ओं दिव्यार्चिर्जाताय स्वाहा ॥४॥ ओं नेमिनाथाय स्वाहा ॥५॥ ओं सौधर्माय स्वाहा ॥६॥ ओं कल्पाधिपतये स्वाहा ॥७॥ ओं अनुचराय स्वाहा ॥८॥ ओं परम्परेन्द्राय स्वाहा ॥९॥ ओं अहमिन्द्राय स्वाहा ॥१०॥ ओं परमार्हताय स्वाहा ॥११॥ ओं अनुपमेयाय स्वाहा ॥१२॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! कल्पपते ! कल्पपते ! दिव्यमूर्ते ! दिव्यमूर्ते ! वज्रनामन् ! वज्रनामन् स्वाहा ॥१३॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु ! अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

परमराजादि-मन्त्र

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओं अनुपमेन्द्राय स्वाहा ॥३॥ ओं विजयार्चजाताय स्वाहा ॥४॥ ओं नेमिनाथाय स्वाहा ॥५॥

ओं परमजाताय स्वाहा ॥६॥ ओं परमार्हताय स्वाहा ॥७॥ ओं अनुपमाय स्वाहा ॥८॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! उग्रतेजः ! उग्रतेजः ! दिशाञ्जय ! दिशाञ्जय ! नेमिविजय ! नेमिविजय ! स्वाहा ॥९॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु ! अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

परमेष्ठि-मन्त्र

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय नमः ॥२॥ ओं परमजाताय नमः ॥३॥ ओं परमार्हताय नमः ॥४॥ ओं परमरूपाय नमः ॥५॥ ओं परमतेजसे नमः ॥६॥ ओं परमगुणाय नमः ॥७॥ ओं परमस्थानाय नमः ॥८॥ ओं परमयोगिने नमः ॥९॥ ओं परमभाग्याय नमः ॥१०॥ ओं परमर्धये नमः ॥११॥ ओं परमप्रसादाय नमः ॥१२॥ ओं परमकांक्षिताय नमः ॥१३॥ ओं परमविजयाय नमः ॥१४॥ ओं परमविज्ञानाय नमः ॥१५॥ ओं परमदर्शनाय नमः ॥१६॥ ओं परमवीर्याय नमः ॥१७॥ ओं परमसुखाय नमः ॥१८॥ ओं सर्वज्ञाय नमः ॥१९॥ ओं अर्हते नमः ॥२०॥ ओं परमेष्ठिने नमोनमः ॥२१॥ ओं परमनेत्रे नमोनमः ॥२२॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! त्रिलोकविजय ! त्रिलोकविजय ! धर्ममूर्ते धर्ममूर्ते ! धर्मनेमे ! धर्मनेमे ! स्वाहा ॥२३॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु । अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

* लवंग और घृत की आहुतियां *

ॐ ह्रीं अर्हद्भ्यः स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा ॥२॥ ॐ ह्रीं आचार्येभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ ह्रीं उपाध्यायेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ ह्रीं सर्वसाधुभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ ह्रीं जिनधर्मेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ ह्रीं जिनागमेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ ह्रीं जिनचैत्येभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ ह्रीं जिनचैत्यालयेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनेभ्यः स्वाहा ॥१०॥ ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥ ॐ ह्रीं अस्मद्गुरुभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥ ॐ ह्रीं अस्मद्विद्यागुरुभ्यः स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं तपोभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥ इति लवंगाहुतयः ।

नोट—ये आहुतियां लवंगों और घृत से क्रमशः पृथक्-पृथक् देना चाहिये ।

शान्तिमन्त्राहुतयः

ओम् नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणदोषाय दिव्यतेजोमूर्तये शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृच्छुद्रोपद्रवनाशनाय श्रीशान्तिनाथाय नमः। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः असिआउसा सर्वशान्ति कुरुत कुरुत स्वाहा ॥१॥

नोट–विघ्नशान्ति के निमित्त इस मन्त्र से ९ आहुतियां साकल्य से ही देना चाहिये ।

ओं ह्रीं अर्हं असिआउसा सर्वशान्ति कुरुत कुरुत स्वाहा।

इस मन्त्र की १०८ आहुतियाँ साकल्य से ही दी जावें।

इसके पश्चात् जिस मन्त्र का जाप्य किया हो उस मन्त्र के 'दशमांश' की साकल्य से आहुतियां दी जावे। प्रतिष्ठाचार्य यह मन्त्र मन में बोलकर स्वाहा शब्द का उच्चारण करे और तदनन्तर हवन करने वाले सभी महाशय स्वाहा बोलकर आहुति देवें। आहुति देने के बाद हवन करने वाले खड़े होकर नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करें।

हवन समाप्त होने पर जो घट स्थापित किया था उसे हाथ में लेकर इन्द्र वृहच्छान्ति-धारा दे।

वृहत्-शान्ति-धारा

मन्त्र-पाठ

ओं णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंङ्गलं-अरिहन्ता मङ्गलं, सिद्धा मङ्गलं, साहू मङ्गलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मङ्गलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। ओं अनादिसिद्धमहामन्त्रपूजनभक्तिप्रसादात् सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा।

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहतविद्यायै णमो अरिहंताणं ह्रौं सर्वशान्ति र्भवतुस्वाहा।

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं नमोऽर्हते भगवते स्वाहा।

ओं ह्रीं श्रीं सिद्धचक्राधिपतये अष्टगुणसमृद्धाय फट् स्वाहा।

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलनिवासिनि, पापात्मक्षयङ्करि, श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते क्षीरवद्धवले अमृतसम्भवे सरस्वति तव भक्तिप्रसादात् मम पापविनाशनं भवतु क्षां क्षीं क्षूं क्षः वं वं हूं हूं स्वाहा। सरस्वतीभक्तिप्रसादात् सुज्ञानं भवतु।

ओं णमो भगवदो वहुमाणसरिसहस्स जस्स चक्कं जलं तं गच्छइ आयासं पायालं भूयलं जुए वा विवादे वा रणांगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु मं रक्ख रक्ख स्वाहा। वर्धमानमन्त्रेण सर्वरक्षा भवतु।

ओं क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा। सर्वरक्षा भवतु।

ओं उसहाइ जिणं पणमामि सया, अमलो विमलो विरजो वरया।
कप्पतरु सव्व कामदुहा, मम रक्ख सहा पुरु विज्जणिही ॥
अट्ठे व य अट्ठसया, अट्ठ सहस्सा य अट्ठ कोडीओ।
रक्खं तुम्म सरीरं, देवासुरपणमिया सिद्धा ॥

ओं ह्रीं श्रीं अर्हं नमः स्वाहा स्वधा। 'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः' एतन्मन्त्रप्रसादात् सर्वभूतव्यन्तरादिबाधाविनाशनं भवतु। ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै नमः। ओं नमोऽर्हते सर्व रक्ष हूं फट् स्वाहा। ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वदिशागतविघ्नविनाशनं भवतु। ओं क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः सर्वदिशागतविघ्नविनाशनं भवतु।

ओं सम्प्रतिकालश्रेयस्करस्वर्गावतरण – जन्माभिषेक–परिनिष्क्रमणकेवलज्ञान – निर्वाणकल्याणकविभूषित–महाभ्युदयश्रीवृषभाजितसम्भवाभिनन्दन – सुमति – पद्मप्रभ–सुपार्श्व–चन्द्रप्रभ – पुष्पदन्त – शीतल–श्रेयो - वासुपूज्य–विमला–नन्त धर्म - शान्ति - कुन्थ्वर–मल्लि–मुनिसुव्रत–नमि – नेमि – पार्श्व – वर्धमान-परमपूजनभक्तिप्रसादात् सर्वशान्तिर्भवतु तुष्टिः पुष्टिश्च भवतु।

ओं ह्रीं लोकोद्योतनकराऽतीतकालसञ्जातनिर्वाण–सागर – महासाधु – विमलप्रभ–शुद्धाभ श्रीधर–सुदत्तामल प्रभोद्धराग्नि – सन्मति – शिव-कुसुमाञ्जलि-शिवगणोत्साह-ज्ञानेश्वर – परमेश्वर – विमलेश्वर – यशोधर–कृष्णमति–ज्ञानमति - शुद्धमति - श्रीभद्र - शान्तेति–चतुर्विंशतिभूत–परमदेवपूजनभक्तिप्रसादात्सर्वशान्तिर्भवतु।

ओं भविष्यत्कालाभ्युदयप्रभव – महापद्मसुरदेव – सुप्रभ-स्वयम्प्रभ-सर्वायुध – जयन्तदेवोदयदेव – प्रभादेवोदङ्कदेव–

प्रश्नकीर्ति - जयकीर्ति - पूर्णबुद्धि-निष्कषाय-विमलप्रभ-बहल-निर्मल-चित्रगुप्त-स्वयम्भूकन्दर्प--जयनाथ-विमलनाथ-दिव्य-वागनन्तवीर्येति चतुर्विंशतिभविष्यत्परमदेवपूजनभक्तिप्रसादात् सर्वशान्तिर्भवतु।

ओं त्रिकालवर्तिपरमधर्माभ्युदय - सीमन्धर - युगमन्धर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयम्प्रभ-वज्रधर-चन्द्रानन--चन्द्रबाहु-भुजङ्गेश्वर-नेमिप्रभु-वीरसेन - महाभद्र - जयदेवाजितवीर्येति पञ्चविदेहक्षेत्रविद्यमानविंशतिपरमदेव - पूजनभक्तिप्रसादात्सर्वशान्तिर्भवतु तुष्टिः पुष्टिश्च भवतु।

पूजिता भरताद्यैश्च, भूपेन्द्रैर्भूरिभूतिभिः।
चतुर्विधस्य सङ्घस्य, शान्तिं कुर्वन्तु शाश्वतीम् ॥१॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥२॥

दुर्भिक्षादि–महादोष – निवारण – परम्पराः।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं, जिनश्रुत-मुनीश्वरः ॥३॥

यत्संस्मरणमात्रेण, विघ्ना नश्यन्ति मूलतः।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं, जिनश्रुत–मुनीश्वराः ॥४॥

सदार्थात् लभते प्राणी, यत्प्रसादात्प्रमोदतः।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं, जिनश्रुत–मुनीश्वराः ॥५॥

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं, णमो जिणाणं, ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अप्रतिचक्रे फट् विचकाय झौ झौं स्वाहा। ऋद्धिमन्त्रभक्तिप्रसादात्सर्वेषां शान्तिर्भवतु। विसूचिका-ज्वरादिरोगविनाशनं भवतु। ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहि-जिणाणं परमोहिजिणाणं शिरोरोगविनाशनं भवतु। ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं अक्षिरोगविनाशनं भवतु। ओं ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं कर्णरोगविनाशनं भवतु। ओं ह्रीं अर्हं णमो कोट्ठबुद्धीणं बीजबुद्धीणं ममात्मनि विवेकज्ञानं भवतु।

ओं ह्रीं अर्हं णमो पदानुसारीणं परस्परविरोधवि-नाशनं भवतु। ओं ह्रीं अर्हं णमो संभिण्णसोदाराणं श्वासरोगविनाशनं भवतु। ओं ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धाणं प्रतिवादिविद्याविनाशनं भवतु। ओं ह्रीं अर्हं णमो सयं-बुद्धाणं कवित्वं पाण्डित्यं वा भवतु। ओं ह्रीं अर्हं णमो वोहियबुद्धाणं अन्यगृहीतं श्रुतज्ञानं भवतु। ओं ह्रीं अर्हं णमो उज्जुमदीणं सर्वशान्तिर्भवतु.

ओं ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीणं बहुश्रुतज्ञानं भवतु। ओं ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीणं सर्ववेदिनो भवन्तु। ओं ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं स्वसमय-परसमयवेदिनो भवन्तु। ओं ह्रीं अर्हं णमो अट्ठंगमहानिमित्तकुसलाणं जीवित-मरणादिज्ञानं भवतु। ओं ह्रीं अर्हं णमो वियणड्ढिपत्ताणं

काङ्क्षितवस्तुप्राप्तिर्भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं उपदेशप्रदेशमात्रज्ञानं भवतु ।

ओं ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं नष्टपदार्थचिन्ताज्ञानं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो पएणसमणाणं आयुष्यावसान-ज्ञानं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं अन्तरीक्ष-गमनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं विद्वेष-प्रतिहतिर्भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं स्थावर-जङ्गमकृतविघ्नविनाशनं भवतु ।

ओं ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं वचस्तम्भनं भवतु ।

ओं ह्रीं अर्हं णमो तत्ततवाणं अग्निस्तम्भनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं जलस्तम्भनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं जलस्तम्भनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं विषरोगादिविनाशनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो घोर गुणाणं दुष्टमृगादिभयविनाशनं भवतु ।

ओं ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणपरक्कमाणं लूतागभन्ति-कावलिविनाशनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणबंभ-चारिणं भूतप्रेतादिभयविनाशनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं सर्वापमृत्युविनाशनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो आमोसहिपत्ताणं अपस्मारप्रलापनचिन्ताविनाशनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहियपत्ताणं गजमारी-विनाशनं भवतु ।

ओं ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं मनुष्यामरोपसर्ग-विनाशनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो मणोबलीणं वचोबलीणं कायबलीणं अपस्मारिरोगाजमारीविनाशनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं अष्टादशकुष्टगण्डमालादि-विनाशनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवीणं सर्व-व्याधिविनाशनं भवतु ।

ओं ह्रीं अर्हं णमो महुरसवीणं समस्तोपसर्गविनाशनं भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं अक्षीण-ऋद्धिर्भवतु । ओं ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणं राजपुरुषादि-भयविनाशनं भवतु ।

ओं ह्रीं णमो भगवदो महद्दिमहावीरवड्ढमाण-बुद्धिरिसीणं समाधिसुखं भवतु । चतुःषष्टि ऋद्धिमन्त्र-पूजनभक्तिप्रसादात् चतुःसङ्घानां सर्वशान्तिर्भवतु । तुष्टिः पुष्टिश्च भवतु । धनधान्यसमृद्धिर्भवतु । रत्नत्रयं भवतु ।

ओं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्रीमत्पार्श्वतीर्थङ्कराय श्रीमद्रत्नत्रयरूपाय दिव्यतेजोमूर्तये प्रभामण्डलमण्डिताय द्वादशगणसहिताय अनन्तचतुष्टयसहिताय समवसरणकेवल-ज्ञानलक्ष्मीशोभिताय अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्-गुणसंयुक्ताय परमपवित्राय सम्यग्ज्ञानाय स्वयम्भुवे सिद्धाय बुद्धाय परमात्मने परमसुखाय त्रैलोक्यमहिताय अनन्त-

संसारचक्रपरिमर्दनाय अनन्तज्ञानदर्शनवीर्यसुखास्पदाय त्रै-लोक्यवशङ्कराय सत्यब्रह्मणे उपसर्गविनाशाय घातिकर्मक्ष-यङ्कराय अजराय अभवाय ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविका-प्रमुखचतुःसङ्घोपसर्गविनाशाय अघातिकर्मविनाशाय देवा-धिदेवाय नमो नमः।

पूर्वोक्तमन्त्राणां पूजन -- भक्तिप्रसारदात् ऋष्यार्यिका-श्रावकश्राविकाणां सर्वक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरति-शोकभयजुगुप्सास्त्रीपुरुषनपुंसकवेदविनाशनं भवतु। मि-थ्यात्वरागद्वेषमोहमत्सरासूयेर्ष्या-विभाव - विकार - विषाद-प्रमादकषायविकथाविनाशनं भवतु। सर्वपञ्चेन्द्रियविषये-च्छास्नेहाशारौद्राकुलताव्याधिदीनतापापदोषविरोधविनाशनं भवतु। सर्वप्रकारविकल्पनिद्रातृष्णाधितापदुःखवैराहङ्कारसङ्क-ल्पविनाशो भवतु। सर्वाहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञाविनाशो भवतु। सर्वोपसर्गविघ्नराजचोरदुष्टमृगेहलोकपरलोकाकस्मा-न्मरणवेदनाशरणत्राणभयविनाशो भवतु। सर्वक्षयरोगकुष्टरो-गज्वरातिसारादिरोगविनाशो भवतु। सर्वनरगजगोमहिषधान्य-वृक्षगुल्मपत्रपुष्पफलमारीराष्ट्रदेशमारीविश्वमारीविनाशो भवतु सर्वमोहनीयज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायवेदनीयनामगोत्रायुः-कर्मविनाशनं भवतु।

—)(—

पुण्याह वाचन

ओम् अद्य भगवतो महापुरुषवरपुण्डरीकस्य परमेण तेजसा व्याप्तलोकालोकोत्तमभङ्गलस्य मङ्गलस्वरूपस्य अमुकनाम्नः विधानकर्तुः सर्वपुष्टिसम्पादनार्थं पुण्याहवाचनां करिष्ये ।

पुण्याहवाचन पढ़ते समय पूर्वमुख खड़े होकर एक श्रीकारयुक्त गहरी रकावी में मङ्गलकलश से अतिसूक्ष्म जलधारा छोड़ी जावे ।

ओम् पुण्याहं पुण्याहम् । त्रिलोकोद्योतनकरातीतकाल-सञ्जातनिर्वाणसागर-महासाधुविमलप्रभशुद्धप्रभश्रीधर-सुदत्ता-मलप्रभोद्धाराङ्गिर - सन्मतिसिन्धुकुसुमाञ्जलिशिवगणोत्साह-ज्ञानेश्वर - परमेश्वर - विमलेश्वरयशोधरकृष्णमतिशुद्धमति-श्रीभद्रातिक्रान्तशान्तेति चतुर्विंशति-भूतपरमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ १ ॥

ओम् सम्प्रतिकालजातश्रेयस्करस्वर्गावतरणजन्माभि-षेक - परिनिष्क्रमणकेवलज्ञाननिर्वाणकल्याणकविभूति - विभू-षितमहाभ्युदय - सम्पन्नश्रीवृषभाजितसंभवाभिनन्दनसुमति-पद्मप्रभसुपार्श्वचन्द्रप्रभपुष्पदन्तशीतलश्रेयोवासुपूज्यविमलान-न्तधर्मशान्तिकुन्थ्वरमल्लिमुनिसुव्रतनमिनेमिपार्श्व - वर्धमानेति चतुर्विंशतिवर्तमानपरमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ २ ॥

ओम् भविष्यत्कालाभ्युदयप्रभवमहापद्मसुरदेवसुपार्श्व-स्वयम्प्रभसर्वात्मभूतदेवपुत्रकुलपुत्रोदङ्कप्रोष्ठिलजयकीर्तिमुनिसुव्रतारनिष्पापनिष्कषायविपुलनिर्मलचित्रगुप्तसमाधिगुप्तस्व—यम्भवनिवर्तकजयनाथविमलनाथदेवपालानन्तवीर्येति चतुर्विंशतिभविष्यत्तीर्थङ्करपरमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ ३ ॥

ओम् त्रिकालवर्तिपरमधर्माभ्युदय-सम्पन्न-सीमन्धर-युग्मन्धरबाहुसुबाहुसञ्जातक--स्वयम्प्रभवृषभाननानन्तवीर्यसुरप्रभविशालकीर्तिवज्रधर-चन्द्राननभद्रबाहुभुजङ्गमेश्वरनेमिप्रभवीरसेन-महाभद्रदेवयशोऽजितवीर्येति पञ्चविदेहक्षेत्रविहरमाणा विंशतितीर्थङ्कर-परमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ ४ ॥

ओम् वृषभसेनादिगणधरदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ ५ ॥

ओम् कोष्ठबीजपादानुसारि-बुद्धिसम्भिन्न-श्रोतृप्रज्ञा-श्रमणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ ६ ॥

ओम् आमर्शक्ष्वेलजल्लमलविड्उत्सर्गसर्वौषधयश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ ७ ॥

ओम् जलफलजङ्घातन्तुपुष्पश्रेणिपत्राग्नि-शिखाकाश-चारणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ ८ ॥

ओम् अक्षीणमहानसा अक्षीणमहालयाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ ९ ॥

ओम् दीप्ततप्तमहोग्रघोरघोरपराक्रमघोरगुणतपसश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ १० ॥

ओम् मनोवाक्कायबलिनश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ ११ ॥

ओम् क्रियाविक्रियाधारिणश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ १२ ॥

ओम् मतिश्रुतावधिमनः – पर्ययकेवलज्ञानिनश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ १३ ॥

ओम् अङ्गाङ्गबाह्यज्ञानदिवाकराः कुन्दकुन्दाद्यनेकदिग-म्बरदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥ धारा ॥ १४ ॥

शान्तिधारा

इह वान्यनगरग्रामदेवतामनुजाः सर्वे गुरुभक्ताः जिन-धर्मपरायणा भवन्तु ॥ धारा ॥ १५ ॥

दानतपोवीर्यानुष्ठानं नित्यमेवास्तु ॥ धारा ॥ १६ ॥

मातृपितृभ्रातृपुत्रपौत्रकलत्रसुहृत्स्वजन–सम्बन्धि–बन्धु-

सहितस्य अमुकस्य............ते धनधान्यैश्वर्यबलद्युतियशः प्रमोदोत्सवाः प्रवर्धन्ताम् ॥ धारा ॥ १७ ॥

तुष्टिरस्तु। पुष्टिरस्तु। वृद्धिरस्तु। कल्याणमस्तु। अविघ्नमस्तु। आयुष्यमस्तु। आरोग्यमस्तु। कर्मसिद्धिरस्तु। इष्टसम्पत्तिरस्तु। निर्वाणपर्वोत्सवाः सन्तु। पापानि शाम्यन्तु घोराणि शाम्यन्तु। पुण्यं वर्धताम्। श्रीः वर्धताम्। कुलगोत्रे चाभिवर्धेताम्। स्वस्ति भद्रं चास्तु। क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा। श्रीमज्जिनेन्द्र-चरणारविन्देष्वा-नन्दभक्तिः सदास्तु।

॥ इति शान्तिधारा समाप्ता ॥

यहां तक पढ़ते हुए मङ्गलकलश से एक श्रीकार लिखित गहरे पात्र में जलधारा छोड़ते जाना चाहिये। पश्चात् पुष्प छोड़ते हुए निम्नलिखित शान्तिस्तव पढ़ना चाहिये।

अथ शान्तिस्तव

वसन्ततिलका छन्द

चिद्रूपभावमनवद्यमिमं त्वदीयं,
ध्यायन्ति ये सदुपधिव्यतिहारमुक्तं।
नित्यं निरञ्जनमनादिमनन्तरूपं,
तेषां महांसि भुवनत्रितये लसन्ति ॥

ध्येयस्त्वमेव भवपञ्चतयप्रसार,
निर्णाशकारणविधौ निपुणत्वयोगात् ।
आत्मप्रकाशकृतलोकतदन्यभाव,
पर्यायविस्फुरणकृत्परमोऽसि योगी ॥ १ ॥

त्वन्नाममन्त्रघन उद्भूतजन्मजात,
दुष्कर्मदावमभिशम्य शुभाङ्कुराणि ।
व्यापादयस्यतुलभक्ति-समृद्धिभाञ्जि,
स्वामिन्नतोऽसि शुभदः शुभकृत्त्वमेव ॥ २ ॥

त्वत्पादतामरसकोषनिवासमास्ते,
चित्तद्विरेफसुकृती मम यावदीश !
तावच्च संसृतिजकिल्विषतापशापः,
स्थानं मयि क्षणमपि प्रतियाति कश्चित् ॥३॥

त्वन्नाममन्त्रमनिशं रसनाग्रवर्ति,
यस्यास्ति मोहमदघूर्णननाशहेतुः ।
प्रत्यूहराजिलगणोद्भवकालकूट—
भीतिर्हि तस्य किमु सन्निधिमेति देव ॥४॥

तस्मात्त्वमेव शरणं तरणं भवाब्धौ,
शान्तिप्रदः सकलदोष-निवारणेन ।
जागर्ति शुद्धमनसा स्मरतो यतो मे,
शान्तिः स्वयं करतले रभसाभ्युपैति ॥ ५ ॥

विसर्जन

जगति शान्तिविवर्धनमंहसां,
प्रलयमस्तु जिनस्तवनेन मे (ते)।
सुकृतबुद्धिरलं क्षमया युतो,
जिनवृषो हृदये मम (तव) वर्तताम् ॥

इसके बाद गृहस्थाचार्य थाल या मण्डल में पुष्पों को छोड़ता हुआ। इसी पुस्तक के पृष्ठ ९८ वा १०१ में प्रकाशित शान्तिपाठ और विसर्जन बोलकर निम्नलिखित मन्त्र से विसर्जन करे—

मोहध्वान्त–विदारणं विशद–विश्वोद्भासि–दीप्तिश्रियम्।
सन्मार्ग – प्रतिभासक – विबुधसन्दोहामृतापादकम्॥
श्रीपादं जिनचन्द्रशान्ति – –शरणं, सद्भक्तिमानेऽपि ते।
भूयस्तापहरस्य देव भवतो, भूयात्पुनर्दर्शनम्॥

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हदादि-परमेष्ठिनः स्वस्थानं गच्छन्तु। अपराधक्षमापणं भवतु।

॥ इति हवनविधिः समाप्तः ॥

———

जाप्य-मन्त्र

बृहच्छान्ति-मन्त्र

"ॐ णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मङ्गलं-अरिहंता मङ्गलं, सिद्धा मङ्गलं, साहू मङ्गलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मङ्गलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि- अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। ह्रौं सर्वशान्ति कुरुत कुरुत स्वाहा।"

मध्य-शान्ति-मन्त्र

"ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्वशान्ति कुरुत कुरुत स्वाहा।"

लघु-शान्ति-मन्त्र

"ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा सर्वशान्ति कुरुत कुरुत स्वाहा।"

वेदीप्रतिष्ठा, कलशारोहण तथा बिम्बस्थापन
के समय का जाप्य मन्त्र

"ओं ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहतविद्यायै णमो अरिहंताणं ह्रौं सर्वशान्ति कुरुत कुरुत स्वाहा।

त्रैलोक्यमण्डलविधान के समय का जाप्य-मन्त्र

'ओं ह्रीं श्रीं अर्हं अनाहतविद्याधिपाय त्रैलोक्यनाथाय नमः सर्वशान्ति कुरु कुरु स्वाहा।'

ऋषिमण्डलविधान के समय का जाप्य-मन्त्र

'ओं ह्रां ह्रिं ह्रीं ह्रुं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो ह्रीं नमः।

सिद्धचक्रविधान के समय का जाप्य-मन्त्र

'ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः स्वाहा।'

—※※—

शान्ति-मन्त्र

ओं अ ह्रां सि ह्रीं आ ह्रूं उ ह्रौं सा ह्रः जगदातपविनाशनाय ह्रीं शान्तिनाथाय नमः।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय अशोकतरुसत्प्रातिहार्यमण्डिताय अशोकतरुशोभनपदप्रदाय झ्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः।

ओं ह्रीं शान्तिनाथाय सुरपुष्पवृष्टिसत्प्रातिहार्यमण्डिताय सुरपुष्पवृष्टिशोभनपदप्रदाय भ्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः।

ओं ह्रीं शान्तिनाथाय दिव्यध्वनिसत्प्रातिहार्यमण्डिताय दिव्यध्वनिशोभनपदप्राप्ताय म्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः।

ओं ह्रीं शान्तिनाथाय र्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः।

ओं ह्रीं शान्तिनाथाय घ्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः।

ओं ह्रीं शान्तिनाथाय स्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः।

ओं ह्रीं शान्तिनाथाय र्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः।

ओं ह्रीं शान्तिनाथाय प्रातिहार्याष्टकसहिताय बीजाष्टमण्डनमण्डिताय सर्वविघ्नशान्तिकराय नमः।

तव भक्तिप्रसादात् लक्ष्मीपुर-राज्यगेहपदभ्रष्टोपद्रव-दारिद्र्योद्भवोपद्रवस्वचक्र - परचक्रोद्भवोपद्रव-प्रचण्डपवनानलजलोद्भवोपद्रव-शाकिनी-डाकिनी-भूत-पिशाचकृतोपद्रव-दुर्भिक्षव्यापारवृद्धिरहितोपद्रवाणां विनाशनं भवतु। सम्पूर्णकल्याणमङ्गलरूपमोक्षपुरुषार्थश्च भवतु।

॥ इति-ग्रन्थ-समाप्तिः ॥

नित्य-नैमित्तिक जाप

प्रतिदिन करने योग्य जाप

पणतीस-सोल-छप्पण-चदु-दुगमेगं च जवह्ज्झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अणणं च गुरुवएसेण ॥

परमेष्ठी के वाचक पंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक अक्षर वाले मन्त्र का प्रतिदिन जाप और ध्यान करना चाहिए ।

१–३५ अक्षर का मन्त्र–

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

२–१६ अक्षर का मन्त्र–

अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहू ।

३–६ अक्षर का मन्त्र–अरिहंत-सिद्ध ।

४–५ अक्षर का मन्त्र–अ सि आ उ सा ।

५–४ अक्षर का मन्त्र–अरिहंत ।

६–२ अक्षर का मन्त्र- सिद्ध ।

७–१ अक्षर का मन्त्र–अ, ओम् ।

अष्टाह्निका व्रत

समुच्चय-ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरसंज्ञाय नमः ।

१-ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरसंज्ञाय नमः ।

२-ॐ ह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः ।

३-ॐ ह्रीं त्रिलोकसागरसंज्ञाय नमः ।

४-ॐ ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञाय नमः ।

६-ॐ ह्रीं स्वर्गसोपानसंज्ञाय नमः ।

७-ॐ ह्रीं सिद्धचक्रसंज्ञाय नमः ।

५-ॐ ह्रीं पञ्चमहालक्षणसंज्ञाय नमः ।

८-ॐ ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञाय नमः ।

षोडशकारण व्रत

समुच्चय—ॐ ह्रीं षोडशकारणभावनाभ्यो नमः ।

१-ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धये नमः ।

२-ॐ ह्रीं श्रीविनयसम्पन्नतायै नमः ।

३-ॐ ह्रीं श्रीशीलव्रतेष्वनतिचाराय नमः ।

४-ॐ ह्रीं श्रीअभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः ।

५-ॐ ह्रीं श्रीसंवेगाय नमः ।

६-ॐ ह्रीं श्रीशक्तितस्त्यागाय नमः ।

७-ॐ ह्रीं श्रीशक्तितस्तपसे नमः ।

८-ॐ ह्रीं श्रीसाधुसमाधये नमः ।

९–ॐ ह्रीं श्रीवैयावृत्यकरणाय नमः।

१०–ॐ ह्रीं श्री अर्हद्भक्त्यै नमः।

११–ॐ ह्रीं श्री आचार्यभक्त्यै नमः।

१२–ॐ ह्रीं श्रीबहुश्रुतभक्त्यै नमः।

१३–ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनभक्त्यै नमः।

१४–ॐ ह्रीं श्रीआवश्यकापरिहाणये नमः।

१५–ॐ ह्रीं श्रीमार्गप्रभावनायै नमः।

१६–ॐ ह्रीं श्रीप्रवचन-वत्सलत्वाय नमः।

दशलक्षण व्रत

समुच्चय–ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयम-तपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः।

१–ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः।

२–ॐ ह्रीं श्रीउत्तममार्दवधर्माङ्गाय नमः।

३–ॐ ह्रीं श्रीउत्तमार्जवधर्माङ्गाय नमः।

४ ॐ ह्रीं श्री उत्तमशौचधर्माङ्गाय नमः।

५–ॐ ह्रीं श्रीउत्तमसत्यधर्माङ्गाय नमः।

६–ॐ ह्रीं श्रीउत्तमसंयमधर्माङ्गाय नमः।

७–ॐ ह्रीं श्रीउत्तमतपोधर्माङ्गाय नमः।

८–ॐ ह्रीं श्रीउत्तमत्यागधर्माङ्गाय नमः।

९–ॐ ह्रीं श्रीउत्तमआकिञ्चन्यधर्माङ्गाय नमः।

१०–ॐ ह्रीं श्रीउत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः।

पंचमेरु व्रत

१–ॐ ह्रीं श्रीसुदर्शनमेरुचैत्यालयेभ्यो नमः ।
२–ॐ ह्रीं श्रीविजयमेरुजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।
३–ॐ ह्रीं श्रीअचलमेरुजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।
४–ॐ ह्रीं श्रीविद्युन्मालिजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।
५–ॐ ह्रीं श्रीमन्दरमेरुजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।

रत्नत्रय व्रत

१–ॐ ह्रीं श्रीअष्टांगसम्यग्दर्शनाय नमः ।
२–ॐ ह्रीं श्रीअष्टांगसम्यग्ज्ञानाय नमः ।
३–ॐ ह्रीं श्रीत्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय नमः ।

卐

संक्षिप्त सूतक विधि

सूतक में देवशास्त्रगुरु की पूजन प्रक्षालादिक करना, तथा मंदिर जी के वर्तन वस्त्रादि का स्पर्श करना निषिद्ध है। सूतक का समय पूर्ण हुये वाद पूजन करके पात्रदानादि करना चाहिये ।

१—जन्म का सूतक दश दिन तक माना जाता है ।

२—यदि स्त्री को गर्भपात (पांचवें छठे महीने में) हो तो जितने महीने का पात हो उतने दिन का सूतक माना जाता है ।

३—प्रसूता स्त्री को ४५ दिन का सूतक होता है। कहीं कहीं चालीस दिन का भी माना जाता है । प्रसूति स्थान एक मास तक अशुद्ध है ।

४—रजःस्वला स्त्री चौथे दिन पति के भोजनादिक के लिये शुद्ध होती है, परन्तु देवपूजन, पात्रदान के लिये पांचवें दिन शुद्ध होती है । व्यभिचारिणी स्त्री के सदा ही सूतक रहता है ।

५—मृत्यु का सूतक तीन पीढ़ी तक १२ दिन का माना जाता है। चौथी पीढ़ी में छह दिन का, पांचवीं छट्ठी पीढ़ी तक चार दिन का, सातवीं पीढ़ी में तीन, आठवीं पीढ़ी में एक दिन रात, नवमीं पीढ़ी में स्नानमात्र से शुद्धता हो जाती है।

६—जन्म तथा मृत्यु का सूतक गोत्र के मनुष्य को पांच दिन का होता है। तीन दिन के बालक की मृत्यु का एक दिन का, आठ वर्ष के बालक की मृत्यु का तीन दिन तक माना जाता है। इसके आगे १२ दिन का होता है।

७—अपने कुल के किसी गृहत्यागी का सन्यास मरण व किसी कुटुम्बी का संग्राम में मरण हो जाय तो एक दिन का सूतक माना जाता है।

८—यदि अपने कुल का कोई देशांतर में मरण करे और जितने दिन पीछे खबर सुने तो शेष दिनों का ही सूतक मानना चाहिये। यदि १२ दिन पूर्ण हो गये हों तो स्नानमात्र सूतक जानो।

९—गौ, भैंस, घोड़ी आदि पशु अपने घर में जनै तो एक दिन का सूतक और घर के बाहर जनै तो सूतक नहीं होता। दासी तथा पुत्री के अपने घर में प्रसूति होय तो एक दिन, मरण हो तो तीन दिन का सूतक होता है। यदि घर से बाहर हो तो सूतक नहीं। जो कोई अग्नि आदिक में जलकर या विष शस्त्रादि से आत्महत्या करे तो छह महीने तक का सूतक होता है।

१०—बच्चा हुये बाद भैंस का दूध १५ दिन तक, गाय का दूध १० दिन तक, बकरी का ८ दिन तक अभक्ष्य होता है। देश भेद से सूतक विधान में कुछ न्यूनाधिक भी होता है, परन्तु शास्त्र की पद्धति मिलाकर ही सूतक मानना चाहिये।

अनादिनिधन अपराजित, मंगल-मय, लोकोत्तम

णमोकार महामंत्र

जिसके अन्दर सभी (अक्षर) वर्ण अजन्त हैं, एक भी वर्ण हलंत नहीं हैं--ऐसे वर्णयुत महामंत्र की महिमा (महत्व) वचन अगोचर है।

जग उद्धारण-पार उतारण--पाप निवारण मन्त्र यही।
कर्म विदारण-विषहर कारण-भव निस्तारण मन्त्र यही॥
शिव सुख दाता-सिद्धि प्रदाता मन्त्र यही केवलज्ञानम्।
जग कल्याणम्-जन्म सुत्राणं मन्त्र यही है निर्वाणम्॥
दैवी सम्पद-मुक्ति रमापद-खिचते हुए चले आते।
विपद उचटती--गतियां कटती--रागद्वेष गले जाते॥
यह आकर्षण-वशीकरण यह स्तम्भन दुर्गतियों का।
उच्चाटन विपदाओं का, सम्मोहन मोह कुमतियों का॥
क्षेत्र-कुक्षेत्र रहो चाहे या शुद्ध--अशुद्ध रहो चाहे।
हर हालत में तुम पवित्र हो, भीतर वाहर अवगाहे॥
विघ्न-विनाशक-मन अनुशासक णमोकार जप मंत्र अजेय।
सभी मंगलों में है पहिला मंगल, ध्याता--ध्यान सुध्येय॥
भूत पिशाचिनि-डाकिन-शाकिन नाग-नागनी भय खावे।
सर्प-सिंह-जल-पावक वाधाएँ तत्काल विलय जावे॥
तुम्हें छोड़कर नहीं दूसरा-जग में मेरा कोई शरण।
णमोकार परमेष्ठि पंच दो सम्यक दर्शन ज्ञान चरण॥
ॐ आत्मा का सूचक है, प्रणव पंच परमेष्ठि महान।
तेज वीज भव काम वीज है, सव मन्त्रों का सार प्रधान।

मन्त्रोद्गम

जितने भी हैं मंत्र-शास्त्र, सम्पूर्ण लोक में ।
उन सब की उत्पत्ति हुई है णमोकार से ॥
जितनी भी अक्षर संख्या है श्रुतज्ञान की ।
महामंत्र में सभी निहित वह हर प्रकार से ॥ १ ॥

सप्त तत्त्व या नव पदार्थ या छह द्रव्यों का ।
गुण पर्यायों सहित सार, इसमें गर्भित है ॥
बंध-मोक्ष नय निक्षेपादिक द्वादशांग का ।
समयसार प्रामाणिक में संपूर्ण निहित है ॥ २ ॥

रहा सदा अस्तित्व इसी का धारावाही ।
हर तीर्थंकर के शासन में, कल्पकाल में ॥
काल--दोष से हुआ कदाचित् क्वचित् लुप्त जो ।
दिव्यध्वनि से पुनः प्रकट हो गया हाल में ॥ ३ ॥

भस्मीभूत यही करता है सभी पाप मल ।
इसका भी है तर्कयुक्त वैज्ञानिक कारण ॥
होती हैं उत्पन्न धनात्मक और ऋणात्मक ।
द्वन्द्व शक्तियां, करते ही इसका उच्चारण ॥ ४ ॥

विद्युत्शक्ति प्रकट होती है ज्योतिमयी तब ।
चेतन में चिनगारी जैसा चमत्कार ले ॥
कर्म-कलंक जला देती है वह चिनगारी ।
जो त्रियोगपूर्वक जीवन में यह उतार ले ॥ ५ ॥

आत्मा का आदेह जनावे वही मन्त्र है ।
या कि निजानुभव तक पहुंचावे वही मन्त्र है ॥
"मन्" ज्ञाने में "ष्ट्रन" प्रत्यय को लगाइये ।
बन जाता व्याकरण रीति से शब्द "मंत्र" है ॥ ६ ॥

देवनागरी लिपि में जितने वीजाक्षर हैं।
उन सब की ध्वनियों का उद्गम णमोकार है॥
स्वर स्वतन्त्र हैं, इसीलिए तो शक्ति रूप हैं।
व्यंजन बोए गए शक्ति में वीज-सार हैं॥ ७॥

महामन्त्र की सभी मातृका ध्वनियों में हैं।
गर्भित व्यंजन एवं स्वर सब वर्णमाल के॥
ये अनादि हैं, ये अनन्त हैं अक्षय अक्षर।
पर्ययवाची तीन लोक के तीन काल के॥ ८॥

मारण-मोहन-उच्चाटन ध्वनियों का क्रम है।
जो उत्पादक-ध्रौव्य और व्यय रूप सत्य है॥
अष्ट कर्म का व्यय करके उपजाता वैभव।
ध्रौव्य रूप अव्यय पद देना परम कृत्य है॥ ९॥

शक्तिरूप स्वर और वीज संज्ञक व्यंजन हैं।
"अच्" एवं 'हल्" मिलकर वनते मंत्र-वीज हैं॥
चमत्कार दिखलातीं उन पर मन्त्र-ध्वनियां।
जन्म-जरा या मृत्यु-रोग के जो मरीज हैं॥ ११॥

स्वर-अक्षरों की शक्ति

व्यंजन और स्वरों से मिलकर, मन्त्र-वीज वनते हैं।
वीज-शक्ति के ही प्रभाव से, मन्त्र-भाव छनते हैं॥
पृथ्वी-पावक-पवन-पयः-नभ, प्रणव वीज की माया।
सारस्वत-शुभनेश्वरी के, वीजों को समझाया॥

अ
अव्यय सूचक, शक्ति प्रदायक, प्रणव बीज का कर्ता।
शुद्ध-बुद्ध सद्ज्ञान रूप, एकत्व आत्म में भर्ता॥

आ
सारस्वत का जनक यही है, शक्ति-बुद्धि परिचायक।
माया-बीज सहित होता है, यह धन-कीर्ति प्रदायक॥

इ
गति का सूचक, अग्नि-बीज का, जनक लक्ष्मी साधक।
कोमल कार्य सिद्ध करता है, कठिन कार्य में बाधक॥

ई
अमृत-बीज यह स्तम्भक है, कार्य साधने वाला।
सम्मोहक, जृंभण करता "ई" ज्ञान बढ़ाने वाला॥

उ
उच्चाटन का मन्त्र-बीज यह, बहुत शक्तिशाली है।
उच्चाटन का श्वांस नली से, शक्ति मारने वाली है॥

ऊ
उच्चारण के सम्मोहन के बीजों का यह मूल मन्त्र है।
बहुत शक्ति को देने वाला, यह विध्वंसक कार्य तन्त्र है॥

ऋ
ऋद्धि-सिद्धि को देने वाला, शुभ कार्यों में उपयोगी।
बीजभूत इस अक्षर द्वारा, कार्यसिद्धि निश्चित होगी॥

ऌ
वाणी का संहारक है यह, किन्तु सत्य का संचारक।
आत्मसिद्धि में कारण बनता, लक्ष्मी बीज यही कारक॥

ए
पूर्ण अटलता लाने वाला, पोषण संवर्द्धन करता।
'ए' बीजाक्षर शक्तियुक्त हो, सभी अरिष्ट हरण करता॥

ऐ
वशीकरण का जनक बीज यह, ऋण विद्युत का उत्पादक।
वारि बीज को पैदा करता, यह उदात्त सुख संपादक॥
इसके द्वारा ही होता है, शासन देवों का आह्वान।
कितना ही हो कठिन काम, पर इससे हो जाता आसान॥

ओ लक्ष्मीपोषक माया बीजक, शुभ्र वस्तुएँ करे प्रदान ।
मृदु स्वरान्त का सहयोगी है, कर्म-निर्जरा-हेतु प्रधान ॥

औ मारण में या उच्चाटन में, शीघ्र कार्यसाधक बलवान ।
निरपेक्षी है स्वयं बीज यह, कई बीजों का मूल प्रधान ॥

अं "अं" अभाव का सूची है, शून्याकाश बीज परतन्त्र ।
सूक्ष्म शक्तियों का उद्घाटक, कलाभावी है यह मन्त्र ॥

अः शान्ति बीज में अनुज-बीज यह, रहता नहीं स्वयं निरपेक्ष ।
सहयोगी के साथ साधता, कार्य हमारे सभी यथेच्छ ॥

व्यञ्जन-अक्षरों की शक्ति

क् (व्यंजन)+अ (स्वर)='क' बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

भोग और उपभोग जुटावे, साधे यही काम पुरुषार्थ ।
यही प्रभावक शक्ति बीज है, संततिसाधक वर्ण यथार्थ ॥

ख् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ख बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

उच्चाटन बीजों का दाता, यह आकाश-बीज है एक ।
किन्तु प्रभाव कार्यों के हित, कल्पवृक्ष सम है यह नेक ॥

ग् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ग बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

पृथक-पृथक यदि करना चाहो, तो इसका उपयोग करो ।
प्रणव और माया बीजों का, पर इससे संयोग करो ॥

घ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=घ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

यह स्तम्भक बीज विघ्न का, नाश करने वाला है ।
सम्मोहक बीजों का दाता, रोक दिखाने वाला है ॥

ङ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ङ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
स्वर से मिलकर फल देता है, करता है रिपुओं का नाश।
यह विध्वंसक बीज जनक है, सभी मातृकाओं में खास॥

च् (व्यंजन)+अ (स्वर)=च बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
उच्चाटन बीजों का दाता, खंड शक्ति बतलाता है।
अंगहीन है स्वयं स्वरों पर, अपना फल दिखलाता है॥

छ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=छ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
छाया-सूचक बन्धन—कारक, माया का सहयोगी है।
जल बीजों का जनक यही है, मृदुल कार्य फल भोगी है॥

ज् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ज बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
आधि-व्याधि का उपशम करके, साधै सारे कार्य नवीन।
यह आकर्षक बीज जनक है, शक्ति बढ़ाने में तल्लीन॥

झ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=झ बीजाक्षर (मंत्र बीज)
इस पर रेफ लगा दोगे तो, आधि-व्याधि हो जाय समाप्त।
श्री बीजों का जनक यही है, शक्ति इसी से होती प्राप्त॥

ञ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ञ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
यही जनक है बीज मोह का, स्तंभन का माया का।
यही साधना का अवरोधक, बीजभूत है काया का॥

ट् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ट बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
अग्नि-बीज है अतः अग्नि से संबंधित हैं जितने कार्य।
इसके उच्चारण से पावक, जलदी-बुझती है अनिवार्य॥

ठ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ठ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

अशुभ कार्य का सूचक है यह, मंगल कार्य न सफलीभूत ।
शान्ति भंग कर रुदन मचाता, कठिन कार्य को करै प्रभूत ॥

ड् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ड बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

शासन देवी की शक्ति को, यही फोड़ने वाला है ।
निम्न कोटि की कार्यसिद्धि को, यही जोड़ने वाला है ॥
जड़ की क्रिया साधता है यह, हों खोटे आचार-विचार ।
पंच-तत्त्व के भौतिक संयोगों का करता है विस्तार ॥

ढ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ढ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

यह निश्चल है माया बीजक, एवं मारण बीज प्रधान ।
शान्ति विरोधी मूल मन्त्र है, शक्ति बढ़ाने में बलवान ॥

ण् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ण बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

नभ बीजों में यही मुख्य है, शक्तिप्रदायक स्वयं प्रशान्त ।
ध्वंसक बीजों का उत्पादक, महाशून्य एवं एकान्त ॥

त् (व्यंजन)+अ (स्वर)=त बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

आकर्षक करवाने वाला, साहित्यिक कार्यों में सिद्ध ।
शक्तिकारक यही शक्ति का, सरस्वती का रूप प्रसिद्ध ॥

थ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=थ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

मंगलकारक लक्ष्मी बीजों का बन जाता सहयोगी ।
अगर स्वरों से मिल जाए तो, मोहकता जाग्रत होगी ॥

द् (व्यंजन)+अ (स्वर)=द बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

आत्मशक्ति को देने वाला, वशीकरण यह बीज प्रधान ।
कर्म-नाश में उपयोगी है, करै धर्म आदान-प्रदान ॥

थ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=थ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

धर्म साधने में अचूक है, श्रीं क्लीं करता धारण।
मित्र समान सहायक है यह, माया बीजों का कारण॥

न् (व्यंजन)+अ (स्वर)=न बीजाक्षर (मंत्र बीज)

आत्मसिद्धिका सूचक है यह, वारि (जल) तत्त्व रचने वाला।
आत्मनियन्ता वृष्टि सृष्टि में, एक मात्र नचने वाला॥

प् (व्यंजन)+अ (स्वर)=प बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

परमातम को दिखलाता है, विद्यमान इसमें जल-तत्त्व।
सभी कार्यों में रहता है, इसका अपना अलग महत्त्व॥

फ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=फ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

वायु और जल तत्त्व युक्त है, बड़े कार्य कर देता सिद्ध।
स्वर को जोड़ो रेफ लगा दो, हो प्रध्वंसक यही प्रसिद्ध॥
इसके साथ अगर फट् बोलो, तो उच्चाटन हो जाएगा।
कठिन कार्य भी सफल करेगा, विघ्न शमन हो जाएगा॥

ब् (व्यंजन)+अ (स्वर)=ब बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

अनुस्वार इसके मस्तक पर, आकर विघ्न विनाश करे।
स्वयं सफलता का सूचक बन, सबको अपना दास करे॥

भ् (व्यंजन)+अ (स्वर)=भ बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

मारक एवं उच्चाटक है, सात्विक कार्य निरोधक है।
कल्याणों से दूर साधना, लक्ष्मी बीज निरोधक है॥

म् (व्यंजन)+अ (स्वर)=म बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

लौकिक एवं पारलौकिकी, सफलताएँ इससे मिलतीं।
यह बीजाक्षर सिद्धि-प्रदाता, संतति को कलियां खिलतीं॥

य् (व्यंजन +अ (स्वर)=य बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
मित्र-मिलन में, इष्ट-प्राप्ति में, यह बीजाक्षर उपयोगी ।
ध्यान—साधना में सहकारी, सात्विकता इससे होगी ॥

र् (व्यंजन)+अ (स्वर)=र बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
अग्नि-बीज यह कार्य—प्रसाधक, शक्ति सदा देने वाला ।
जितने भी हैं प्रमुख बीज यह, उन सबको जनने वाला ॥

ल् (व्यंजन)+अ (स्वर)= बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
लक्ष्मी लावे मंगल गावे, श्रीं बीज का सहकारी ।
लाभ करावे, सुख पहुँचावे, परम सगोत्री उपकारी ॥

व् (व्यंजन)+अ (स्वर)=व बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
भूत-पिशाचिन-शाकिन-डाकिन सबको दूर भगाता है ।
ह् र् एवं अनुस्वार से मिल जादू दिखलाता है ॥
लौकिक इच्छा पूरी करता, सब विपत्तियां देता रोक ।
मंगल-साधक सारस्वत है, आकर्षित होता सब लोक ॥

श् (व्यंजन)+अ (स्वर)=श बीजाक्षर (मंत्र-बीज)
शान्ति मिला करती है इससे, किन्तु निरर्थक है यह बीज ।
स्वयं उपेक्षा धर्मयुक्त है, अति साधारण यह नाचीज ॥

ष् (व्यंयन)+अ (स्वर)=ष बीजाक्षर (मंत्र बीज)
आह्वान बीजों का दाता, है जल-पावक स्तम्भक ।
आत्मोन्नति से शून्य, भयंकर, रुद्र-बीज का उत्पादक ॥
रौद्र और वीभत्स रसों में भी प्रयुक्त यह होता है ।
ध्वनि सापेक्ष ग्रहण करता है, संयोगी सुख बोता है ॥

स् (व्यंजन)+अ (स्वर)=स बीजाक्षर (मंत्र बीज)

सर्व समीहित साधक है यह, सब बीजों में अति उपयुक्त।
शांतिप्रदाता कामोत्पादक, पौष्टिक कार्यों हेतु प्रयुक्त ॥
ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कर्म हटाता है ॥
क्लीं बीज का सहयोगी यह, आत्मा प्रकट दिखाता है ॥

ह् (व्यंजन)+अ (स्वर) = ह बीजाक्षर (मंत्र-बीज)

मंगल-कार्यों का उत्पादक, पौष्टिक सुख संतान करे।
है स्वतन्त्र पर सहयोगार्थी, लक्ष्मी प्रचुर प्रदान करे ॥
अनुस्वार यदि इस पर होवे, तो फिर इसी बीज की जाप।
नभ तत्त्वों से मिलकर धोता, पाप और कर्मों के शाप ॥
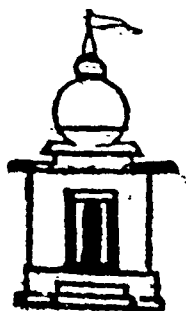
श्री पार्श्वनाथ-स्तुति

तुमसे लागी लगन, लेलो अपनी शरण, पारस प्यारा !
मेटो मेटो जी संकट हमारा ॥

निश दिन तुमको जपूं, पर से नेहा तजूं ।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा ॥
मेटो मेटो जी संकट हमारा ॥

अश्वसेन के राजदुलारे, वामा देवी के सुत प्राण प्यारे ।
सबसे नेहा तोड़ा, जग से मुंह को मोड़ा, संयम धारा ॥
मेटो मेटो जी संकट हमारा ॥

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये ।
आशा पूरो सदा, दुःख नहीं पावे कदा, सेवक थारा ॥
मेटो मेटो जी संकट हमारा ॥

जग के दुख की तो परवाह नहीं है,
स्वर्ग-सुख की भी चाह नहीं है ।
मेटो जामन मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा ।
मेटो मेटो जी संकट हमारा ॥

लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊं, जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊँ ।
'पंकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया, लागे खारा ॥
मेटो मेटो जी संकट हमारा ॥

श्री महावीर-स्तुति

[श्री सिंघई देवेन्द्रकुमार जी जयंत, खुरई]

मिल के गायें अपन, वीरा प्रभु के भजन, श्रावक सारे ।
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

निश दिन तुम को भजें, पाप पांचों तजें ।
कर दया रे, पातकी को लगा दो किनारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

नंद सिद्धार्थ के प्राण प्यारे, मातु त्रिशला की आंखों के तारे ।
राज्य-वैभव तजा, नग्न वाना सजा, संयम धारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

रुद्र ने घोर उपसर्ग ढाया, देवियों ने प्रभू को रिझाया ।
किन्तु डोले नहीं, वैन वोले नहीं तप सम्हारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

राग की आग में जल रहे हैं, चाह की राह में चल रहे हैं ।
भ्रष्ट आचार हैं, दुष्ट व्यवहार हैं, वे सहारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

मनको ऐसे मैं कब तक रमाऊँ, कौन विधि से तुम्हें नाथ ध्याऊँ ।
जयन्त व्याकुल भया, चैन सारा गया, आए द्वारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

✡

भ० महावीर रजत-शतक समापन वर्ष की स्मृति में—

—सरस

जैन-विवाह पद्धति

श्रीपतिर्भगवान् पुष्याद् भक्तानां वः समीहितम् ।
यद् भक्तिः शुल्कतामेति मुक्तिकन्याकरग्रहे ॥

—श्रीमद् वादीभसिंह सूरिः

लेखक व सम्पादक—
पं० कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद', फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु'

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन-प्रकाशन,
खुरई (जिला-सागर) म० प्र०

सरस जैन विवाह पद्धति

अभिप्राय

साधर्मी गृहस्थ बन्धुओ !

उपरोक्त शीर्षक से हम अपनी पुस्तिका "सरस जैन-विवाह पद्धति" का उद्घाटन कर रहे हैं क्योंकि यही वह भूमिका है जिस पर खड़े होकर आप आर्ष-प्रणीत वचनों के अभिप्राय से परिचित होंगे। विवाह-संस्कार के अनिवार्य उद्देश्य को भली भाँति समझेंगे तथा इस ढंग की मौलिक कृति को प्रकाश में लाने का हमारा अपना मूलभूत प्रयोजन क्या है ? इसका भी स्पष्टीकरण हो जावेगा।

विवाह क्या और क्यों ? इसका उत्तर श्री जिनसेनाचार्य के आदिपुराण में देखिये –

देवे मे गृहिणां धर्म विद्धि हार परिग्रहम्।
सन्तानरक्षणे यत्नः कार्यो हि गृहमेधिनाम् ॥ (पर्व १५)

अर्थात् – कुमार कुमारी में परस्पर प्रेम सम्बन्ध स्थापित हो। सन्तान प्राप्ति के लिये वे गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर धार्मिक और लौकिक कर्त्तव्यों का पालन करते हुए प्रवृत्ति से निवृत्ति मार्ग की ओर बढ़ते हैं।

महामना महात्मा गांधी के शब्दों में—

"विवाह का आदर्श शरीर के द्वारा आध्यात्मिक मिलन है। मानवीय प्रेम दैवी अथवा विश्व-प्रेम की सीढी है।"

वास्तव में गृहस्थाश्रम संयम का पाठ पढ़ाता है। बचपन के स्वतंत्र और उच्छृंखल जीवन में गृहस्थी संबंधी कर्त्तव्यों की जबावदारी के कारण परिवर्तन आजाता है।

विवाह कब और कैसे ?

इस प्रश्न का प्रायोगिक उत्तर देने के लिये ही इस पुस्तिका का सृजन-सम्पादन हमारे द्वारा किया गया है। यह विवाह संस्कार की आचार-संहिता है, गृहस्थ धर्म का संविधान है, धर्म-अर्थ-काम पुरुषार्थों से विलक्षण मोक्ष-पुरुषार्थ की विधि है।

निरन्तर बदलते हुए युग के रथ पर बैठकर पुस्तक भी अपने परिवर्तित परिवेश में आपके समक्ष आई है। समय के तकाजे ने इसे यह नवीन रूप दिया है। देखिये न –

विवाहों में हजारों लाखों रुपये पानी की तरह उलीचे जाते हैं, पर वर-वधू के भावी जीवन के लिये उपयोगी और लाभदायक संस्कार-निर्माण की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। पाणिग्रहण संस्कार द्वारा उन्हें अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान देने का रिवाज अब केवल रूढिमात्र रह गया है। विवाह कराते समय भी वे यह नहीं जानते कि वे स्वयं क्या कर रहे हैं ? क्या बनने जा रहे हैं ? सद्गृहस्थ बनने के लिये किन संकल्पों की आवश्यकता होती है ? इस तथ्य को ध्यान में

रखकर यह "सरस जैन विवाह पद्धति" राष्ट्र भाषा में संकलित करने का प्रयास हमने किया है।

विधि-विधान, क्रियाकाण्ड और अनुष्ठानों के प्रति स्वभावतः बुद्धिजीवी नवयुगीन युवा पीढ़ी में अक्सर उपेक्षा की भावना रहती है। वैवाहिक अवसरों पर जो उत्साह नाच-गाने के प्रति उनमें रहता है उसका शतांश भी पाणिग्रहण क्रिया अवलोकन के प्रति उनका नहीं रहता। यही कारण है कि उस वेला में कभी कभी तो मात्र गृहस्थाचार्य व वर वधू ही विवाह मंडप में दिखाई देते हैं। इसका मूल कारण यह है कि सिवाय अनर्गल खाने-पीने एवं व्यर्थ की टीका टिप्पणियों के अतिरिक्त और दूसरे कार्यों के लिये मानो अवकाश ही नहीं मिलता! इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हमने इस पुस्तिका में मंत्र प्रधान श्लोकपरक वैवाहिक विधि-विधान की सांस्कृतिक परम्परा तो सुरक्षित रखी ही है, साथ ही इसी के समानान्तर समाज के बदलते हुए ढांचे को देखकर राष्ट्रभाषा के गद्य-पद्यों द्वारा बुद्धिजीवी युवक युवतियों के लिये भी युगानुरूप खुराक का प्रयास हमने किया है। रूढ़िवादी बुजुर्गों को भी समय पहिचान करने का संकेत इसमें किया गया है।

यह पद्धति इतनी सरल-सरस और बोधगम्य है कि समा द्वारा इसका व्यावहारिक प्रयोग विद्युत्गति से होगा। अपनाइये और अपने सुझाव व संशोधनों से हमें अवगत कराइये

—कमलकुमार जैन शास्त्री "कुमुद"

विवाह-निर्देशिका

मंगलाचरण और प्रतिज्ञा

आदिनाथं नमस्कृत्य, जैनवैवाह-पद्धतेः ।
नियमावलिर्विधिर्वा, क्रियते सर्व शर्मदा ॥

आदिनाथ को नमस्कार कर, मंगल वैवाहिक-संस्कार ।
जैन शास्त्र अनुसार लिखूँगा, रूढ़िहीन संक्षिप्त प्रकार ॥

विवाह के पाँच सोपान

वाग्दानं प्रदानं च, वरणं पाणिपीडनम् ।
सप्तपदीतिपंचाङ्गो, विवाहः परिकीर्तितः ॥
तावद्विवाहो नैव स्या-द्यावत्सप्तपदी भवेत् ।
तस्मात्सप्तपदी कार्या, विवाहे मुनिभिः स्मृता ॥

प्रथम सगाई-वाग्दान है, तथा दूसरा कन्यादान ।
वरण तीसरा पाणिग्रहण है, चौथा मंगलमय सोपान ॥
सप्तपदी या सात भांवरें, पंचम चरण कहा जाता ।
यह जब तक सम्पन्न नहीं हो, परिणय नहीं कहा जाता ॥

वर और कन्या की आयु

कन्यावर्षप्रमाणेन द्विवर्षाधिक उत्तमः ।
पंचवर्षाधिको मध्यो, दशवर्षाधिकोऽधमः ॥

वर कन्या की वयस् में, अन्तराल यों जान।
वर्ष द्वय उत्तम कहा, मध्यम पंच प्रमान ॥
मध्यम पंच प्रमान अधिक हो, आयुष वर की।
अधम वर्ष दस कही; और उससे ऊपर की ॥
कन्या से वर की अधिक, नहीं अगर आयुष्क।
तो निश्चय ही जानिये, जीवन सारा शुष्क ॥

सगाई का परित्याग

सगाई सम्बन्ध स्थापित होने के पश्चात् यदि वर स्वर्गवासी, असाध्य रोगी, पातकी, सन्यासी, कुष्ट रोग से पीड़ित और नपुंसक हो जाये या परदेश जाकर कन्या को १२ वर्ष तक अपना सुनिश्चित पता न दे तो राज्य और समाज के प्रमुख पंचों को सूचित कर कन्या का विवाह संबंध किसी दूसरे वर के साथ सम्पन्न किया जा सकता है।

मण्डप-रचना

वेदिकायां तदग्रेऽग्नि, मण्डलं स्वस्तिकान्वितम्।
लिखेद् गृहस्थाचार्योऽसौ, कुण्डत्रयपुरःसरम् ॥
दक्षिणे धर्म-चक्रं तु, वामे छत्रत्रयं तथा।
स्थापयेत्परया भक्त्या, जिनसेनाज्ञया वरम् ॥
शतुः स्तम्भाश्रितान्भाण्डान् पंच पंच धरेत्क्रमात्।
उपर्युपरि सद्रक्त-वस्त्र- सूत्रावृत्तान्भृतान् ॥

पाणिग्रहण के एक दिन पूर्व घर के प्राङ्गण को मध्य भूमि के चारों दिशाओं में चार काष्ठपस्तम्भों का आरोपण कर उन पर लाल वस्त्र पचरंग सूत्र व गोटे से वेष्ठित कर चौकोर मंडप बनाना चाहिये। प्रत्येक स्तम्भों के सहारे एक के ऊपर एक इस तरह पांच २ मिट्टी के कलश रखना चाहिए।

उन पर आम्र अथवा जामुन के पल्लवों का वितान तानकर मण्डपाच्छादन करें तथा वेदी व हवनकुण्ड के ऊपर चंदोवा बांधें।

मण्डप के केन्द्र में, सुहागिल महिलाओं द्वारा मंगल-गान एवं मंत्रोच्चारण पूर्वक स्तम्भ (खाम) को आरोपित करें।

खाम की पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर वेदो की रचना निर्देशानुसार करना चाहिये।

वेदी स्थापना से पूर्व भूमि शुद्धिकरण मंत्र पढ़कर साथिया बना लेवें। उसी पर वेदी की स्थापना करें।

वेदी के सन्मुख हवन कुण्ड बनावें।

मण्डप को ध्वजा, तोरण, बंदनवार, पुष्पमाला एवं दीप-मालिकादि से सजावें।

卐

विवाह-वेदी का आकार-प्रकार
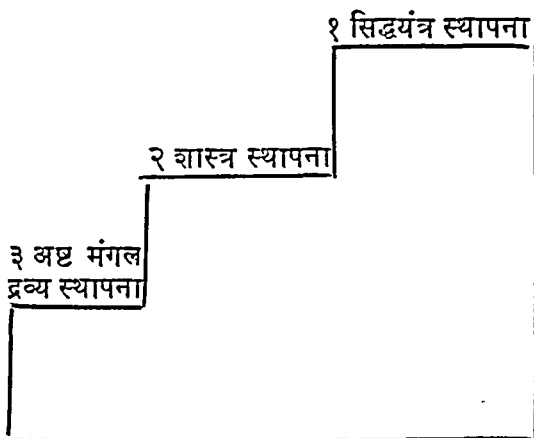
स्थापना-क्रम

उर्ध्वायां सिद्धबिम्बस्य स्थापना श्रुतवान् क्रियात् ।
तदभावे तु पूर्वोक्तं कन्यानीत-यन्त्रकम् ॥
स्थापयेत्तदधोभागे श्रुतमार्पं तु पूजयेत् ।
तृतीय-कटनीमध्ये, मंगलद्रव्यसंस्थिते ॥
तत्रैव गुरुपूजार्थम्, ऋद्ध्यादि स्थाप्यतां क्रमात् ।

सिद्धयंत्र स्थापना, उच्च वेदिका पर करें ।
मध्यम वेदी पर तथा जैन शास्त्र को ही धरें ॥
अन्तिम वेदी पर रखें, आठों मंगल द्रव्य ।
चौंसठ ऋद्धिः यंत्र भी, रखें साथ ही भव्य ॥

वेदी का परिमाण

प्रथम कटनी की लंबाई ४ हाथ, चौड़ाई ३ हाथ, ऊँचाई १ हाथ
द्वितीय कटनी की लंबाई ४ हाथ, चौड़ाई २ हाथ, ऊँचाई १ हाथ
तृतीय कटनी की लंबाई ४ हाथ, चौड़ाई १ हाथ, ऊँचाई १ हाथ

नोट—यदि शास्त्रोक्त परिमाण संभव न हो तो काष्ठ चौकियों अथवा मृत्तिका से तीन कटनी वाली वेदिका का निर्माण करें। उन पर क्रमशः सिद्धचक्र यंत्र, शास्त्र एवं चौसठ ऋद्धियंत्र तथा अष्ट मंगल द्रव्य (१ झारी, २ पंखा, ३ कलश, ४ ध्वजा, ५ चमर, ६ ठौना, ७ छत्र और ८ दर्पण) की स्थापना करें।

विनायक (सिद्ध) यन्त्र का आकार

[पृष्ठ ३८७ पर मुद्रित है]

नोट—यदि ताम्र अथवा रजत पत्र पर उत्कीर्ण सिद्धयंत्र उपलब्ध न हो तो रकावी या कागज पर केशर से चित्रानुसार आकृति बनाकर वेदिका पर स्थापित किया जावे।

卐

हवन कुण्ड--रचना
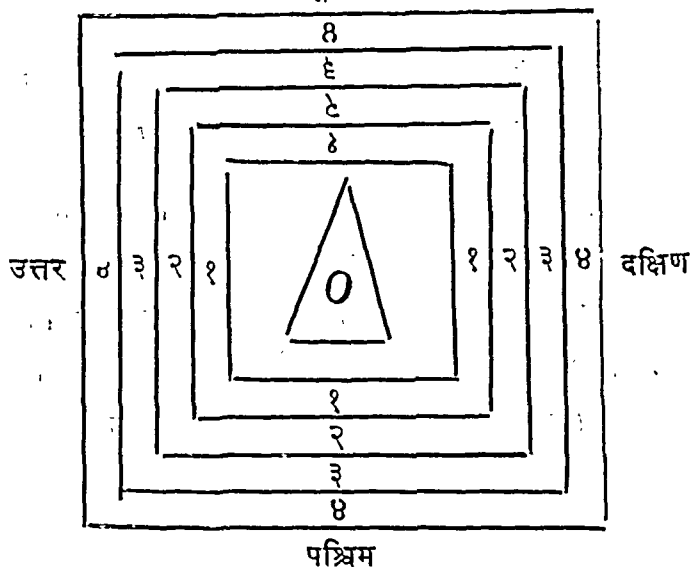
उपरोक्त आकृति के अनुसार अपरिपक्व ईंट गारा द्वारा हवनकुण्ड की रचना करना चाहिये। यदि यह संभव न हो तो मिट्टी के कुन्ड (कूंडा) में केशर से रचना कर लेना चाहिये। जमीन पर ही रांगोली से एक हाथ लंबा और एक हाथ चौड़ा कुंडाकार बना लेना चाहिये।

समिध्

श्वेत और रक्त चन्दन, पीपल, आक, आम, पलाश, अपामार्ग और कपास की सूखी, वेघुनी, जीव जन्तु रहित लकड़ियां समिध कहलाती हैं। इन्हीं लकड़ियों का उपयोग करें।

हवन सामग्री

वादाम, पिस्ता, छुहारा, जायफल, गोला, दुग्ध, घृत, बूरा, किसमिस, लवंग, कपूर, इलायची, धूप, जौ इत्यादि वस्तुयें शक्ति के अनुसार और घी वस्तुओं से दूना होना चाहिए।

फेरों का मंगल मुहूर्त न टालिये

विवाह के संदर्भ में होने वाले अन्यान्य कार्यक्रम-पंक्ति-भोज, स्वागत सत्कार, नाच-गाना, आडम्बर, प्रदर्शन तथा निरर्थक दस्तूरों आदि में समय का इतना अधिक दुरुपयोग होता है कि वहुधा भांवरों का मंगल मुहूर्त टल जाता है। स्मरण रहे कि पाणिग्रहण-संस्कार का मूल प्राण सप्तपदी ही है, जिसकी मुख्यता पर अवश्य ही ध्यान दिया जाना अनिवार्य है। भले ही उपरोक्त अन्यान्य कार्यक्रम समय के आगे पीछे भी हो जायें तो इतनी हानि नहीं।

पाणिग्रहण के समय—

ऋतुवती कन्या का कर्तव्य

विवाहे होमे परिक्रान्ते, कन्या यदि रजस्वला।
त्रिरात्रं दम्पती स्यातां, प्रथक् शय्यासनाशनौ॥
चतुर्थेऽहनि संस्नाता, तस्मिन्नाग्नौ यथाविधि।
विवाह होमं कुर्यात्तु कन्यादानादिकं ततः॥

होवे रजस्वला यदि कन्या शुभ यज्ञ भाँवरों के पहिले।
तो तीन दिवस के बाद स्वयं को चौथे दिन पावन कर ले॥
फिर हवन और अर्चन आदिक में बन सकती है सहयोगी।
क्योंकि बिना शुचिता के कोई क्रिया नहीं है उपयोगी॥

सरस जैन विवाह पद्धति का

कुल सामान

अष्ट द्रव्य और साकल्य—

श्रीफल ५, चावल १ किलो, गोला ५०० ग्राम, बादाम २५० ग्राम, लवंग १० ग्राम, इलायची १० ग्राम, पिस्ता १० ग्राम, किसमिस २५ ग्राम, छुहारा ५० ग्राम, जावित्री १० ग्राम, कर्पूर देशी १० ग्राम, केशर २ ग्राम, जायफल नग २, धूप १०० ग्राम, अगरबत्ती १ पुड़ा, देशी घी ५०० ग्राम, बूरा २५० ग्राम और जौ (जवा) २५० ग्राम।

समिध –

अगर २५ ग्राम, तगर २५ ग्राम, देवदारु २५ ग्राम, रक्त-चन्दन २५ ग्राम, मलयागिर २५ ग्राम, पीपल, बड़, आंम, आंकड़ा (अकौवा), कपास, ढाक और भरभूंट (अद्धाझारा) ढाई ढाई सौ ग्राम। ये सभी लकड़ियां सूखी, पतली, छोटी, बेघुनी और जीवजन्तु रहित होना चाहिये।

मन्दिर जी का सामान--

छत्र बड़ा १, छोटे ६, चँवर ४, सिंहासन १, पूजा के बर्तन दो जोड़ी, कलश ६, रकावी ६, अष्टमंगल द्रव्य, यंत्र, चंदेवा १, पलासना (अछावर), शास्त्र जी १, वन्धनवार ४, जयमाला ५,

आवश्यक फुटकर सामान--

सुपारी ५, हल्दी की गांठें ५, रोरी या गुलाल ५० ग्राम, मोली ५० ग्राम, रुई, माचिस पेटी, मंगल कलश १, दीपक ७, खूंटिया ४, नागर वेल, पान १५, मेंहदी १० ग्राम, फूल मालायें बड़ी ४ छोटी ५, यज्ञोपवीत ४, छोटी ध्वजायें १०, खादी ११ मीटर, लाल या पीला तूस १ मीटर, सुतली, सुई, धागा, कंकण, पंचरंग कागज, पचरंगा सूत आदि वस्तुयें यथाशक्ति होना चाहिये।

अधिक और अप्राप्य वस्तुओं के लिए गृहस्थाचार्य कन्या व वरपक्ष को वाध्य नहीं करें। उपरोक्त सभी सामान वर-पक्ष को संग्रह करके लाना चाहिए।

॥ श्री महावीराय नमः ॥

सरल जैन-विवाह पद्धति

मङ्गलाचरण

गङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥१॥

नमः स्यादर्हद्भ्यो, विततगुणधारास्त्रिभुवने ।
नमः स्यात् सिद्धेभ्यो, विगतगुण पाराद्युपतिभिः ॥
नमो ह्याचार्येभ्यः सुरगुरुनिकारो भवति यैः ।
उपाध्यायं चार्ये भवतिमिरयाने रविरिव ॥२॥

नमः स्यात्साधुभ्यो, जगदुदधियानं तव पदम् ।
इदं तत्त्वं मन्त्रं पठति शुभकार्ये यदि जनः ॥
असारे संसारे, तव पदयुगध्याननिरतः ।
समृद्धीवान्मर्त्यः, स हि भवति दीर्घायुररुजः ॥३॥

मगलमय श्री महावीर हैं, मंगलमय गौतम गणधर ।
मंगलमय हैं कुन्दकुन्द मुनि, जैनधर्म मंगलमय वर ॥
पंच परम गुरुवर्य चरण में, बारंबार प्रणाम करूं ।
उनके आदर्शों पर चलकर, यह असार संसार तरूं ॥
हे वृषभेश्वर युगनिर्माता, जीवन-कला सिखा देना ।
लौकिक व्यवहारो जीवों को, निश्चय मार्ग दिखा देना ॥

वैवाहिक उद्देश्य एवं परम्परा

प्रावर्तयज्जनहितं खलु कर्मभूमौ,
षट्कर्मणा गृहिवृषं परिवर्त्य युक्त्या ।
निर्वाणमार्गमनवद्य-मजः स्वयम्भूः,
श्रीनाभिसूनुजिनपो जयतात् स पूज्यः ॥

करके सफल गृहस्थ धर्म को, रखा परम आदर्श महान् ।
षट् अजीविकाओं के द्वारा, किया दिव्य जोवन निर्माण ॥
फिर तीर्थंकर का पद पाकर, पाया चरम लक्ष्य निर्वान ।
जन्म-मरण से मुक्त हो गये, नाभिराय के सुत यशवान ॥

श्रीजैनसेनवचनान्यवगाह्य जैने,
संघे विवाह-विधि-रुत्तमरीतिभाजाम् ।
उद्दिश्यते सकलमंत्रमणीः प्रवृत्ति,
सानातनीं जनकृतापमि संविभाव्य ॥

श्री जिनसेनाचार्य पूज्य का, मथ कर वचनामृत भंडार ।
जग में प्रचलित पूर्व-पुरातन, रीति-नीति जिसका आधार ॥
श्रुत धर्मावलम्बियों के हित यह विवाह पद्धति सुखकार ।
मंगल मंत्रों से आच्छादित प्रतिपादित नय के अनुसार ॥

अन्याङ्गनापरिहृते-निजदारवृत्ते,--
धर्मो गृहस्थजनताविहितोऽयमास्ते ।

नाऽऽदिप्रवाह इति सन्ततिपालनार्थ-
मेवं कृतौ मुनिनृपे विहितादरः स्यात् ॥

पर-नारी का त्याग निरन्तर, निज नारी में निष्ठावान ।
सन्ततियों की परम्परा में, ये विवाह विधियां वरदान ॥
किये इसी ने नव दम्पति को, दम्पति के अधिकार प्रदान ।
अनुगारों से अनुप्राणित है, यह शुभ मंगलमयी विधान ॥

卐

कुर्वन्तु ते मङ्गलम्

(मङ्गलाष्टक)

(१)

श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्रमुकुट-प्रद्योनरत्न—प्रभा—
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनांभोधीन्दवः स्थायिनः ॥
ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः ।
स्तुत्या योगिजनैश्च पंचगुरवः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥

ऋद्धि-सिद्धि धारक परमेष्ठी, मंगलमयी महा सुखधाम ।
योगीश्वर जिनको ध्याते हैं, ध्यानमग्न होकर निशि याम ॥
सुर सुरेन्द्र इन्द्रादि भक्तियुत, जिनको नमते नित्त अभिराम ।
ऐसे पूज्य पंच परमेश्वर, इनको बारम्बार प्रणाम ॥

(२)

सम्यग्दर्शन—बोध—वृत्तममलं, रत्नत्रयं पावनं ।
मुक्ति—श्री-नगराधिनाथ—जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः ॥
धर्मः सूक्ति सुधा च चैत्य-मखिलं चैत्यालयं श्रयालयं ।
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित थे, पावन रत्नत्रय अविकार।
सूक्ति सुधा, जिनविम्ब, जिनालय शुभ्र लक्ष्मी का आकार॥
संकटहारी, सुख विस्तारी, श्री सम्पन्न महान उदार।
ऐसे मुक्ति नगर के वासी, मंगलमय शिव सुख दातार॥

(३)

नाभेयादिजिनाः प्रशस्तवदनाः, ख्याताश्चतुर्विंशतिः।
श्रीमन्तो भरतेश्वर प्रभृतयो, ये चक्रिणो द्वादश॥
ये विष्णु प्रति विष्णुलाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशतिः।
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्ठिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलं॥

श्रीनाभेय आदि चौबीसो तीर्थङ्कर त्रिलोक में ज्ञात।
भरत आदि जो द्वादशचक्री इनमें गर्भित दिव्य प्रभात॥
श्री नारायण, प्रतिनारायण, वलभद्रादि जगत विख्यात।
शुभ मंगल ये करें निरन्तर, त्रेसठ महा-पुरुष दिन रात॥

(४)

ये पंचौषधि ऋद्धयः श्रुत तपोवृद्धिं गताः पंच ये।
ये चाष्टाङ्ग महानिमित्त कुशलाश्चाष्टौ विधाश्चारिणः॥
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि वलिनो ये वुद्धि ऋद्धीश्वराः।
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवरः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥

उत्तम तप से ऋद्धि प्राप्ति कर, की सर्वोषधि ऋद्धि प्रसन्न।
चारण आदि ऋद्धियां धारी, पञ्च ज्ञान द्वारा सम्पन्न॥
सप्त ऋद्धियों के अधिपति, अष्टांग निमित्तों से आसन्न।
ऐसे भव-जल सेतु जिनेश्वर, सदा करें मंगल उत्पन्न॥

(५)

ज्योतिर्व्यन्तर भावनामर गृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः ।
जम्बू शाल्मलि चैत्य शाखिषु तथा वक्षाररूप्याद्रिषु ॥
इक्ष्वाकार गिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे ।
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥

व्यन्तरवासी भवन ज्योतिषी, वैमानिक निवास-सुख खान ।
जम्बू वृक्ष गिरिराज कुलाचल,चैत्य शाल मलि विटप महान ॥
कुण्डल नगर द्वीप नन्दीश्वर, गिरि विजयार्द्ध आदि छविमान ।
सकल मानुषोत्तर के पर्वत मन्दिर मङ्गल करें महान ॥

(६)

कैलाशो वृषभस्य निर्वृति मही वीरस्य पावापुरी ।
चम्पा वा वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलोऽर्हताम् ॥
शेषाणामपि चोर्जयन्त शिखरी नेमीश्वरस्यार्हतः ।
निर्वाणावनयः प्रसिद्ध विभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥

ऊर्जयन्त सम्मेद शिखर कैलाश शृङ्ग श्री पावापुर ।
करे ऋषभ, नेमीश, वीर की ये निर्वाण भूमि दुखचूर ॥
वासुपूज्य की चम्पानगरी, करे प्राणियों के दुख दूर ।
पुण्य भूमियां रखें अमर यह चढ़ता मंगलमय सिन्दूर ॥

(७)

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्प दामायते ।
संपद्येत रसायनं विषमपि प्रीति विधत्ते रिपुः ॥
देवा यांति वशं प्रसन्नमनसः किं वा वहु ब्रूम हे ।
धर्मादेव नमोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥

जिसके शुभ प्रभाव से फणधर, बन जाता है मुक्ताहार ।
क्रूर खड्ग भी इसी धर्म से पुष्प-माल बनती साकार ।
विष बनता है दिव्य रसायन, नेही बनते शत्रु महान ।
ऐसा धर्म सुरेन्द्रोपासित मंगलमय हो पुण्य प्रधान ॥

(८)

यो गर्भावतरोत्सवे भगवतां, जन्माभिषेकोत्सवो ।
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो, यः केवलज्ञानभाक् ॥
यः कैवल्यपुर प्रवेश महिमा, सम्पादितः स्वर्गिभिः ।
कल्याणानि च तानि पंच सततं, कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥

गर्भ-जन्म अभिषेक महोत्सव, तीर्थंकर का क्रम निर्वाण ।
परि निष्क्रमण महोत्सव केवल,ज्ञान महोत्सव मय निर्वाण ॥
ऐसे पुण्य महोत्सव फूंके नव-दम्पति में जीवन प्राण ।
ये महिमेष पंच कल्याणक करें सदा मंगल कल्याण ॥

(९)

इत्थं श्री जिन मंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्पत्करं ।
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणां मुखाः ॥
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैः धर्मार्थकामान्विता ।
लक्ष्मीराश्रियते व्यपाय रहिता निर्वाण लक्ष्मीरपि ॥

महिमामयी पंच कल्याणक मंगल अष्टक परम विशाल ।
पढ़ते, सुनते, जपते हैं, जो भक्ति सहित यह मंगल-माल ॥
अर्थ-काम-पुरुषार्थ युक्त, सुख सम्पति धारी उन्नत-भाल ।
सहज मोक्ष-लक्ष्मी पाकर के बनते हैं समृद्धि-निहाल ॥

॥ इति श्री मंगलाष्टकम् ॥

प्रथम सोपान वाग्दान अर्थात सगाई

(वचनबद्धता)

कर्त्तव्य संकेत—

(१) जिस मंगल-दिवस के शुभ मुहूर्त में यह सगाई कार्य सम्पन्न किया जाना है उसके पूर्व युगल पक्षों द्वारा जैन ज्योतिष अनुसार जन्म पत्रिका के आधार से वर-कन्या के गुणों का समुचित मिलान तथा पारस्परिक सौहार्द योग अनिवार्य है।

(२) निर्धारित वाग्दान दिवस के शुभावसर पर उभय पक्ष के कुटुम्बियों और संबंधियों तथा समाज के पंचों, सम्भ्रान्त प्रमुखों की उपस्थिति आवश्यक है।

(३) समागत अतिथियों का यथाविधि, यथाशक्ति भोजन पानादि द्वारा सत्कार किया जाना चाहिये।

(४) सगाई के दिन सुगाहिल महिलाओं द्वारा मंगलगान, वाद्य पूर्वक वर एवं कन्या को जिनालय ले जाकर दर्शन, वंदन, अर्चन आदि प्राथमिक क्रियाएँ अवश्य कराई जावें।

(५) तदनन्तर रात्रि अथवा दिवस के शुभ मुहूर्त में युगल पक्षीय प्रतिष्ठित पंचों की उपस्थिति में गृहस्थाचार्य द्वारा मंगलपाठ एवं मंत्रोच्चारण होना चाहिये। पश्चात उभय पक्ष के कुल गोत्रादि का पारस्परिक परिचय दिया जाना इसलिए आवश्यक है कि यह संवंध सगोत्रीय तो नहीं है।

(६) अन्त में उपस्थित समाज के प्रमुखों की अनुमति एवं स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर उभय पक्ष को इस नव स्थापित संवंध के प्रति प्रतिज्ञावद्ध होना चाहिए।

विवाह का शुभारंभ:-लग्न-विधि

लगुन का दस्तूर सगाई हो चुकने के पश्चात् कोई भी शुभ दिन निश्चित कर कन्या के पिता या अभिभावक द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इसके मुख्य तीन अंग हैं—

(१) लग्न-पत्रिका लेखन (२) प्रेषण (३) वाचन

लग्न-पत्रिका में वैवाहिक कार्यक्रमों की निर्धारित तिथियों का संदेश एवं सम्बन्ध दृढ़ता की प्रशस्तियां रहती हैं—

लग्न-पत्रिका लेखन-विधि

किसी विद्वान लेखक या सुकवि द्वारा प्रशस्ति सहित पत्रिका लिखवाई जाती है। उसके पूर्व जैन ज्योतिषी द्वारा विवाह के शुभ मुहूर्त का शोधन कराया जाना आवश्यक है।

प्रेषण-विधि

कन्या के अभिभावक सर्व प्रथम सिद्ध यंत्र की पूजन करें। पुनश्च समाज के प्रमुखों की उपस्थिति में उस लग्न-पत्रिका को अक्षतादिक मांगलिक वस्तुओं के साथ लपेट कर अपने आत्मीय विश्वस्त व्यक्ति के हाथ वर के पिता के पास भेजें।

लग्न-पत्रिका का प्रारूप

श्री शुभ विवाह लग्न-पत्रिका

卐 श्री ऋषभाय नमः 卐

ॐ

श्रीमानस्मान् वितरतु सदा, आदिनाथ प्रियावै,
श्रेयोलक्ष्मीं क्षितिपति गणैः सादरं स्तूयमानां ।
भर्तुर्यस्य स्मरण करणात्तो तेऽपि सर्वे विवस्वन्-
मुख्याखेटा ददतु कुशलं सर्वदा देहभाजाम् ॥
वंशो विस्तारतां यातु कीर्तिर्यातु दिगन्तरे ।
आयु विंपुलतां यातु यस्यैषा लग्न-पत्रिका ॥
यावन्मेरु धरापीठे यावच्चन्द्र दिवाकरौ ।
तावन्नन्दतु वालोऽय यस्यैषा लग्न-पत्रिका ॥

श्री ऋषभाय नमः अथ श्री शुभ संवत्सरे श्रीमन्नृपति वीर विक्रमादित्य राज्योदयात् गताब्दा (सं०) २०.................... श्री शालिवाहनशकाब्दा १८........श्री वीर निर्वाण संवत्सरा २५........ तत्र चैत्रादौ गुरुमानेन............... नाम सम्वत्सरे श्री सूर्ये.......... यणे................ऋतौ............श्रीमहामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे.......... मासे शुभे..................पक्षे...............तिथौ...............वासरे................ मंडपाच्छादनं शुभं । पुनः...........मासे शुभे..........पक्षे.......... तिथौ...........वासरे मृत्तिकानयनं (मागरमाटी अरगना) शुभम् । पुनः............मासे शुभे.............पक्षे...............तिथौ................... वासरे वर यात्रायाः (वरात) आगमनं (आगौनी) विनायक

(सिद्ध) यन्त्र पूजा, द्वारोत्सवश्च शुभम्। पुनः.........मासे शुभे ....पक्षे....... ....तिथौ..............वासरे जिनगृह-वन्दनम् गीतमाङ्गल्यादिकं शुभम्। वर वध्वौ चिरंजीविनौ भूयास्ताम्।

मङ्गलं भगवान वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो: जैन धर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥

卐 श्री शुभ विवाह लग्न कुण्डली चक्रम् 卐
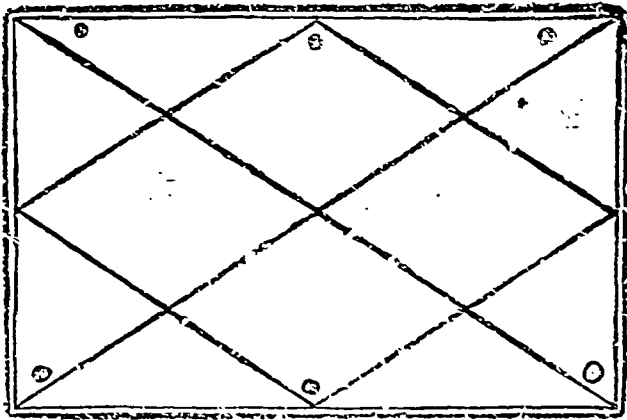
लग्न-पत्रिका वाचन-विधि

यह क्रिया वर-पक्ष के यहां सम्पन्न होती है। वर के अभिभावक विनायक यंत्र की पूजन करें। फिर आत्मीय वन्धुओं को सम्मानपूर्वक एकत्र कर उनके ही किसी जैन विद्वान द्वारा लग्न-पत्रिका का वाचन कराना

एक बाजौटे या चौकी पर पीले चावलों से ५ स्वस्तिक बनाकर कलश में सवा रुपया, एक सुपाड़ी, एक हल्दी की गांठ और कुछ पीले चावल छोड़कर जल भर दीजिये। कलश पर स्वस्तिक बनाईये, पुष्प हार से सजाईये व एक चौमुखा दीपक जलाकर रखिये। फिर वाचक विद्वान् जय ध्वनि पुष्पवृष्टि करता हुआ मंगलाष्टक पाठ या नौ वार णमोकार मंत्र पढ़कर वर को तिलक लगाकर माला पहिनावे तथा वधू पक्ष के यहां से आये हुए वस्त्राभूषण पहनावे और उसे वह लग्न पत्र सौंपे। वर महोदय वह लग्न-पत्र समाज के श्रेष्ठ मुखिया को सौंपे तथा मुखिया भी तिलक और माला आदि से वाचक विद्वान का उचित सत्कार कर वह लग्न-पत्र सौंपे। पश्चात् वाचक विद्वान लग्न-पत्र वांच कर उपस्थित जन समुदाय को सुनावे। उपरान्त वर का अभि-भावक अपना स्वीकृति सूचक पत्रोत्तर उसी पत्रवाहक के हाथ देकर यथायोग्य सम्मान करके उसे विदा करे।

॥ इति लग्न-विधि ॥

अर्घ्यवितारण एवं विनायकी

ये दोनों क्रियायें विवाह के तीन दिन पूर्व से वर एवं कन्या के यहां अपने अपने घरों में ही सम्पन्न की जाती हैं। अर्थात् तभी से कन्या अर्घीय नायिका होकर विशेष नायिका का पद प्राप्त करती है और वहां वर विशेष नायक (विनायक) का पद प्राप्त करता है।

अतएव विवाह जैसे मांगलिक कार्य की निर्विघ्न सम्पन्नता के लिए वर और कन्या द्वारा अवश्य ही तीन दिन तक अपने

अपनें ग्राम के जिनालय में विनायक (सिद्ध) यंत्र की पूजन आराधन किया जाना आवश्यक है।

रक्षा बन्धन-विधि

इन्हीं तीन दिवसों में से किसी एक दिन शुभ मुहूर्त में विनायक यंत्र के समक्ष गृहस्थाचार्य द्वारा वर-कन्या के करों में रक्षा सूत्र बांधे जाने चाहिए क्योंकि ये सूत्र गृहस्थ धर्म के षट् आवश्यक कर्तव्यों एवं व्रतों में दृढ़ बन्धन के प्रतीक हैं।

कंकण बन्धन वर के दाहिनें तथा कन्या के बांयें हाथ में पचरंगे सात तार वाले दुहरे सूत्रों द्वारा छः छः गाँठें लगाकर किया जाता है।

उक्तं च—

तत्रैव कंकण सुबन्धन मिष्यते बुधैः,
सत्येन सुन्दर वचोवसनावृतेन ।
गेहि व्रते दृढ़ निबंधन मस्तु तत्कुलं,
सं पालयत्विति वचः प्रतियादयित्रा ॥

रक्षा बन्धन महत्व

जिनेन्द्र-गुरुपूजनं, श्रुतवचः-सदाधारणं ।
स्वशीलयमरक्षणं, ददनसत्तयो-बृहंणम् ॥
इति प्रथित षट् क्रिया, निरतिचार मास्तां तवे-
त्यथ प्रथनकर्मणे विहितरक्षिकाबन्धनम् ॥

देव-शास्त्र गुरु की गुण गरिमा जीवन का धार्मिक आधार ।
इन पर श्रद्धा रहे निरन्तर श्रीजिन आगम के अनुसार ॥
शुभ पट कर्मों का पालन हो दूर रहे मिथ्या अतिचार ।
सत्य-शील-संयम की रक्षा जोवन भर हो त्रिविध प्रकार ॥
आज तुम्हारे कर--कमलों में शोभित है पावन कंकण ।
यह पुनीत कङ्कण-वन्धन है जोवन भर का गठ वन्वन ॥
यह कङ्कण-वन्धन जीवन भर नवदम्पति का जीवन-धन ।
शुभ गृह मन्दिर का गर्भित है, इसमें मङ्गलमयी सृजन ॥
शुभ षट् कर्मों के पालन का, द्योतक है इसका कण कण ।
धर्म पुण्य के द्वारा होगा दम्पति जोवन का सिञ्चन ॥
जिनवर वेदी के समक्ष दोनों इसको कर रहे ग्रहण ।
करें युगल जोड़ी की रक्षा, श्री-जिनवर के दिव्य चरण ॥

रक्षा वन्धन-मंत्र

ॐ जायापत्योरेतयो र्गृहीतपाण्योरेसस्मात्परम् आचतुर्थाद् आहोस्विद् आसप्तमाद् इज्या परमस्य पुरुषस्य गुरूणामुपास्ति, देवानामर्थेनाग्निहोत्रं, सत्कारोऽभ्यागतानां विश्राणनं वनीयकानाम् इत्येवं विधातु' प्रतिज्ञायाः सूत्रं कंकण सूत्र व्यपदेशभाक् रजनी-सूत्रं मिथो मणिवन्धे प्रणह्य ेत ।

वर यात्रा शुभागमन-द्वारचार

वारात के शुभागमन स्वागत एवं अगवानी की समस्त सत्कार विवि कन्या पक्ष द्वारा सम्पन्न की जाती है । धूमधाम पूर्वक जव वर यात्रा नगर प्रदक्षिणा करके कन्या के द्वार पर

पहुँचती है तब सौभाग्यवती महिलायें कलश, दीप माला एवं मंगल गान वाद्य पूर्वक उसका स्वागत करती हैं। उस समय गृहस्थाचार्य मंगलाष्टक पढ़ता हुआ पुष्प वृष्टि करे तथा मंत्रोच्चारण पूर्वक वर का तिलक करावे। गृहस्थाचार्य पुष्प वर्षा करता हुआ मंगल-पाठ पढ़ता रहे।

मंगल-तिलक

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

कुन्दकुन्द आचार्य पूज्यवर, गौतम गणधर आदि महान्।
शुभ अवसर की शुभ वेला में, देवें मंगलमय वरदान ॥
विकट संकटों को हरते हैं, जिनवर वर्द्धमान भगवान।
आदि अन्त जिन चरण युगल नित करते रहें परम कल्याण ॥

मांगलिक तिलक मंत्र

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा वरस्य सर्वाङ्ग शुद्धि कुरु कुरु स्वाहा।

तिलक करने के पश्चात् कन्या पक्ष के अभिभावकगण माल्यार्पण एवं उपहारों द्वारा वर का अभिनन्दन करें।

गृहस्थाचार्य द्वारा प्रदत्त आशीर्वचन

दीर्घायुरस्तु शुभमस्तु सुकीर्तिरस्तु,
सद्बुद्धिरस्तु धनधान्यसमृद्धिरस्तु !
आरोग्यमस्तु विजयोऽस्तु महोस्तु पुत्र
पौत्रोद्भवोऽस्तु तव सिद्ध पतिप्रसादात् ॥

जीवन बुद्धि विवेकमयी हो, उमडे सुख संतोष अपार।
गृह मन्दिर में वहे निरन्तर, शान्ति प्रेम समता की धार।
प्रेम भरा परिवार रहे नित, हो सुख वैभव पर अधिकार।
केशर कुंकुम अष्ट गंधयुत, तिलक सदा हो मंगलकार॥

उपहार समर्पण

भूयात्सुपद्मनिधि सम्भव—सारवस्त्रं,
भूयाच्च कल्पकुजकल्पित दिव्यवस्त्रं।
भूयात्सुरेश्वर समर्पित—सारवस्त्रं,
भूयान् मयार्पितमिदं च सुखाय वस्त्रम्॥

होवें सदा मुवारिक तुमको कमल सार वस्त्राभूषण।
होवें सदा मुवारिक तुमको कंठ हार वस्त्राभूषण॥
वस्त्राभूषण तुम्हें मुवारिक इन्द्र समर्पित स्वीकारो।
हे आयुष्मान्! मेरे द्वारा दिये वस्त्र तन पर धारो॥

अक्षत वृष्टि मन्त्र

ॐ परमेश्वराय नमः

इस मंत्र को पढ़कर गृहस्थाचार्य वर के मस्तक और वस्त्रों पर अक्षत वृष्टि करे।

दीपार्चन-विधि

वर का अभिनन्दन अभिभावकों द्वारा हो चुकने के उपरांत अब महिला वर्ग की वारी आती है। सर्वप्रथम कन्या की मां

अक्षत-पात्र में प्रज्वलित चौमुखा दीपक रखकर वर का मुखावलोकन करे और फिर आरती उतार कर पुष्पवृष्टि करे तथा उपहार भेंट करे। तदनन्तर अन्यान्य संबंधित महिलायें भी यथाशक्ति तथोक्त क्रिया सम्पन्न करें। उपस्थित महिलायें मंगल गीतों द्वारा वातावरण को मधुर बनाती रहें।

विवाह के शेष तीन-सौपान

(प्रदान, वरण, पाणिपीडन)

प्रदक्षिणा विधि के कर्त्तव्य—

सर्वप्रथम गृहस्थाचार्य प्राङ्गण मण्डप में पहुँचकर वेदी, कुण्ड, अष्ट द्रव्य, साकल्य, समिध आदि को यथावस्थित करके चतु कलश स्थापना, मंगल कलश-स्थापना, मंगलद्रव्य स्थापना एवं यंत्रादिक की रचना एवं स्थापना अगले पृष्ठों में अंकित विधियों के अनुसार पूर्व ही स्वयं करले और भांवर मण्डप की शोभा को रमणीक बना लेवे।

इस बीच वर और कन्या स्नान करके श्रीफल हाथ में ले जिन दर्शन को जावे और फिर उन्हें गाजे-बाजे के साथ विवाह मण्डप में लाया जावे। और जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है निम्न-सरकार विधि सम्पन्न की जावे—

पद-प्रक्षालन एवं आरती

कन्यायाः जननी वेगा-दागत्य पूजयेद् वरम् ।
प्रक्षाल्य तत्पादौ भूपा, मुद्रादि चार्पयेन्मुदा ॥
कन्याया मातुलः प्रीत्या, वरं धृत्वा करेण वै ।
मंडलाभ्यन्तरं नीत्वा कन्यामप्यानयेत्ततः ॥

द्वाराचार अनन्तर श्वश्रू जिनवर-दर्शन के उपरान्त ।
पद प्रक्षालन तथा आरती करे प्रवर की सार्थ प्रशान्त ।
वर एवं सौभाग्यकांक्षिणी कन्या के मामा द्वारा ।
ससम्मान फिर लाये जावें मण्डप में हो जयकारा ॥

वर कन्या विवाह-मण्डप में पदार्पण करें कि इसके पूर्व ही सुहागिन महिलाओं द्वारा रोली हल्दी आदि की कलापूर्ण अल्पना (चौक पूरण) उस स्थान पर की जाना चाहिए जहां युगल भावी दम्पत्ति बैठकर पूजन और हवन सुविधा पूर्वक कर सकें। अर्थात् यदि गृहस्थाचार्य महोदय ने वेदी व हवन कुण्ड पूर्वाभिमुख स्थापित किये हैं तो वर कन्या के आसन निकट बाजू में उत्तराभिमुख रखे जावें। आसन अथवा चौकियें उन्हीं अल्पनाओं के ऊपर पास पास रखी जावें। चौक में अक्षत सुपाड़ी तथा सवा रुपया अवश्य रखना चाहिये।

कन्या द्वारा वर का अभिनन्दन

दोनों हाथों में पुष्पमाल लिए हुए कन्या विवाह मंडप में प्रवेश करे और अपने सन्मुख स्थित वर महोदय के कण्ठ में उसे पहिनाकर अभिनन्दन करे। गृहस्थाचार्य कन्या को वर के दक्षिण भाग में स्थित आसन पर बैठने का आदेश दे। तदुक्तम् च—

कन्या पुष्पोपहारं च संक्षिपेद् वर कण्ठ के।
कन्या दक्षिण भागस्था वरस्तद्वामभाग के॥

मंगल पाठ-उच्चारण

वैवाहिक क्रियायों को प्रारम्भ करने के पूर्व गृहस्थाचार्य मंडप को भ० महावीर स्वामी के जयघोष से गुंजायमान करा देवे। तदनंतर मंगलाचरण, उद्देश्य तथा मंगलाष्टक आदि का सस्वर पाठ करते हुए चतुर्दिक पुष्पवृष्टि करते रहें।

कंकण बन्धन विधि

यह विधि पिछले पृष्ठों में रक्षा बन्धन विधि के नाम से दी गई है उसी के अनुसार यहां भी' वर के दाहिने और कन्या के बाँयें हाथ में पहिनाना चाहिये। इस कंकण में सुपारी व चांदी, तांवा लोहे आदि के छल्ले वकचेरा वांधे जाते हैं।

तत्पश्चात प्रारम्भ होने वाले विवाह के मांगलिक शुभ कार्यों में आने वाले विघ्न वाधाओं की शान्ति के लिये

"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा वरस्य सर्वोपद्रव शान्ति कुरु कुरु स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़कर पुष्प वर्षा पूर्वक दशों दिशाओं को प्रतिवन्धित करना चाहिये।

यन्त्राकृति प्रारूप

मध्ये तेजस्ततः स्याद्वलयमथ धनुः संख्यकोष्ठेषु पञ्च।
पूज्याद्यान्स्थाप्य वृत्तो, तत उपरितने द्वादशांभोरुहाणि॥

तत्रस्युर्मंगलान्यु-त्तमशरण पदाः पञ्च पूज्यान् ममर्पीन ।
धर्म प्रख्यातिभाज स्त्रिभुवन पतिना वेष्ठयेदं कुशाढ्यम् ॥

हृदय कमल की मध्य कर्णिका, दिव्य ध्वनि ॐकार स्वरूप ।
असिआउसा पंच गुरु वाचक द्वितिय वलय में लिखें अनूप ॥
द्वादश दल युत वलय तीसरा मंगल उत्तम और शरण ।
दंडक लिखिये सिद्ध यंत्र में मन्त्र विनायक वशीकरण ॥

नोट—सिद्ध यन्त्र के अभाव में उपरोक्त प्रारूप के अनुसार रकावी या कागज पर विनायक यन्त्र का निर्माण किया जा सकता है ।

सिद्धयंत्र स्थापन

सिद्धान् विशुद्धान्वसु कर्म मुक्तान्,
त्रैलोक्य शीर्षस्थिन चिद्विलासान् ।
संस्थापये भाव विशुद्धि तातृन,
सन्मंगलं प्रान्य समद्धयेऽहम ॥

अष्ट कर्म से रहित सिद्धयति सिद्ध-शिला जिनका आगार ।
आतमा का रस स्वादन करते, परमागम सुख का भण्डार ॥
जो महान मंगलकारी हैं, सर्व ऋद्धियों के दातार ।
सिद्धों का यन्त्र स्थापन यह महिमा मंडित मंगलकार ॥

नोट—गृहस्थाचार्य उपरोक्त पद्य पढ़कर वेदी को प्रथम कटनी पर स्थित सिद्ध यन्त्र का वर से स्पर्श करावे ।

शास्त्र स्थापन

देवि श्री श्रुतदेवते भगवति त्वत्पाद-पङ्के रुह ।
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते ।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिन मुखोद्भूते सदा त्राहि मां ।
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं संपूजयामोऽधुना ॥

सत्य मार्ग दर्शाकर करते, जो भव-भटकों का कल्याण ।
सारभूत करते गृहस्थ का, जो नवीन जीवन निर्माण ॥
उपदेशों द्वारा हर लेते मन का घोर तिमिर अज्ञान ।
ऐसे जिन-शास्त्रों का मन में रहे सदा सच्चा श्रद्धान ॥

नोट—गृहस्थाचार्य उपरोक्त पद्य पढ़कर द्वितीय कटनी पर स्थित शास्त्र का वर से स्पर्श करावे ।

चौंसठ ऋद्धि यंत्र स्थापन

कैवल्यऋद्धितः प्रारभ्य ऋद्धिरक्षीणमहानसम् ।
कुर्वन्तु ऋषयो स्वस्तिः यन्त्रमेनं स्थापितम् ॥

केवलज्ञान ऋद्धि से लेकर चौंसठवी अक्षीण महान् ।
ऋद्धि यंत्र का स्थापन यह स्वस्ति युक्त मांगल्य विधान ॥

नोटः—तृतीय कटनी पर स्थित चौंसठ ऋद्धि यन्त्र का स्पर्श उपरोक्त पद्य पढ़कर वर से कराया जावे ।

मंगल-कलश स्थापन

ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणोमतेऽस्मिन् विधी यमानविवाहकर्मणि मासोत्तमे (महिने का नाम) मासे अमुक दिने अमुक लग्ने भूमिशुद्धयर्थ, पात्र शुद्धयर्थं, क्रियाशुद्धयर्थं, पुण्याहवाचनार्थं नवरत्नगन्धपुष्पाक्षतवीजपुरादिशोभितं शुद्ध प्रासुकतीर्थ-जल-पूरितं मंगलकलशस्थापनं करोमि श्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

नोटः—गृहस्थाचार्य इस मंत्र को पढ़कर शास्त्र जी के उत्तर में जल-अक्षत, पुष्प, हल्दी, सुपारी और सवा रुपया सहित मंगल-कलश का वर महोदय से स्पर्श करावे। पश्चात् मंगलकलश की महिमा को समझावे।

मंगल-कलश-महिमा

संस्थाप्याढकवारिपूर्णकलशान्पद्मापिधानाननान्।
प्रायोमध्यघटान्वितानुपहितान्सद्गन्धचूर्णादिभिः ॥
द्रोणायां परिपूरितान् प्रतिचतुःकोणेषु यज्ञच्ितते।
कुम्भान् न्यस्य सुमंगले विदधते तेषु प्रसूनं वरम् ॥

भारतवर्ष विशाल देश यह धन्य धान्य पूरित स्वाधीन।
गुरु पुरुषों की परम्परा के वशज श्रीवर राज नवीन ॥
यह पवित्र शुभ मंगल वेला शुभ संवत् शुभ दिन शुभ माह।
शुभ मुहूर्त में आज हो रहा यह शुभ मंगलमयी विवाह ॥
इस आदर्श प्रणय वन्धन पर सुलभ साधनों के अनुसार।
लग्न शुद्ध है, धरा शुद्ध है, पात्र शुद्ध है, मंगल-कार ॥

शुभ नवरत्न सुगंधित अक्षत पुष्प सुशोभित अपरम्पार।
इसमें प्राशुक शुद्ध तीर्थ जल भरा गया निर्मल अविकार॥

ऐसा मंगलमयी कलश यह महिमामय सौभाग्य निकेत।
इसमें गर्भित सद्गृहस्थ के मंगलमय जीवन-संकेत॥
यह शुभ मंगल कलश थापना यहां हो रही हर्ष समेत।
इसको सदा भरा रखने में ये नव-दम्पति रहें सचेत॥

जल शुद्धिकरण-मंत्र

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्म-महापद्म तिगिंच्छ केशरि पुण्डरीक महापुण्डरीक गंगासिन्धुरोहित-रोहितास्याहरिद्धरिकान्ता सीतासीतोदा नारीनरकान्ता स्वर्णरूप्य-कूलारक्तारक्तोदा क्षीराम्भोनिधिजलं सुवर्णघटप्रक्षिप्तं सर्वगंधपुष्पाढ्यमामोदक पवित्रं कुरु कुरु झ्रौं झ्रौं वं मं हं सं तं पं स्वाहा।

नोटः—यह मन्त्र पढ़कर मंगल-कलश में वर द्वारा थोड़ा जल डलवाकर उसके जल को पवित्र करावें।

रत्नत्रय का प्रतीक यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत के तीन सूत्र ये रत्नत्रय के ही प्रतीक हैं।
लौकिक अथवा मोक्ष पंथ में जो नितान्त ही शोभनीक हैं॥
हे गृहस्थ के युगसंचालक, शान्त हृदय हो, तन-पावन हो।
श्रावक के षट् आवश्यक से संस्कारयुत मन भावन हो॥

यज्ञोपवीत–मन्त्र

ॐ नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतार्हं रत्नत्रय स्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

नोटः—उपरोक्त मंत्र पढ़कर वर से यज्ञोपवीत का संकल्प कराया जावे।

यन्त्र प्रक्षालन

मंत्रराजमिदं सिद्धमवधानोपपत्तितः।
जपितं जपमानाय शान्तिदं श्रीकरं परं॥
यन्त्रं क्षालयेत् पूर्वं ततो मन्त्रं जपेत् पुमान्।
जन्म जन्म कृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥

सब यन्त्रों में यन्त्र शिरोमणि, सिद्धचक्र यह मंत्र विशाल।
शान्ति और श्रीवृद्धि हेतु हम, करते हैं इसका प्रक्षाल॥

उपरोक्त पद्य पढ़कर गृहस्थाचार्य निम्न मंत्र का उच्चारण करके सिद्धयंत्र का प्रक्षालन वर के हाथ से करावे।

अभिषेक–मन्त्र

ॐ ह्रीं भूर्भुवः स्वरिह एतद् विघ्नौपवारकं यन्त्रं वयम् पारिषिञ्चयामः।

पूजन–अर्चन

ॐ जय जय जय

नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः, पुष्पाञ्जलिक्षिपामि ।

लोक में समस्त अरिहंतों को, सिद्धों को, आचार्यों को, उपाध्याओं और सर्व साधुओं को नमस्कार हो ।

चत्तारि मंगलं—(१) अरिहंता मंगलं (२) सिद्धा मंगलं (३) साहू मंगलं (४) केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा—(१) अरिहंता लोगुत्तमा (२) सिद्धा लोगुत्तमा (३) साहू लोगुत्तमा (४) केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-(१) अरहंते सरणं पव्वज्जामि (२) सिद्धे सरणं पव्वज्जामि (३) साहू सरणं पव्वज्जामि (४) केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा ॥

यहां पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये ।

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पञ्च – नमस्कारं, सर्व – पापैः प्रमुच्यते ॥

कोई कैसा भी प्राणी हो, संसारी पवित्र अपवित्र ।
दुख में सुख में, भय संकट में, यह शुभ मंत्र जगत का मित्र ॥
पञ्च नमस्कारों से प्राणित, यह मंगल जय मंत्र महान ।
इसके द्वारा पाप नाश कर, संसारी वनता यशवान ॥

अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं स वाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥

अति अपवित्र, पवित्र, अरक्षित ज्ञानवान अथवा अज्ञान ।
शुद्ध भावनाओं से करता जो इसका निशिदिन शुभ ध्यान ॥

इसके आराधन से वनता, अन्तरंग वहिरंग उदार।
सकल पातकों का होता है, इसी मंत्र द्वारा परिहार॥

अपराजित - मन्त्रोऽयं, सर्व-विघ्न - विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः॥

यह जय-मन्त्र महा अजेय है, इसमें आत्मालोक निवास।
सारी वाधाएँ होती हैं, इसके द्वारा सहज विनाश॥
इसका पुण्य-स्मरण निरन्तर, मानस को करता वलवान।
सर्व मंगलों में महान है, यह पहिला मंगल गुख खान॥

एसो पंच-णमोयारो, सव्व पाव-प्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलम्॥

णमोकार शुभ-मंत्र सहज ही, क्षय करता जग के दुख दोष।
जो इसको जपते हैं उनको, मिलते मनवांछित सुख कोष॥
यह समस्त पापों को हर कर, उर में भरता सुख सन्तोष।
यह मंगलमय महामंत्र है, अति मंगलकारी-निर्दोष॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म, - वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्वीज, सर्वतः प्रणमाम्यहम्॥

इसमें अर्हम् परम ब्रह्म, परमेष्ठीवाचक सिद्ध स्वरूप।
मूल रूप में विद्यमान है, इसमें बीजाक्षर का रूप॥
इसके पुण्यस्मरण मात्र में, गर्भित कोटि सुखद परिणाम।
इसके शुभ मन वचन काय से, सादर वारम्वार प्रणाम॥

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥

मुक्ति-लक्ष्मी का जय-मन्दिर, अष्ट कर्म से रहित महान ।
सम्यक्त्वादि अष्ट गुण मण्डित, सर्व विपदहारी गुणखान ॥
सर्व अमंगल हारी है यह, शुभ मंगलकारी सुखकार ।
ऐसे सिद्ध-समूह मंत्र को, नमस्कार नित बारम्बार ॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूतपन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥

नित्य स्मरण जिनेन्द्रदेव का, करता पाप विघ्न चकचूर ।
हो जाते हैं भूत-शाकिनी, भयद पन्नगों के भय दूर ॥
सारे विष निर्विष करता है, इसका मंगल पाठ ललाम ।
ऐसे श्री जिनेन्द्र को निशदिन, सादर बारम्बार प्रणाम ॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

उदक चन्दन तन्दुल पुष्पकैश्चरु सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः ।
धवलमंगलगान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाम महं यजे ॥

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामधेयोभ्योऽर्घ्यम् ।

स्वस्ति-पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम् ।
श्री मूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु-
र्जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥

दर्शन ज्ञान अनन्तवीर्य ये, सुख के भरे पुरे भण्डार ।
सम्यक् दृष्टि जनों के धार्मिक मूल संघ पुण्याश्रित द्वार ॥

स्याद्वाद विद्या के स्वामी, नायक त्रिभुवननाथ उदार ।
यह जिनेन्द्र पूजन इनको नम, प्रस्तुत है महान सुखकार ॥

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुङ्गवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय ।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्जित-दङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय ॥

तीन लोक के गुरु कषाय जिन, मुनिगण के आराध्य जिनेन्द्र ।
दर्शन ज्ञान चरित्र सहित यह, महिमामय मंगल के केन्द्र ॥
स्वाभाविक महिमामंडित है, अनुपम ज्ञानवान निष्काम ।
श्री जिनेन्द्र के हेतु कुशल हो, यह मंगल वेला अभिराम ॥

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोध-सुधा-प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय ।
स्वस्ति त्रिलोक विततैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय ॥

जिनमें निर्मल बोध सुधामृत, उछल रहा प्रतिक्षण पर्याप्त ।
जो स्वभाव परभाव प्रकाशक, लोकोत्तर कण कण में व्याप्त ॥
एक मात्र चैतन्य विकासी, गुण पदार्थ दर्शक त्रैकाल ।
जिनवर मंगल करो हमारा, तुम भू-मण्डल के रखपाल ॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ।

आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥

गर्भित है मेरे अन्तर में, भावों का सागर गम्भीर।
यह सागर मंथन करने को, मेरा मन हो रहा अधीर ॥
देश काल अनुरूप संजोये, जल चन्दन आदिक यशवंत।
भक्ति भाव से पूज रहा हूँ, तुम को पूज्यपाद अरिहंत ॥

अर्हत्पुराण पुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिञ्ज्वलद्विमल-केवल-बोधवन्हौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥

हे अरिहंत ! पुराणपुरुष हे ! हे पुरुषोत्तम ! हे अविकार !
सामग्री से निरालम्ब की यह पूजा करना स्वीकार ॥
केवलज्ञानमयी पावक में, जिनवर आगम के अनुसार।
कोमल पुण्य समर्पित हैं ये, इन्हें कीजिये अंगीकार ॥

[इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

स्वस्ति मंगलम्

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः।
श्री संभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दनः ॥
श्री सुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः।
श्री सुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः ॥
श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतलः।
श्री श्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः ॥

श्री विमल: स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्त: ।
श्री धर्म: स्वस्ति, स्वस्ति श्री शान्ति: ॥
श्री कुन्थु: स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथ: ।
श्री मल्लि: स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रत: ॥
श्री नमि: स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथ: ।
श्री पार्श्व: स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्धमान: ॥

आदिनाथ से महावीर तक, चौवीसों जिनराज महान ।
करुणा कर भटके जीवों का, करते हैं सदैव कल्याण ॥
इस शुभ मंगलमय वेला में, दें समस्त मंगल वरदान ।
हे प्रभू पुष्पाञ्जलि अर्पित है, चरण-कमल में शक्ति प्रमान ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री देव शास्त्र गुरु पूजा का अर्घ

क्षण भर निज रस को पी चेतन मिथ्यामल को धो देता है ।
काषायिक-भाव विनष्ट किये, निज आनंद अमृत पीता है ॥
अनुपम सुख तब विलसित होता केवल रवि जगमग करता है ।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अरिहन्त अवस्था है ॥
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु ! निजगुण का अर्घ बनाऊंगा ।
औ निश्चित तेरे सदृश प्रभू ! अरिहन्त अवस्था पाऊंगा ॥

वसु विधि अर्थ संजोयके अति उछाह मन-कीन ।
जासों पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य: अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यम् ॥

श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरों का अर्घ

निर्मल जल-सा प्रभु निज स्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए।
भवताप उतरने लगा तभी चन्दन-सी उठी हिलोर हिये ॥
अभिराम-भवन प्रभु अक्षत का सब शक्ति-प्रसून लगे खिलने।
क्षुत-तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने ॥
मिट चली चपलता योगों को, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए।
फल हुआ प्रभो ! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन व्यक्त हुए ॥
सीमंधर आदिक विद्यमान विंशति तीर्थङ्कर वैदेही।
आदर्श बने मेरे क्षण क्षण, चरणों में मात्र विनय ये ही ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादि विद्यमान विशंति तीर्थङ्करेभ्योऽर्घ्यं।

कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयों का अर्घ

यावन्ति जिन-चैत्यानि, विद्यन्ते भुवन-त्रये।
तावन्ति सततं भक्त्या, त्रि:परीत्य नमाम्यहम् ॥
तीन लोक में जितने भी हैं, कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्य।
भक्ति सहित मैं करूँ वन्दना, साधूँ सतत आत्म के हैत्य ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिलोकसंबंधिकृत्रिमाकृत्रिमजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध पूजा का अर्घ

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैं संगं वरं चन्दनं,
पुष्पौघं विमलं सदक्षत-चयं रम्यं चरुं दीपकम्।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये,
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वाञ्छितम् ॥

जल चन्दन अक्षत सुमन चारु चरु दीप धूप फल लाये हैं ।
यह अर्घ समर्पण करके अब बहुमूल्य सिद्ध पद भाये हैं ॥
हे नाथ प्रवृति से निवृति की ही ओर लगा देना हमको ।
चिर मोह नींद से गाफिल हैं, भगवान जगा देना हमको ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्री नव देव पूजा का अर्घ

जिनधर्म जयतु जिनविम्ब जयतु जय जिनमन्दिर जय जिनवाणी ।
जय परम पूज्य परमेष्टि पंच नव देव–जिन्हें कहते ज्ञानी ॥
इन सव को अर्घ्य समर्पित है भव भव इनका सत्संग रहे ।
मन वचन काय से चेतन में नित चढ़ा अलौकिक रंग रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हदादि नवदेवेभ्यः पूर्णार्घ्यम् ।

वेदी कटनी पूजा

प्रथम कटनीस्थ सिद्धयन्त्र (विनायक यन्त्र पूजा)

परमेष्ठिन् ! जगत्त्राण–करणे मंगलोत्तम ।
इतः शरण ! तिष्ठ त्वं, सन्निहितोऽस्तु पावन ॥

अशरण–शरण, जगत रक्षक जो सर्व मंगलों का आधार ।
ऐसे पावन परमेष्ठी को, सादर वन्दन बारम्बार ॥
श्री अर्हत सिद्ध आचारज, उपाध्याय सब साधु महान ।
अत्र अवतरत शुभ मंगलमय पूजन में सादर आव्हान ॥

बीजाक्षर द्वारा संस्थापन करते परम पूज्य भगवान ।
अत्र तिष्ठ ठः ठः हे जिनवर ! करुणानिधे !! पधारो आन ॥

ॐ ह्रीं अ-सि आ उ सा मंगलोत्तम शरणभूता अत्राव-तरतावतरत संवौषट् । अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः । अत्र मम सन्निहिता भवत भवत व षट् परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामः ।

अथाष्टकम्

पंकेरुहायातपराग-पुंजैः, सौगन्ध्यमद्भिः सलिलैः पवित्रैः ।
अर्हत्पदाभाषितमंगलादीन्, प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ॥

कमलादिक पराग से पूरित, लाया परम सुगंधित नीर ।
जिन चरणों को छूकर हरती, जल को निर्मलता भव पीर ॥
अरिहंतादिक पंच परमेष्ठी, करते संकट से निस्तार ।
ऐसे मंगलमय जिनेन्द्र को, अर्पित है निर्मल जल धार ॥

ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्यो जलम् ।

काश्मीर-कर्पूर-कृतद्रवेण, संसारतापापहृतौ युतेन ।
अर्हत्पदाभाषित मंगलादीन् प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ॥

हर लेता जो सहज मनुज के अन्तर का समस्त संताप ।
चन्दन केशर कर्पूरादिक, घिसकर लाया हूं निष्पाप ॥
अरहंतादि पंच परमेष्ठी, हरते जग का ताप-विकार ।
ऐसे मंगलमय जिनेन्द्र को, अर्पित है चन्दन सुखकार ॥

ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्यः चंदनम् ।

शाल्यक्षतैरक्षत-मूर्तिमद्भि—रब्जादिवासेन सुगन्धवद्भिः।
तन्दुल धवल अखंड समुज्वल, जिनमें कमलादिक की गंध।
पूजा हेतु सजाकर लाया, जिससे कटें कर्म अनुवन्ध ॥
ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्य अक्षतम्।

कदंवजात्यादिभवैः सुरद्रुमै, र्जातैर्मनोजातवियाशदक्षैः ॥
शुभ कदम्व के कल्पवृक्ष के, नाना पुष्प महा मनुहार।
श्री जिनेन्द्र की पूजा के हित, लाया चुनकर विविध प्रकार ॥
ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्य पुष्पं।

पीयूषपिंडैश्च शशांककांति,—स्पर्द्धद्भिरिष्टैर्नयनप्रियैश्च ॥
चन्द्रकान्त से स्वच्छ नयन प्रिय विविध भाँति दैदीप्य स्वरूप।
इनसे महा तृप्ति मिलती है उत्तम अमृत के अनुरूप ॥
ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्यः नैवेद्यं।

ध्वस्तांधकारप्रसरैः सुदीपै, र्घृतोद्भवै रत्नविनिर्मितैर्वा ॥
अन्धकार तम को विनाश कर, देते जग को दिव्य प्रकाश।
ऐसे रत्नदीप घृतपूरित लाया जिन चरणों में दास ॥
ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्यो दीपं।

स्वकीय-धूमेन नमोऽवकाश-व्यापद्भिरुद्यैश्च सुगन्ध धूपैः ॥अर्हत्०॥
जिसके निर्मल धूम्रपात से व्याप्त हुआ विस्तृत आकाश।
अष्ट गंध युत धूप सुगंधित, जिसमें गर्भित मधुर-सुवास ॥अर०॥
ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्यः धूपं ॥

नारंग-पूगादि फलैरनर्घ्यै, हृन्मानसादि प्रियतर्पकैश्च: ॥ अर्हत्०॥
विविध भांति के सुन्दर फल, नारंगी पुंगी आदि अनेक।
ये संचित करके लाया हूँ शांति तृप्ति दाता प्रत्येक ॥ अर० ॥

ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्यः फलं ।

अंभश्चन्दन–नन्द – नाक्षत – तरू – द्भूतैर्निवेद्यैर्वरैः ।
दीपैधूंपं–फलोत्तमैः समुदितै–रेभिः सुपात्रस्थितैः ॥
अर्हत्सिद्धसुसूरिपाठकमुनीन्, लोकोत्तमान्मंगलान् ।
प्रत्यूहौघनिवृत्तये शुभकृतः सेवे शरण्यानहम् ॥

जल चन्दन अक्षत सरसीरुह नेवज दीप धूप फल आदि ।
गद गद मन होकर लाया हूँ, मंगल अष्ट द्रव्य इत्यादि ॥
श्री अरिहंत सिद्ध आचारज उपाध्याय औ साधु उदार ।
स्वीकारें शरणागत का यह अर्पित अर्घ महा सुखकार ॥

ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं ।

पांचों कल्याणक से पूरित दीप्तिमान शशि सम चिद्रूप ।
दिव्य अनन्त चतुष्टय मंडित, स्याद्वाद वाणी का रूप ॥
श्री अरिहंत देव गुणसागर, अति अनन्त गुण के भण्डार ।
ऐसे परम पूज्य परमेष्ठी, मेरा अर्घ करें स्वीकार ॥

ॐ ह्रीं अनंतचतुष्टय समवशरणादिलक्ष्मीविभ्रते अरिहंत परिमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

समुच्चय अर्घ

अरहंत सिद्ध आचार्य तथा उवझाय साधु परमेष्ठि पंच ।
केवलि प्रणीत जिनधर्म सदा मेटो अनादि के भव प्रपंच ॥
हे मंगलमय ! हे लोकोत्तम ! हे शरणभूत सत्रह सुमंत्र !
हम अर्घ्य समर्पित करते हैं, हे सिद्धि विनायक सिद्धयंत्र !!

ॐ ह्रीं श्री अर्हंतादि सप्तदश मंत्रेभ्यः समुदायार्घ्यम् ।

नोट:—इसके पश्चात् गृहस्थाचार्य वर-कन्या से 'ओम्' मंत्र का १०८ बार जाप्य करावे । तदुपरान्त जयमाला पढ़े ।

संस्कृत-जयमाला

विघ्नप्रणाशनविधौ सुरमर्त्यनाथा, अग्रेसरं जिन वदन्ति भवंतमिष्टं ।
आनाद्यनंतयुगवर्तिनमत्र कार्ये, गार्हस्थ्य धर्म विहितेऽहमपि स्मरामि ॥
विनायकः सकलधर्मिजनेषु धर्म, द्वेधानयत्यविरतं दृढसप्तभंग्या ।
यद् ध्यानतो नयनभावसमुज्झनेन, वुद्धः स्वयं सकलनायक इत्यवाप्ते ॥
गणानां मुनीनामधीशत्वतस्ते, गणेशाख्या ये भवंत स्तुवन्ति ।
सदाविघ्नसंदोहशांतिर्जनानां करे संलुठत्यायत श्रेयसानाम् ॥
कलेः प्रभावात्कलुषाशयस्य, जनेषु मिथ्या-मद वासितेषु ।
प्रवर्तितोऽन्यो गणराजनाम्ना, लम्बोदरो दन्तमुखो गणेशः ॥
रुद्रेण कामज्वलितेन गौर्या विनोदभारान् मल-सञ्चयेन ।
कृतः पुराणेष्विति वाचयित्वा, सन्मंगलं तं कथमुद्गिरन्ति ॥
यतस्त्वमेवासि विनायको मे, दृष्टेष्टयोगा — नवरुद्धभावः ।
त्वन्नाममात्रेण पराभवन्ति, विघ्नारयस्तर्हि किमत्र चित्रम् ॥

जय जय जिनराज त्वद्गुणान्को व्यनक्ति,
यदि सुरगुरुरिन्द्रः, कोटि-वर्ष - प्रमाणं ।
वदितुम—भिलषेद्वा पारमाप्नोति नो चेत्,
कति य इह मनुष्याः स्वल्पवुध्द्या सभेताः ॥
श्रियं वुद्धिमनाकुल्यं धर्मप्रीतिविवर्द्धनम् ,
गृहिधर्मे स्थितिर्भूत्वा, श्रेयसं मे दिशा त्वस्वरा ॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

हिन्दी जयमाला

देवेन्द्र तथा मनुजेन्द्र सार, तुम विघ्नविनाशक निर्विकार।
तुम मंगलमय मंगल महान, मांगल्य ववाहादिक प्रधान ॥

तुम हो युगवर्ति अगम अपार, तुम को नित शत शत नमस्कार।
मुनि संत आपका नित्य ध्यान, करते शिव-सुख का रूप मान ॥

तुम बाधायें करते विनाश, तुम सर्वसिद्धियों के निवास।
कामादि वृत्ति से दूर दूर, आत्मिक विकास से पूर पूर ॥

अनुपम आदर्श चरित्रवान, जग को मंगलकारी महान।
करके मिथ्यातम का विनाश, फैलाया जिनमत का प्रकाश ॥

प्रत्यक्ष परोक्ष समान रूप, समतामय अविरोधी स्वरूप।
अतएव आप ही हे जिनेश ! ब्रह्मा गणेश विष्णु महेश ॥

इसमें आश्चर्य न नाम मात्र, तुम विघ्नविनाशक पुण्य-पाप।
जो गुण जिनेश में विद्यमान, कर सकता कौन इसे वखान ॥

हों वर्ष असंख्यों यदि व्यतीत, जिनवर के गुण वर्णन अतीत।
हम स्वल्पबुद्धिजन गुण अपार, वर्णन कर सकते किस प्रकार ॥

गुणवान वृहस्पति हार जाय, जिनगुण-समुद्र को तिर न पाय।
हे मंगल मुखमुद्रा ललाम, कोटातिकोट तुमको प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्री मंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमा— जयमालाऽर्घ्यम्।

द्वितीय मध्य कटनीस्थ श्रुत पूजार्घ

द्वादशांगमखिलं श्रुतं मया, स्थाप्य पाणिपरिपीडनोत्सवे ।
पूज्यते यदधि — धर्मसंभवो, द्वेधयैप जगतां प्रसीदति ॥
स्याद्वादमय द्वादशांग श्रुत, जिनवाणी निश्चय व्यवहार ।
भाव द्रव्य से किया समर्पित, अर्घ्य प्रथम होवे स्वीकार ॥

ॐ ह्रीं श्री द्वादशांगश्रुताय अर्घ्यम्

तृतीय कटनीस्थ गुरु पूजार्घ

ऋद्धयो बलरसादि — विक्रयौपध्यसंज्ञकमहानसादिकाः ।
यत्क्रमाम्बुरुहदासमासने, तान् गुरूनभिमहामि चामुखैः ॥
चौंसठ ऋद्धि-सिद्धि वर दायक, वीतराग निर्ग्रन्थ महान ।
आत्मसाधना - लीन तपस्वी वृंद हेतु यह अर्घ्य प्रदान ॥

ॐ ह्रीं श्री महर्द्धिधारकपरमर्षिभ्योऽर्घ्यम् ।

धर्मचक्र पूजार्घ

अष्ट मंगलमिदं पदाम्बुजे, भासते शत सुमंगलौघदम् ।
धर्मचक्रमभिपूजये वरं, कर्मचक्र - परिणाशनोद्यतम् ॥
तीर्थङ्कर के जिन शासन का परम प्रभावक यह प्रतीक है ।
धर्मचक्र जयवंत रहे यह, पूजनीक है माँगलीक है ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मचक्रायार्घ्यम् ।

यज्ञोपवीत संस्कार की प्रतिज्ञायें

१—जिनदर्शन प्रतिदिन करना।
२—पानी छानकर पीना।
३—रात्रि में अन्न के पदार्थ का सेवन नहीं करना।
४—समस्त जीवों पर दया-भाव रखना।
५—यथाशक्ति पंच अणुव्रत धारण करना।
६—मद्य, मांस, मधु का परित्याग करना।
७ पंच उदुम्बर फलों का त्याग करना।
८—मिथ्या देव शास्त्र और गुरुओं का श्रद्धान, सम्मान और अर्चन-पूजन नहीं करना।

यज्ञोपवीत मन्त्र

ॐ नमः परमशांताय परमशांतिकराय पवित्रीकृतायार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधाति एतद् गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

उपरोक्त मंत्र पढ़कर वर के यज्ञोपवीत संस्कार का उपचार करना चाहिये।

वैवाहिक शान्ति यज्ञ प्रारम्भ

शान्ति यज्ञ प्रारम्भ करने के पूर्व गृहस्थाचार्य निम्न मन्त्र पढ़कर जल सिंचन करता हुआ होमकुन्ड तथा पात्र सामग्री आदि की शुद्धि करे।

शुद्धि मन्त्र

ॐ ह्रीं सर्वलोकानन्याय धर्मतीर्थंकराय सर्वज्ञाय शान्तिनाथाय नमः पवित्रजलेन होमकुण्डशुद्धिं 'पात्रशुद्धिं 'च करोमि'।

तत्पश्चात् चन्दन और समिध कुन्ड में रखकर निम्न मन्त्र पढ़ता हुआ कपूर द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित करे—

अग्नि प्रज्ज्वलन मन्त्र

ॐ अस्मिन् विवाहविधौ हवनार्थमग्निमहं स्थापयामि।

इस क्रिया के बाद वर और कन्या निम्न सात मन्त्रों का जाप्य करें तथा प्रत्येक मन्त्र पर धूप की आहुति देवें—

जाप्य-मन्त्र

१—ॐ ह्रीं श्रीमज्जिनश्रुतगुरुभ्यो नमः धूपम् ।
२—ॐ ह्रीं श्री अर्हद्परमेष्ठिभ्यो नमः धूपम् ।
३—ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः धूपम् ।
४—ॐ ह्रीं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्यो नमः „ ।
५—ॐ ह्रीं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्यो नमः „ ।
६—ॐ ह्रीं श्री सर्वसाधुपरमेष्ठिभ्यो नमः „ ।
७—ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थङ्करेभ्यो नमः „ ।

तीर्थङ्कर कुण्ड की अग्नि को अर्घ

श्री तीर्थनाथपरिनिर्वृत पूज्यकाले,
आगत्य वन्हि सुरपा मुकुटोल्लसद्भिः।

वन्हिव्रजै जिनपदेह – मुदारभक्त्या,
देहुस्तदग्नि महमर्चयितुं दधामि ॥

मुक्तिनाथ तीर्थङ्कर प्रभु ने प्राप्त किया जब परिनिर्वाण ।
अग्निकुमार विनत मुकुटों से प्रकट हुई तव अग्नि महान ॥
दग्ध हुआ कल्पित तन जिससे, उसी अग्नि का लेकर कल्प ।
इस तीर्थङ्कर अग्निकुन्ड में अर्घ्य चढाऊं कर संकल्प ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुरस्त्रे तीर्थङ्करकुण्डे गार्हपत्याग्नये अर्घ्यम् ॥

गणधर कुण्ड की अग्नि को अर्घ

गणाधियानां शिवयाति काले
ऽग्नीद्रोत्तमाङ्ग स्फुरदुग्ररोची ।
संस्थाप्य पूज्यश्च समाह्वनीयः ।
प्रत्यूह शान्त्यै विधिना हुताशः ॥

गणधर वृन्दों ने भी ज्यों ही सिद्ध-शिला को किया प्रयाण ।
अग्नीन्द्रों ने त्यों ही आकर यहां मनाया परिनिर्वाण ॥
कर्मों का ईंधन जिस पावक द्वारा भस्मीभूत हुआ ।
ध्यान अग्नि से अर्घ्य योग्य यह गणधर कुन्ड प्रसूत हुआ ॥
ॐ ह्रीं वृत्ते द्वितीये गणधरकुण्डे आह्वनीयाग्नये अर्घ्यम् ।

सामान्य केवलिकुण्ड की अग्नि को अर्घ्य

श्री दक्षिणाग्निः परिकल्पितश्च,
किरीट देशात्प्रणताग्नि-देवैः ।

निर्वाण कल्याणक पूतकाले,
तमर्चये विघ्नविनाशनाय ॥

शेष सभी सामान्य केवली, अरहन्तों का परिनिर्वाण।
नत मस्तक अग्नीन्द्रों द्वारा, शुभ सम्पन्न हुआ उस थान ॥
उनके ध्यान रूप पावक से, केवलिकुन्ड हुआ पावन ॥
उनके ही स्मरण पूर्वक, अर्घ्य यहाँ करते अर्पण ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकोणे तृतीय सामान्य केवलिकुण्डे दक्षिणाग्नये अर्घ्यं ।

इसके पश्चात् निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते हुए होमकुन्ड में ११२ आहुतियां वर कन्या के दाहिने हस्त द्वारा साकल्य से क्षेपण करना चाहिये । तथा 'स्वाहा' की ध्वनि से मन्डप को गुंजायमान करना चाहिये ।

अथ आहुति मन्त्राणि

(१) पीठिका-मन्त्र

ॐ सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ॐ परमजाताय नमः स्वाहा ॥३॥ ॐ अनुपमजाताय नमः स्वाहा ॥४॥ ॐ स्वप्रधानाय नमः स्वाहा ॥५॥ ॐ अचलाय नमः स्वाहा ॥६॥ ॐ अक्षयाय नमः स्वाहा ॥७॥ ॐ अव्याबाधाय नमः स्वाहा ॥८॥

ॐ अनन्त ज्ञानाय नमः स्वाहा ॥९॥ ॐ अनन्तदर्शनाय नमः स्वाहा ॥१०॥ ॐ अनन्तवीर्याय नमः स्वाहा ॥११॥ ॐ अनन्त

सुखाय नमः स्वाहा ॥१२॥ ॐ नीरजसे नमः स्वाहा ॥१३॥ ॐ निर्मलाय नमः स्वाहा ॥१४॥

ॐ अच्छेद्याय नमः स्वाहा ॥१५॥ ॐ अभेद्याय नमः स्वाहा ॥१६॥ ॐ अजराय नमः स्वाहा ॥१७॥ ॐ अमराय नमः स्वाहा ॥१८॥ ॐ अप्रमेयाय नमः स्वाहा ॥१९॥ ॐ अगर्भवासाय नमः स्वाहा ॥२०॥ ॐ अक्षोभाय नमः स्वाहा ॥२१॥ ॐ अविलीनाय नमः स्वाहा ॥२२॥

ॐ परमघनाय नमः स्वाहा ॥२३॥ ॐ परम काष्ठायोग-रूपाय नमः स्वाहा ॥२४॥ ॐ लोकाग्रवासिने नमो नमः स्वाहा ॥२५॥ ॐ परमसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२६॥ ॐ अर्हत्सिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२७॥ ॐ केवलिसिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२८॥ ॐ अन्तःकृत सिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥२९॥ ॐ परमपरा सिद्धेभ्यो नमोनमः स्वाहा ॥३०॥ ॐ अनादि परम्परा सिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥३१॥ ॐ अनाद्यनुपम-सिद्धेभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥३२॥

ॐ सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे !! आसन्नभव ! आसन्नभव्य !! निर्वाण पूजार्ह ! निर्वाण पूजार्ह !! अग्नीन्द्र अग्नीन्द्र स्वाहा ॥३३॥

(१) आशीर्वादात्मक काम्य-मन्त्र

सेवाफलं षट् परम स्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु।
गृहस्थ धर्म के षट् आवश्यक श्रावक के कर्त्तव्य कहे।
उनके पालन में ही दम्पति का सारा जीतव्य रहे॥
सेवा फल दो यही जिनेश्वर दोनों दीर्घायुष्य रहें।
संतति के भी स्वर्णिम सुन्दर चिरकालीन भविष्य रहें॥

(२) जाति मन्त्र

ॐ सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥१॥ ॐ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥२॥ ॐ अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥३॥ ॐ अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥४॥ ॐ अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥५॥ ॐ अनुपमजन्मनः शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥६॥ ॐ रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये स्वाहा ॥७॥

ॐ सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे !! ज्ञानमूर्ते ! ज्ञानमूर्ते !! सरस्वति ! सरस्वति !! स्वाहा ॥८॥

सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु । अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ॥

(३) निस्तारक-मन्त्र

ॐ सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ॐ षट् कर्मणे स्वाहा ॥३॥ ॐ ग्रामपतये स्वाहा ॥४॥ ॐ अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा ॥५॥ ॐ स्नातकाय स्वाहा ॥६॥ ॐ श्रावकाय स्वाहा ॥७॥ ॐ देवब्राह्मणाय स्वाहा ॥८॥ ॐ सु-ब्राह्मणाय स्वाहा ॥९॥ ॐ अनुपमाय स्वाहा ॥१०॥

ॐ सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे !! निधिपते ! निधिपते !! वैश्रवण ! वैश्रवण !! स्वाहा ॥११॥

सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु ! अपमृत्यु विनाशनं भवतु स्वाहा ।

(४) ऋषि-मन्त्र

ओम् सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओम् अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओम् निर्ग्रन्थाय नमः स्वाहा ॥३॥ ओम् वीतरागाय

नमः स्वाहा ॥४॥ ओम् महाव्रताय नमः स्वाहा ॥५॥ ओम् त्रिगुप्तये नमः स्वाहा ॥६॥ ओम् महायोगाय नमः स्वाहा ॥७॥ ओम् विविधयोगाय नमः स्वाहा ॥८॥ ओम् विविधर्द्धये नमः स्वाहा ॥९॥ ओम् अंगधराय नमः स्वाहा ॥१०॥ ओम् पूर्वधराय नमः स्वाहा ॥११॥ ओम् गणधराय नमः स्वाहा ॥१२॥ ओम् परमर्षिभ्यो नमो नमः स्वाहा ॥१३॥ ओम् अनुपमजाताय नमो नमः स्वाहा ॥१४॥

ओम् सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे !! भूपते ! भूपते !! नगरपते ! नगरपते !! कालश्रमण !! कालश्रमण !! स्वाहा ॥१५॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु ! अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ॥

(५) सुरेन्द्र-मन्त्र

ओम् सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१ ओम् अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओम् दिव्यजाताय स्वाहा ॥३॥ ओम् दिव्यार्चिजाताय स्वाहा ॥४॥ ओम् नेमिनाथाय स्वाहा ॥५॥ ओम् सौधर्माय स्वाहा ॥६॥ ओम् कल्पाधिपतये स्वाहा ॥७॥ ओम् अनुचराय स्वाहा ॥८॥ ओम् परमेन्द्राय स्वाहा ॥९॥ ओम् अहमिन्द्राय स्वाहा ॥१०॥ ओम् परम अर्हताय स्वाहा ॥११॥ ओम् अनुपमेयाय स्वाहा ॥१२॥

ओम् सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे !! कल्पपते ! कल्पपते !! दिव्यमूर्ते ! दिव्यमूर्ते !! वज्रनामन् ! वज्रनामन् !! स्वाहा ॥१३॥ सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु ! अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

(६) परमराजादि मन्त्र

ओम् सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओम् अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओम् अनुपमेन्द्राय स्वाहा ॥३॥ ओम् विजयार्धजाताय स्वाहा ॥४॥ ओम् नेमिनाथाय स्वाहा ॥५॥ ओम् परमजाताय स्वाहा ॥६॥ ओम् परमार्हताय स्वाहा ॥७॥ ओम् अनुपमाय स्वाहा ॥८॥

ओम् सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे !! उग्रतेजः !! उग्रतेजः !! दिशांजन ! दिशांजन !! नेमिविजय ! नेमिविजय !! स्वाहा ॥९॥ सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु। स्वाहा।

(७) परमेष्टि मन्त्र

ओम् सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओम् अर्हज्जाताय नमः ॥२॥ ओम् परमजाताय नमः ॥३॥ ओम् परमार्हताय नमः ॥४॥ ओम् परमरूपाय नमः ॥५॥ ओम् परमतेजसे नमः ॥६॥ ओम् परमगुणाय नमः ॥७। ओम् परमस्थानाय नमः । ८॥ ओम् परमयोगीने नमः ॥९॥ ओम् परमभाग्याय नमः ॥१०॥ ओम् परमर्द्धये नमः ॥११॥ ओम् परम प्रसादाय नमः ॥१२॥ ओम् परमकांक्षिताय नमः ॥१३। ओम् परमविजयाय नमः ॥१४॥ ओम् परमविज्ञानाय नमः ॥१५॥

ओम् परमदर्शनाय नमः ॥१६॥ ओम् परमवीर्याय नमः ॥१७॥ ओम् परमसुखाय नमः ॥१८॥ ओम् सर्वज्ञाय नमः ॥१९॥ ओम् अर्हते नमः ॥२०॥ ओम् 'परमेष्ठिने नमो नमः ॥२१॥ ओम् परमनेत्रे नमोनमः ॥२२।

ओम् सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे !! त्रिलोक विजय ! त्रिलोक विजय !! धर्ममूर्ते ! धर्ममूर्ते !! धर्मनेमे ! धर्मनेमे !! स्वाहा ॥२३॥ सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु ! अपमृत्युविनाशनं भवतु स्वाहा ।

इस प्रकार ३३+८+११+१५+१३+९+२३=११२— एक सौ बारह आहुति देने के बाद नीचे लिखी आहुतियां देवें ।

लवंग और घृत की आहुतियां

ओम् ह्रीं अर्हद्भ्यः नमः स्वाहा ॥१॥ ओम् ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा ॥२॥ ओम् ह्रीं आचार्येभ्यः स्वाहा ॥३॥ ओम् ह्रीं उपाध्यायेभ्यः स्वाहा ॥४॥ ओम् ह्रीं सर्वसाधुभ्यः स्वाहा ॥५॥ ओम् ह्रीं जिनधर्मेभ्यः स्वाहा ॥६॥ ओम् ह्रीं जिनागमेभ्यः स्वाहा ॥७॥ ओम् ह्रीं जिनचैतेभ्यः स्वाहा ॥८॥ ओम् ह्रीं जिनचैत्याल-येभ्यः स्वाहा ॥९॥

ओम् ह्रीं सम्यग्दर्शनेभ्यः स्वाहा ॥१०॥ ओम् ह्रीं सम्यग्ज्ञा-नेभ्यः स्वाहा ॥११॥ ओम् ह्रीं सम्यक्चारित्रेभ्यः स्वाहा ॥१२॥ ओम् ह्रीं अस्मद् गुरुभ्यः स्वाहा ॥१३॥ ओम् ह्रीं अस्मद् विद्यागुरुभ्यः स्वाहा ॥१४॥ ओम् ह्रीं तपोभ्यः स्वाहा ॥१५॥

नोट—उपरोक्त आहुतियां लवंगों और घृत से क्रमशः अलग २ देना चाहिये ।

सर्वविघ्न विनाशक शान्ति मन्त्राहुतयः

ओम् नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणदोषाय दिव्यतेजोमूर्तये शा करा सर्वविघ्नप्रणाशाय सर्वरोगाय मृत्युविनाशनाय सर्वपरकृ

द्रोपद्रवनाशनाय श्री शान्तिनाथाय नमः ओम् ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्वशान्ति कुरुत कुरुत स्वाहा ॥१॥

नोट—सब प्रकार की विघ्न बाधाओं की शांति के लिये इस मन्त्र से ९ आहुतियां साकल्य से ही देना चाहिये।

सप्त परमस्थानाहुतयः

सज्जातिः सद् गृहस्थत्वं, पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता।
साम्राज्यं परमार्हन्त्यं, निर्वाणं चेति सप्तकम् ॥

१—ॐ ह्रीं सज्जाति परमस्थानाय नमः स्वाहा ॥
२—ॐ ह्रीं सद्गृहस्थ परमस्थानाय नमः स्वाहा ॥
३—ॐ ह्रीं पारिव्राज्य परमस्थानाय नमः स्वाहा ॥
४—ॐ ह्रीं सुरेन्द्रत्व परमस्थानाय नमः स्वाहा ॥
५—ॐ ह्रीं परमसाम्राज्य परमस्थानाय नमः स्वाहा ॥
६—ॐ ह्रीं परमर्हन्त्य परमस्थानाय नमः स्वाहा ॥
७—ॐ ह्रीं परमनिर्वाण परम स्थानाय नमः स्वाहा ॥

नोट—उपरोक्त सातों आहुतियां साकल्य से देकर हवन समाप्त कर नीचे लिखी सप्तपदी पूजन अवश्य करवाना चाहिये।

सप्तपदी-पूजा

सज्जातिगार्हस्थ्य-परिव्रजत्वं, सौरेन्द्र साम्राज्य-जिनेश्वरत्वम्।
निर्वाणकं चेति पदानि सप्त, भक्त्या यजेऽहं जिनपादपद्मम् ॥

गृहस्थ श्रावकों के पद से ले मुनिवर्यों के पद पर्यन्त।
पुण्यमयी सब प्रभुताओं में सर्वोत्तम पद है अरहंत ॥

उससे भी आगे अन्तिम पद सिद्धशिला अथवा निर्वाण।
क्रमशः लौकिक और अलौकिक सुख दोनों ही करें प्रदान ॥

सज्जातिय सद्गृहस्थ और परिव्राजकता पद स्वर्ग सुरेन्द्र ।
साम्राज्य अरहंत तथा निर्वाण सात पद कहे जिनेन्द्र ॥

इन्हीं परम पद स्थानों में क्रमशः पद रखते जायें ।
धर्म अर्थ के काम मोक्ष के पौरुष फल चखते जायें ।

इसी प्रयोजन हेतु अर्चना, सप्त पदों की करते हैं ।
भक्ति भाव से हृदय कमल का, सिंहासन प्रभु धरते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थान समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अथाष्टकम्

विमल शीतल सज्जल धारया, सविध वन्धुर शीकर सारया।
परम सप्त सु-स्थान स्वरूपकं, परिभजामि सदाष्टविधार्चनैः ॥
विमल शीतल सम जल धार से, कलश पूरित विविध प्रकार से ।
परम सप्त पदाम्बुज अर्चना, करहुं आतम स्वरूपक वन्दना ।

ॐ ह्रीं श्री सप्त परमस्थानेभ्यः जलम् नि० स्वाहा ॥१॥

मसृण कुंकुम चन्दन सद्रवैः, सुरभितागत षट् पद सद्रसैः ॥परम०॥
सुरभि केशर कुंकुम गंध से, मलयचन्दन आदि प्रबंध से ॥परम०॥

ॐ ह्रीं श्री सप्त परमस्थानेभ्यः सुगन्धम् नि० स्वाहा ॥२॥

विपुल निर्मल तन्दुल संचयै, कृत-सुमौक्तिक कल्पक निश्चयैः ।परम०।
धवल निर्मल तन्दुल पुञ्ज से, विपुल अक्षय शालि निकुंज से ।परम०।

ॐ ह्रीं श्री सप्त परमस्थानेभ्यः अक्षतम् नि० स्वाहा ॥३॥

कुसुम चम्पक पंकज कुन्दकै: सहज जाति–सुगंध-विमोदकैः ।परम०।
कमल चम्पक आदि प्रसून से, ग्रथित माला पुष्प अन्यून से ।परम०।

ॐ ह्रीं श्री सप्त परम स्थानेभ्यः पुष्पम् नि० स्वाहा ।४।

सकल लोकविमोदनकारकै, श्चरुवरै सु-सुधाकृतिधारकैः ।परम०।
सरस मोदक बोधक शिष्ट से, मधुर घृत रस पूरित मिष्ट से ।परम०।

ॐ ह्रीं श्री सप्त परम स्थानेभ्यः नैवेद्यम् नि० स्वाहा ।।५।।

तरलतार सु-कान्ति सु–मण्डनैः, सदन रत्नचयैरघखण्डनैः ।परम०।
तरल नेह स्वदीय प्रकाश से,हरहुं तम निज आत्म विकास से ।परम०।

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरम स्थानेभ्यः दीपम् नि० स्वाहा ।।६।।

अगुरुधूपभवेन सुगन्धिना, भ्रमर कोटिसमेंद्रिय वंधिना ।।परम०।।
अगुरु चन्दन निर्मित धूप से, दहूँ पावक ध्यान अनूप से ।परम०।

ॐ ह्रीं श्री सप्त परमस्थानेभ्यः धूपम् नि० स्वाहा ।।७।।

सुखद पक्व सु–शोभन सत्फलैः क्रमुकनिंवुकमोचसुतांगतैः ।परम०।।
सुखद पक्व सुस्वादु फलावली करहुं प्रस्तुत मोहि उतावली ।परम०।

ॐ ह्रीं श्री सप्त परमस्थानेभ्यः फलं नि० स्वाहा ।।८।।

जिनवरागसद्गुरुमुख्यकान्, प्रविजये गुरु सद्गुण सुख्यकान् ।
सु–शुभचन्द्रतरान् कुसुमोत्करैः समयसार परान्यय सादिकैः ।।
उदक चन्दन तन्दुल पुष्पकैः चरु सुदीप सुधूप फलार्घकैः ।
परम सप्त पदाम्बुज अर्चना, करहुँ आतम स्वरूपक वन्दना ।।

ॐ ह्रीं श्री सप्त परम स्थानेभ्यः अर्घ्यम् नि० स्वाहा ।।९।।

प्रदान एवं वरण विधि

सप्तपदी पूजन सम्पन्न होने पर गृहस्थाचार्य कन्या के पिता और मामा को सपत्नीक सिद्ध यन्त्र के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े होने का आदेश दे। इसी भांति वर के पिता एवं मामा भी उनके सामने अर्थात् सिद्ध यन्त्र के पीछे खड़े किये जावें।

अब गृहस्थाचार्य सर्व प्रथम कन्या की सम्मति पूर्वक उसके पिता से तथा बाद में उसके मामा से सिद्धयन्त्र तथा पंचों के समक्ष निम्न संकल्प करावें :—

"हे वर महोदय ! आपको सतत धर्माचरण में समाज और देश की निःस्वार्थ सेवा में सहयोग देने के लिये मैं अपनी ....नाम की कन्या प्रदान करना चाहता हूं। आप इसे स्वीकार कर सहधर्मिणी बनाने का संकल्प लें।"

प्रदान विधि का संकल्प हो चुकने के बाद प्रत्युत्तर स्वरूप वर स्वयं यंत्राभिवादन करके स्वीकृति सूचक निम्न प्रतिज्ञा की शपथ लेवे। इस शपथ को गृहस्थाचार्य वर से कहलावे :—

"मैं आपकी कन्या को स्वीकार करता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं इसे धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों में साधिकार सहयोग देने के लिये सहधर्मिणी बनाये रखूंगा।"

इस भांति वरण को शपथ ले चुकने पर विवाह-मण्डप मे उपस्थित जन समुदाय अनुमोदना सूचक पुष्प-वर्षा करे तथा वाद्य घोष कराके उत्साह प्रकट करे।

तदुक्तम्—

धर्मेणार्थेन कामेन पालयामीत्यसौ वदेत् ।
कन्या पितोदकैः पूर्णं भृङ्गं गृह्णाति सादरम् ॥
तदा द्वयोश्च कुलयोः सभ्याः संबन्धिनस्तथा ।
सुवासिन्यो ब्रुवन्तु प्राग् वृणीध्वमिति वै मुदा ॥

धर्म अर्थ से तथा काम से पालन सदा करूँगा ।
जीवन के सुख स्वर्ण–कलश में रस पीयूष भरूँगा ॥
जल से पूरित भृंग हाथ में लेवे तात सुता का ।
वातावरण मधुर बन जावे अनुमोदन वर्षा का ॥
युगल पक्ष के सभी उपस्थित सज्जन गण यों बोलें ।
वरण करें हे वरण करें शुभ द्वार प्रीत के खोलें ॥

पाणिग्रहण (पाणि–पीडन) संस्कार

हारिद्रपंकमवलिप्य सुवासिनीभि,
र्दत्तं द्वयोर्जनकयोः खलु तौ गृहीत्वा ।
वामं करं निज सुता भवमग्रपाणिं,
लिम्पेद्वरस्य च करद्वययोजनार्थम् ॥

हल्दी या मेंहदी लेकर कोई सुहागिन ललनाएँ ।
वर कन्या के दाएं वाएं कर-तल क्रमशः रंगजाएं ॥
फिर कन्या की मृदुल हथेली धरदें वर के कर तल पर ।
निम्न शपथ फिर पढ़े सुता का जनक इसीके तदनन्तर ॥

उपरोक्त पद्य को पढ़ते समय हल्दी या मेंहदी के लेप को कोई सुवासिन वर की दाहिनी तथा कन्या की वाईं हथेली पर

लिपन (रच) कर गृहस्थाचार्य वर के हाथ के ऊपर कन्या का हाथ जोड़ देवे और निम्न मन्त्र पढ़ता हुआ कन्या के पिता से जल की तीन धारा डलवावे—

ॐ अद्य जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे.................... नगरे मांगलिक विवाहस्थले...................श्री वीर निर्वाण सम्वत्सरे....................मासे..........तिथौ........दिवसे परम जैन धर्म परिपालकाय.......... ....गोत्रोत्पन्नाय............ .. ... पुत्राय...................पौत्राय...................नाम्ने कुमाराय जैनधर्म पारिपालकस्य..............गोत्रोत्पन्नस्य...............पुत्रीं.............. पौत्रीं......................नाम्नीं इमां कन्यां प्रदामि।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते वर्धमानाय श्री बलायुरारोग्य-सन्तानाभिवर्धनं भवतु। झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

पाणिपीडन (हथलेवा) की प्रक्रिया समाप्त होते ही हथलेवा छुड़ा देना चाहिये।

मौलि (मुकुट) बन्धन

पाणिपीडन की क्रिया सम्पन्न होने पर गृहस्थाचार्य निम्न पद्य पढ़कर कन्या पक्षीय सुवासा एवं सुवासिन से वर-कन्या को मुकुट बन्धन करावे।

शीर्षण्य शुम्भन्मुकुटं त्रिलोकी हर्षाप्त राज्यस्य च पट्ट बन्धम्।
दधामि पापोर्मिकुल प्रहन्तृ रत्नाढ्य मालाभि रुदाञ्चिताङ्गम्॥
अजर-अमर सौभाग्य भरा हो मंगलमयी मौलि बन्धन।
इससे शोभित रहे निरन्तर दम्पति का सुखमय जीवन॥

राज-मुकुट धारण करके हे तुम युग के सिरताज बनो।
गृहस्थ धर्म कर्त्तव्य परायण उत्तरदायी आज बनो॥

मुकुट बन्धन के उपरान्त उपस्थित जन समुदाय वर-कन्या पर अशीर्वादात्मक पुष्प वृष्टि करे।

ग्रन्थिबन्धन (गठजोड़ा) प्रयोजन

गंठ-बन्धन की यह प्रक्रिया मात्र वस्त्रों में परस्पर गांठ बांध देने से ही पूर्ण नहीं हो जाती। इस औपचारिकता के पीछे एक जीवनव्यापी रहस्य छिपा हुआ है। एक दाम्पत्य जीवन के प्रेम की ऐसी मजबूत गांठ है जो आजीवन कभी खुल नहीं सकती। यह गांठ अटूट एवं चिरस्थायी प्रेम प्रतिज्ञा का जीवन्त प्रतीक है। यह वस्त्रों में नहीं, हृदयों में बंधना चाहिये।

ग्रन्थिबन्धन-विधि

गृहस्थाचार्य उपस्थित जन-समुदाय के समक्ष निम्न पद्य बोलकर कन्या की ओढ़नी के आंचल के एक छोर में अक्षत सुपारी एवं सवा रुपया रखकर सवासिन के द्वारा वर के उत्तरीय परिधान (सेला) से उसकी गांठ बंधवावे।

अस्मिन्जन्मन्येष बंधोद्वयोर्वै, कामे धर्मे वा गृहस्थत्वभाजि।
योगोजातः पंचदेवाग्नि साक्षी जायापत्योरंचलग्रन्थिबंधात्॥

एक सूत्र में बांध रहे हैं, दो हृदयों को आज सप्रेम।
पूजन में जो देव पधारे, इनकी रखें कुशल शुभ क्षेम॥

कभी स्वप्न में भी न खुले यह दृढ़ बन्धन जीवन का मूल।
काम धर्ममय सद्गृहस्थ का जीवन हो इनके अनुकूल॥

यह इस दृढ़ता का सूचक है दोनों लिये हाथ में हाथ ।
सुख दुख में आनन्द विपद में दोनों सदा चलेंगे साथ ॥
करें ग्रन्थि बन्धन की रक्षा, मिलकर ये दोनों सुकुमार ।
इसी ग्रन्थि बन्धन में गर्भित दम्पति का आनन्द अपार ॥

भांवरें और सप्तपदी

ग्रन्थिबन्धन के पश्चात् वर को पीछे और कन्या को आगे होकर स्तम्भ वेदी तथा हवन कुण्ड के चारों ओर परिक्रमा देनी चाहिये । प्रत्येक प्रदक्षिणा के प्रारम्भ में वर-कन्या से अपने अपने आसन पर नीचे लिखे वचन कहलाने चाहिये और परिक्रमा के अन्त में क्रमशः महावीराष्टक तथा सप्तपदी का एक एक श्लोक पढ़कर मन्त्र पूर्वक अर्घ चढ़वाना चाहिये ।

इस मंगलमय वेला में स्त्रियां मांगलिक लोकगीत गाती हुई पुष्प वर्षा करती रहें तथा कर्णप्रिय मधुर वाद्य ध्वनि होती रहे ।

पहली परिक्रमा

वर (१) जाति कुल तथा सामाजिकता की मर्यादा अक्षुण्ण रखने के लिये मेरी अग्रगामिनी वनकर पहला फेरा देकर मेरी सहायता कर ।

कन्या—ॐ (स्वीकार है)

अथ प्रथम अर्घ्यं

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचिताः
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः ।

जगत्साक्षी मार्ग–प्रकटन–परो भानुरिव यो,
महावीरस्वामी नयन–पथ–गामी भवतु मे ॥१॥

सज्जाति–परम–स्थाने, सज्जाति त्वं गुणार्चितम् ।
पूजयेत्साप्तपदीनं च, स्वर्गमोक्ष – सुखाकरम् ॥१॥

ॐ ह्रीं सज्जाति परमस्थानायार्घ्यंम् ॥१॥

दूसरी–परिक्रमा

वर (२) गृहस्थी के रथ को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये मेरी अग्रगामी वनकर दूसरा फेरा देकर मेरी सहायता कर ।

कन्या—ॐ (स्वीकार है)

अथ द्वितीय अर्घ्य

अताम्रं यच्चक्षुः कमल–युगलं स्पन्द–रहितं,
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि ।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥२॥

सद्गृहस्थ–परमस्थाने, सद्गृहं जिननायकम् ।
पूजयेत्साप्तपदीनं च, स्वर्गमोक्षसुखाकरम् ॥२॥

ॐ ह्रीं सद्गृहस्थ परमस्थानायार्घ्यंम् ॥२॥

तीसरी परिक्रमा

वर (३) जल में कमल की तरह भोगों से निर्लिप्त रहने का अभ्यास करने के लिये मेरी अग्रगामिनी बनकर तीसरा फेरा देकर मेरी सहायता कर।

कन्या—ॐ (स्वीकार है)

अथ तृतीय अर्घ्यं

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भा-जालजटिलं,
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥३॥

पारिव्राज्य परमस्थाने, पारिव्राज्यं सुपूजितम्।
पूजयेत्साप्तपदीनं च, स्वर्गमोक्षसुखाकरम् ॥५॥

ॐ ह्रीं पारिव्राज्यपरमस्थानायार्घ्यम् ॥३॥

चौथी परिक्रमा

वर (४) देवदुर्लभ सुखों की प्राप्ति करने के लिये मेरी अग्रगामिनी बनकर चौथा फेरा देकर मेरी सहायता कर।

कन्या—ॐ (स्वीकार है)

अथ चतुर्थ अर्घ्यं

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः।

लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥४॥

सुरेन्द्र परम स्थाने सुरेन्द्राद्यैक पूजितम् ।
पूजयेत्साप्तपदीनं च स्वर्गमोक्षसुखाकरम् ॥४॥

ॐ ह्रीं सुरेन्द्रपरमस्थानायार्घ्यम् ॥४॥

पांचवी परिक्रमा

वर (५) चक्रवर्ती सा प्रभुत्व पाने में सहयोग देने के लिए मेरी अग्रगामिनी बनकर पांचवा फेरा देकर मेरी सहायता कर।

कन्या—ॐ (स्वीकार है)

अथ पंचम अर्घ्य

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यगत-तनुर्ज्ञान-निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपतिवर-सिद्धार्थ-तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भव रागोद्भुतगतिः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥५॥

साम्राज्यं परमं भुंक्ते प्रार्चामि जिनपादुकम् ।
पूजयेत्साप्तपदीनं च, स्वर्गमोक्षसुखाकरम् ॥५॥

ॐ ह्रीं साम्राज्यपरमस्थानायार्घ्यम् ॥५॥

छठवीं परिक्रमा

वर (६) जीवन्मुक्त अवस्था की साधना के लिए मेरी अग्रगामिनी बनकर छठवां फेरा देकर मेरी सहायता कर।

कन्या—ॐ (स्वीकार है)

अथ षष्ठ अर्घ्य

यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध-जन - मरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥६॥

आर्हन्त्यं परमस्थानं चतुः कर्म विनाशकम्।
पूजयेत्साप्तपदीनं च, स्वर्गमोक्षसुखाकरम् ॥६॥

ॐ ह्रीं आर्हन्त्यपरमस्थानायार्घ्यम् ॥६॥

आवश्यक उद्‌बोधन

उपरोक्त विधि से जब छह परिक्रमाएँ (भाँवरें) पूर्ण हो जावें तब गृहस्थाचार्य वर-कन्या और उनके अभिभावकों तथा पंचों को निम्नलिखित शब्दों द्वारा संबोधित करे—

हे भव्य श्रावको ! अभी तक आर्ष विधि से वर-कन्या ने आपके समक्ष छह प्रदक्षिणाएँ पूर्ण की हैं परन्तु मात्र इतने से ही इनके दाम्पत्य-जीवन का सूत्रपात्र (शुभारंभ) नहीं हो जाता क्योंकि अभी अत्यन्त महत्वपूर्ण सातवां फेरा शेष है। यह

सातवां फेरा वस्तुतः एक निर्णायक फेरा सिद्ध होगा। इसके उपरान्त ही वर-कन्या वर-वधू के सार्थक नाम से संबोधित होंगे।

हे भावी दम्पति ! अभी भी आप दोनों स्वतन्त्र हैं, चाहें तो इस सम्बन्ध को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकते हैं। इसलिए सातवां फेरा करवाने के पूर्व मैं वर एवं कन्या दोनों को निम्न सात वचनों की शपथ ग्रहण कराना उचित समझता हूँ।

वर के सप्त वचन

प्रथम वचन—

मम कुटुम्ब-जनानां यथायोग्यं विनय-शुश्रूषा करणीया।

धर्म राष्ट्र सेवा समाज इनमें अपने बल के अनुसार।
तुमको योगदान देना है, इनमें निश दिन विविध प्रकार॥
फूल-शूल मिश्रित जीवन में रखना है नित एक विचार।
जीवन साथी के स्वरूप में, करो हृदय से यह स्वीकार॥

द्वितीय वचन—

ममाऽज्ञा न लोपनीया।

मेरी न्यायोचित आज्ञा का करना है सदैव सम्मान।
विनय-शील बनकर करना है, गृह में प्रेम भरा निर्माण॥
गुरुजन, अतिथि, कुटुम्बी उनके आदर का रखना है ध्यान।
नये गेह को तुम्हीं बनाना, खिलते फूलों का उद्यान॥

तृतीय वचन—

कटु-निष्ठुर-वाक्यं न वक्तव्यम् ।

सहनशीलता, प्रेम भावना, ये जीवन के गुण अनमोल ।
सबके ही प्रति करे तुम्हारी, प्रेम भरी भाषा किल्लोल ॥

सबके मन को हरती रहना, वाणी में अमृत रस घोल ।
कोयल कितनी प्रिय लगती है, बोल बोल कर मीठे बोल ॥

चतुर्थ वचन—

सत्पात्रादिजनेभ्यो गृहागतेभ्य आहारादि दाने कलुषितं मनः न कार्यम् ।

पूज्य साधुगण आत्मीयजन, ये हैं पंथ प्रदर्शक द्वार ।
है महान कर्त्तव्य हमारा, इन सबका आदर सत्कार ॥

गृह की योग्य मंत्रिणी का पद, आज कर रही हो स्वीकार ।
अब तुम पर ही आश्रित होगा, नव गृह संचालन का भार ॥

पंचम वचन—

रात्रौ परगृहे न गन्तव्यम् ।

पाखण्डी जग के प्रपंच का आज न मिल पाता आभास ।
नई जगह का नये व्यक्ति का आज न कर सकते विश्वास ॥

नारी को धोखा देने के अगणित भरे पड़े इतिहास ।
बिना हमारी आज्ञा के तुम जाना कभी न इनके पास ॥

षष्ठम वचन—

बहुजन-संकीर्णस्थाने न गन्तव्यं ।

अव गृह-मन्दिर की उन्नति पर मिलकर ही देना है ध्यान।
खोटी संगति, बुरी पुस्तकें, इनकी रखना है पहिचान॥
चलना है अव साथ साथ ही जीवन-पथ पर एक समान।
गाते उमगाते हर्षाते विखराते मीठी मुस्कान॥

सप्तम वचन—

कुत्सित-धर्मिमद्यपायिनां गृहे न गन्तव्यम्।

घर गृहस्थ को घेरे रहते सव प्रकार के वाद-विवाद।
इन सव को वाहर कहने से घटती है कुल की मर्याद॥
गुप्त रहस्यों के खुलने से, हो जाते हैं गृह वरवाद।
अतः गुप्त ही रखने होंगे अपने गृह के हर्ष-विषाद॥
मेरे सातों वचनों को यदि आप मानने को तैयार।
तो मैं हर्ष समेत आपको करता हूं पत्नी स्वीकार॥

कुमारी के सप्त-वचन

प्रथम वचन—

अन्य स्त्रीभिः सह क्रीडा न कार्या।

मुझे आपके सप्त वचन ये, इस प्रकार हैं अंगीकार।
करें एक-पत्नीव्रत धारण, आप जन्म भर को स्वीकार॥
शेष नारियों को समझेंगे, माता-पुत्री—वहिन समान।
अग्नि देवता के समक्ष दें, आप मुझे यह वचन महान॥

द्वितीय वचन -

वेश्यागृहे न गन्तव्यम् ।

अब तक हम बिखरी बूंदें थे, अब मिलकर बन रहे अथाह ।
अब गृह-मन्दिर का विकास, ही देगा हमें नया उत्साह ॥
सातों व्यसन महादुखदाई, इनमें आप न हों गुमराह ।
न्याय धर्म श्रम के धन द्वारा करना है जीवन निर्वाह ॥

तृतीय वचन -

द्यूतक्रीडा न कार्या ।

मुझे समझना होगा, अब अपने वैभव का भागीदार ।
शिक्षा गृह जीवनविकास के होंगे सब समान अधिकार ॥
अब मिलकर उज्ज्वल भविष्य का रचना है सुन्दर संसार ।
अब अपनी जीवन नैया के होंगे हम दोनों पतवार ॥

चतुर्थ वचन --

सदुद्योगाद् द्रव्यमुपार्ज्य वस्त्राभरणै रक्षणीया ।

मेरी रुचि अभिलाषाओं पर देंगे सदा आप ही ध्यान ।
निर्भर होंगे सभी आप पर, अब पालन पोषण परिधान ॥
अर्द्धांगिनि के योग्य मिलेगा, गृह में मुझे उचित सम्मान ।
इस प्रकार अपना गृह मन्दिर, होगा हरा-भरा उद्यान ॥

पंचम वचन—

धर्मस्थानगमने न वर्जनीया ।

दर्शन-पूजन-धर्मोपार्जन, पुण्य - दान जिनतीर्थ विहार॥
इनमें आप न बाधक होंगे, श्री जिन आगम के अनुसार॥

इसमें भी यदि योग दिया तो और अधिक होगा उपकार।
धर्म पुण्य द्वारा होता है, संकट सागर से उद्धार॥

षष्टम वचन—

गुप्त वार्ता न रक्षणीया।

अपने गुप्त रहस्य न मुझ से कभी छिपाना किसी प्रकार।
क्योंकि आपके हो समान अब मुझ पर भी होगा गृह-भार॥

मुझ से भूल-चूक यदि हो तो करना उसमें आप सुधार॥
जो अपमानजनक हो ऐसा, कभी नहीं करना व्यवहार॥

सप्तम वचन—

मम गुप्तवार्ता तु अन्याग्रे न कथनीया।

छल प्रपंच का जाल बिछा है चारों ओर आज प्रतिकूल।
ऊपर ऊपर फूल खिले हैं अन्दर भरे भयंकर शूल॥

मेरी गुप्त बात मित्रों से कहकर कभी न करना भूल।
करना मित्रों का चुनाव भी वंश प्रतिष्ठा के अनुकूल॥

मेरे सातों वचन आप यदि करें हृदय से अंगीकार।
तो मैं सातों वचन आपके करती हूँ सादर स्वीकार॥

उपरोक्त वचनों को स्वीकार कर लिये जाने पर वर-कन्या का क्रम बदल दिया जावे अर्थात् कन्या वर के पीछे हो जाये। इसके बाद वर कहे—

सातवी परिक्रमा

वर (७) भव-भ्रमण से मुक्ति पाने के लिए मेरी अनुगामिनी बनकर सातवीं प्रदक्षिणा देकर स्वयं स्वावलम्बी बन।

कन्या—ॐ (स्वीकारहै)

अथ सप्तम अर्घ्य

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयो काम सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निज-बलाद्येन विजितः ॥
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रथम-पद राज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी नयन-पथगामी भवतु मे ॥७॥

निर्वाणं परमस्थानं जिन-भाषितमुत्तमम्।
पूजयेत् साप्तपदीनं च, स्वर्गमोक्षसुखाकरम् ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री निर्वाणपरमस्थानायार्घ्यम् ॥७॥

अथ पूर्णार्घ्यम्

महामोहातङ्क-प्रशमन-पराकस्मिक भिषक्,
निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा मङ्गलकरः।
शरण्यः साधूनां भव-भयभृतामुत्तमगुणो,
महावीरस्वामी नयन-पथगामी भवतु मे ॥८॥

सज्जाति सद् गृहस्थत्वं पारिव्रज्यं सुरेन्द्रता ।
साम्राज्यं परमार्हन्त्यं निर्वाणं चेति सप्तकम् ॥८॥

ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानाय पूर्णार्घ्यम् ॥८॥

वर-माला

अर्घ्य चढ़ाने के वाद सौभाग्यवती वधू अपने पतिदेव को और पतिदेव अपनी सहधर्मिणी को वर-माला पहिनाकर हर्षोल्लास प्रकट करे ।

एक दूसरे को पहिनाते दोनों आपस में जयमाल ।
ये वर-मालायें दम्पति को करती रहें सदैव निहाल ॥

इसके उपरान्त गृहस्थाचार्य नव-दम्पत्ति को निम्न प्रकार संवोधित करे ।

गृहस्थाचार्योपदेशः

हे चिरायुष्मान् नव-दम्पति !

आप दोनों यद्यपि गृहस्थ-जीवन के रथ को पावन-पथ पर चलाने के लिये गतिशील चक्रों के समान हैं तथापि उनको धारण करने वाली ध्रौव्य धर्म धुरी तो केवल एक ही है जिस पर वे टिके हुए हैं। वही धर्म आपके जीवन में अर्थ-काम और मोक्ष पुरुषार्थों की साधना की इकाई हो । स्वच्छन्दताओं से वचने के लिये कुछ धार्मिक वन्धन भी अवश्य होते हैं । विवाह

उसका ज्वलन्त प्रमाण है। परन्तु अनासक्ति और संयम से यही बन्धन मुक्ति में वदल जाते हैं। अतएव अपने निश्चित स्वरूप का ध्यान रखते हुए तथा व्यावहारिक मर्यादाओं का सतत पालन करना भूलना नहीं चाहिये। तुम्हारा जीवन सुख समृद्धि एवं स्वास्थ्य से परिपूर्ण रहे, यही मेरा आप लोगों के प्रति आशीर्वाद है।

नोट:—वधू इस समय से वर को बायीं ओर बैठे। यहां गृहस्थाचार्य को दोनों के ऊपर पुष्प--वर्षा करना चाहिये।

दान का सुअवसर

नोट:—इस सुखद सुअवसर पर कन्या और वर के अभि-भावकों को जैन शिक्षण संस्थाओं तथा धार्मिक संस्थाओं को अपनी शक्ति को न छिपाकर दान देना चाहिये। इस संबंध में जिनवाणी की आज्ञा है कि न्यायोपात्त धन का दशवां हिस्सा धार्मिक कार्यों में अवश्य ही लगाना चाहिये। क्योंकि—

दानी का जीवन महान है, उत्तम दान धर्म का द्वार।
पुण्य-दान की नाव सहज ही तरती भव-सागर के पार॥
माया संग नहीं चलती है, चलता संग दान उपकार।
इस अवसर पर दान दीजिये, अपनी श्रद्धा के अनुसार॥

दान की उद्घोषणा के अनन्तर गृहस्थाचार्य पीछे लिखी सप्तपदी जयमाला को पढ़े।

सप्तपदी पूजा जयमाल

जय जीव दयाकर, गुण रत्नाकर सुखकर निर्मल शीलवरा।
भवि कुमुद दिवाकर, जन कलि मल हर, सुखकर निर्मल शील धरा॥

अजरामर केवलि लक्ष्मिवरं, हरिवंश सरोज विकाश करम्।
परिपूज्य सुसप्त स्थान वरम्, अतिनिर्मल भेद लहं सुवरम्॥

यम-संयम भाव धुरं धवलं, भव-वारिधि सौख्यकरं सकलं।
परिपूज्य सुसप्तस्थान वरम्, अतिनिर्मल भेदलहं सु-वरम्॥

अति कज्जल मेघ सुवर्णधरं, प्रतिवोध सुभव्य समूह वरं।
परिपूज्य सुसप्त स्थानवरम्, अति निर्मल भेद लहं सु-वरम्॥

निज भास्वर लर्जित भानुरुचि, कृत दुर्धर-काम-कलत्र सुखं।
परिपूज्य सुसप्त स्थान वरम्, अति निर्मल भेद लहं सु-वरम्॥

नय तत्व समर्पित चारुमुखं, हृदयागम रूप सुचन्द्र मुखम्।
परिपूज्य सुसप्त स्थान वरम्, अति निर्मल भेद लहं सु-वरम्॥

मदमान महीधर भेदकरं, गुण रत्ननन्दि-कृत सार तरम्।
परिपूज्य सुसप्त स्थान वरम्, अति निर्मल भेद लहं सु-वरम्॥

कृत दुर्धर घोर तपो विमलं, हृदयेप्सित सौख्यकरं प्रथुलं।
परिपूज्य सुसप्त स्थान वरम्, अति निर्मल भेद लहं सु-वरम्॥

सुविवेक गृहं हतजन्ममदं, कुमताध तमोह विवाय रविम्।
परिपूज्य सुसप्त स्थान वरम्, अति निर्मल भेद लहं सु-वरम्॥

श्री नेमिचन्द्र हो कुमुदचन्द्र हो, थुवयं सो विद्यानन्द मुनि।
अविचल सुखकारण भव जल तारण, वारण दुर्गति जिन शरणं॥

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्योऽर्घ्यंम्॥

(इति सप्तपदी)

इसके पश्चात् गृहस्थाचार्य नीचे लिखे पद्य पढ़कर पति-पत्नी और उपस्थित समुदाय को हवन कुण्ड की पवित्र भस्मि प्रदान करे और वे लोग श्रद्धापूर्वक उसे अपने मस्तक, भुजा और वक्ष पर लगावें।

भस्म प्रदान मन्त्र

रत्नयार्चनमयोत्तम—होमभूति-
युष्माकमावहतु पावन दिव्यभूतिम्।
त्रैलोक्यराज्यविषयां परमां विभूतिं,
भस्मप्रदानविधिरेप ह्यमया चादि॥

रत्नत्रय के आराधन से प्राप्त हुई जो पुण्य विभूति।
उसे देह पर धारण करने से होती आनंद प्रभूति॥

नोट—भस्म-प्रदान के पश्चात् नीचे लिखा शाखाचार पढ़कर पुण्याहवाचन करे—

शाखोच्चार

पूज्यपाद पहिले तीर्थङ्कर, श्री जिन आदिनाथ भगवान।
स्वर्गलोक में सुर-सुरेन्द्रगण, करते नित जिन का गुणगान॥

मुनिजन संत-महंत साधुगण, योगी नित ध्याते हैं ध्यान।
कोटि कोटि तुम को प्रणाम है, हे जिनवर आदीश महान॥

कर अति श्रेष्ठ गृहस्थ धर्म का, प्राणिमात्र के हित संचार।
प्रस्तुत किया जगत के सन्मुख, पूर्ण सफल जीवन उपहार॥

स्वयं बनें जो शुभ विवाह का, सुन्दर उदाहरण सुखकार।
उस आदर्श भरे जीवन का प्रस्तुत है यह शाखोच्चार॥

भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में अति विशाल कौशलपुर देश।
कौशलयुत शासन करते थे, यहां निरन्तर नाभि-नरेश॥

उनकी रानी मरुदेवी ने पाया पुण्य—मयी वरदान।
शुभ ग्रह में अवतरित हुए थे, जिनवर आदीश्वर भगवान॥

मरुदेवी श्री नाभिराय के, था न हर्ष का पारावार।
स्वर्गलोग में भी देवों ने, किया जन्म का जय जय कार॥

बढ़ने लगे चन्द्रमा के सम, निशि दिन सुन्दर राजकुमार।
विद्यमान शिक्षा दीक्षा के थे सब जन्मज़ात संस्कार॥

योग्य आयु लख नाभि पिता ने, सम्मुख रख विवाह प्रस्ताव।
पहिचाने संकेत रूप में, ऋषभ कुँवर के मन के भाव॥

ऋषभदेव सा वर पाये जो, किसका ऐसा भाग्य विशाल।
इनको पति स्वरूप में पाकर, किसका जीवन हो न निहाल॥

अत: नन्दरानी की सुन्दर भाग्य-रेख कह उठी पुकार।
यह सौभाग्य मुझे प्रदान हो, शुभ सिन्दूर भरा शृङ्गार॥

राजा नाभिराय ने तत्क्षण, एकत्रित करके परिवार।
हर्ष सहित कर्त्तव्य रूप में, यह सम्बन्ध किया स्वीकार॥

होने लगे विविध रूपों में, शुभविवाह के मंगल-गान।
शुभ मुहूर्त में वर-बरात ने, कौशलपुर से किया प्रयाण।

स्वागत होते गये मार्ग में, वर-यात्रा के विविध प्रकार।
हर्षोल्लास भरी जा पहुँची, शुभ बारात कच्छ के द्वार॥

फिर विवाह मण्डप में जाकर, तिष्ठे राजकुमार महान।
उनके निकट विराजी आकर, वधू नन्दरानी छविमान॥

उच्च स्वरों से मन्त्रोच्चारण, करता था पंडित समुदाय।
पूजन की वर-वधू क्रियायें, पूर्ण कर रहे थे हरषाय॥

पुनः हर्षयुत किया वधू के पूज्य पिता ने कन्या-दान।
ऋषभदेव का पूर्ण हो गया, हर्ष समेत विवाह-विधान॥

पाला पूर्ण गृहस्थ धर्म को, रह भव-जल में कमल समान।
उनके सफल गृहस्थाश्रम पर, है इतिहासों को अभिमान॥

ये नव दम्पति ऋषभदेव सी, बनें सदा आदर्श महान्।
ज्ञानवान हो कीर्तिवान हो, ध्रुव चरित्र धारी यशवान॥

नित इनके चरणों में लोटें, स्वयं विश्व भर के वरदान।
रखें छत्र-छाया दोनों पर, निशि दिन ऋषभनाथ भगवान॥

卐

पुण्याह वाचन

इस प्रकार पूजन-अर्चन, हवन, प्रदान, वरण, पाणिपीडन तथा सप्तपदी जो विवाह के मुख्य सोपान हैं उन सब की समाप्ति के पश्चात् गृहस्थाचार्य वर और वधू को पूर्व मुख खड़ा करके स्वकल्याण एवं विश्वशान्ति के लिये प्रथम नीचे लिखे मन्त्र से पुण्याहवाचन का संकल्प करावे। तदुपरान्त-पुण्याहवाचन मन्त्र पढ़ते हुए मङ्गल-कलश से किसी पात्र में मंद मंद जल धारा छुड़वावे।

पुण्याहवाचन संकल्प मन्त्र

ॐ अद्य भगवतो महापुरुपस्य पुरुपवर पुण्डरीकस्य परमेण ाजसा व्याप्त लोकालोकोत्तममंगलस्य मंगलस्वरूपस्य गर्भाधाना-द्युपनयनपर्यन्त क्रिया संस्कृतस्यास्य (वर का नाम) नाम्नः कुमारस्योपनयनव्रतसमाप्तौ शास्त्रभ्यसनसमाप्तौ समावर्तनान्ते ब्रह्मचर्याश्रमेतर गृहस्थाश्रमस्त्रीकारार्थम् अग्नि देव बन्धु साक्षिकं पाणिग्रहणपुरस्सरं कलत्रे गृहीते सति अनयोर्दम्पत्योः सर्वपुष्टि-सम्पादनार्थ विधीयमानस्य होमकर्मणः नांदीमुखेन पुण्याहवाचनं करिष्ये ।

पुण्याहवाचन मन्त्र

ॐ पुण्याहं पुण्याहं, लोकोद्योतनकरा अतीतकालसंजाता निर्वाणसागर–महासाधु—विमलप्रभ–शुद्धप्रभ-श्रीधर सुदत्ताऽमल–प्रभोद्धराग्नि सन्मति शिवकुसुमाञ्जलि शिवगणोत्साह-ज्ञानेश्वर-परमेश्वर – विमलेश्वर-यशोधर-कृष्ण–मतिज्ञानमतिशुद्धमति श्रीभद्र शान्ताश्चेति चतुर्विंशति भूत परमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥१॥ धारा ॥

ॐ सम्प्रतिकाल श्रेयस्कर स्वर्गावतरण जन्माभिषेक परिनि-ष्क्रमण केवलज्ञान निर्वाण कल्याणक विभूति विभूषित महाभ्युदयाः श्री वृषभाजित संभवाभिनन्दन सुमति पद्मप्रभ सुपार्श्वचन्द्रप्रभ पुष्पदन्त शीतल श्रेयो वासुपूज्य विमलानंत धर्मशान्ति कुन्थ्वरह-मल्लि मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व-वर्द्धमानाश्चेति चतुर्विंशति वर्तमान परमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥२॥ धारा॥

ॐ भविष्यत् कालाभ्युदय प्रभवाः महापद्म सूरदेव सुप्रभ स्वयं-प्रभ सर्वायुध देवोदयदेव प्रभादेवोदंक प्रश्नकीर्ति जयकीर्ति पूर्णबुद्ध निष्कषाय विमलप्रभ वहल निर्मल चित्रगुप्त समाधिगुप्त स्वयंभू कंदर्प जयनाथ विमलनाथ दिव्यवादानन्तवीर्याश्चेति चतुर्विंशति भविष्यत् परमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥३॥ धारा॥

ॐ त्रिकालवर्ति परम धर्माभ्युदयाः सीमंधर युग्मंधर बाहु सुबाहु संजातक स्वयंप्रभ ऋषभेश्वरानन्तवीर्य विशालप्रभ वज्रधर महाभद्र जयदेवाजितवीर्याश्चेति पंच विदेह क्षेत्र विहरमाणा विंशति परम देवाश्च वः प्रीयन्ताँ प्रीयन्ताम् ॥४॥ धारा॥

ॐ वृषभसेनादिगणधरदेवा वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥५॥धारा॥

ॐ कोष्ठवीजपादानुसारि बुद्धि संभिन्नश्रोतृ प्रज्ञाश्रमणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥६॥धारा॥

ॐ आमर्षक्ष्वेडजल्लविड्डुत्सर्ग सर्वोषधयश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥७॥ धारा॥

ॐ जल फल जंघातंतु पुष्प श्रेणि पत्राग्नि शिखाकाशचारणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥८॥धारा॥

ॐ आहाररसवदक्षीणप्रहानसालयाश्च वः प्रीयन्ताँ प्रीयन्ताम् ॥९॥धारा॥

ॐ उग्रदीप्ततप्तमहाघोरानुपमतपसाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥१०॥धारा॥

ॐ मनोवांक्कायबलिनश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥११॥धारा॥

ॐ क्रियाविक्रियाधारिणश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥१२॥धारा॥

ॐ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥१३॥धारा॥

ॐ अंगाङ्ग वाह्य ज्ञान दिवाकराःकुन्दकुन्दाद्यनेकदिगम्वर देवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् ॥१४॥धारा॥

इह वान्यनगर ग्राम देवतामनुजाः सर्वे गुरुभक्ताः जिनधर्म-परायणा भवन्तु ॥१५॥धारा॥

दान तपो वीर्यानुष्ठानं नित्यमेवास्तु ॥१६॥धारा॥

मातृपितृ भ्रातृ पुत्र पौत्र कलत्र सुहृत्स्वजन सम्वन्धि वन्धु सहितस्य (गृह स्वामी का नाम) स्य ते धन्यधान्यैश्वर्यवल-द्युति यशः प्रमोदोत्सवाः प्रवर्धन्ताम् ॥१७॥धारा॥

※

जल-धारा-पुण्याहवाचन (भाषा)

तीन लोक के हितकारी मंगल स्वरूप जिनवर भगवान।
गर्भाधान क्रिया से लेकर करें सदा जीवन-निर्माण ॥

मेरे नव दम्पति जीवन में भरो रहे मधुमय मुस्कान।
सुख सम्पति आनन्द पूर्ण हो भावी जीवन का उद्यान ॥

मैं होमादि क्रियाओं द्वारा जिनवाणी का निष्ठावान।
पूज्य पंच परमेश्वर से मैं मांग रहा मंगल वरदान ॥

भूत भविष्यत् वर्तमान के चौबिस तीर्थंकर सुखकार।
स्वीकारें कल्याण हेतु यह शान्तिकरण निर्मल जल धार ॥

हैं आसीन विदेह क्षेत्र में जिन तीर्थंकर वीर उदार।
प्राणिमात्र के हित अर्पित है उनको शान्तिमयी जलधार ॥

गौतम गणधरादि परमेष्ठी वृषभसेन विद्वान अपार।
इनके चरणों में अर्पित है, शान्तिमयी निर्मल जल धार॥

जल, फल बीज सर्व सुख औषधि, मन वच काय सहित सुखकार।
अर्पित है कल्याण हेतु यह शान्तिमयी निर्मल जलधार॥

क्रिया विक्रिया धारी मति श्रुत अवधि मनपर्यय केवलज्ञान।
इनके चरणों में अर्पित है शान्तिमयी निर्मल जल धार॥

माता-पिता, भ्रात, सुत पत्नी, मित्र समूह स्वजन परिवार।
बल-वैभव धन-धान्य युक्त हों पायें उज्ज्वल कीर्ति अपार॥

हृदय हर्ष उत्साह भरा हो, पुण्योत्सव हो विविध प्रकार।
इन सबके कल्याण हेतु यह निर्मल शान्तिमयी जलधार॥

सारे संकट विघ्न दूर हों, रोग रहित हो आयुष्मान।
लोक सिद्धि आलोक सिद्धि हों, पायें मनवांछित वरदान॥

पाप विलय हो पुण्य उदय हो, लक्ष्मी कुल का हो विस्तार।
श्री जिनेन्द्र की भक्ति सहित अर्पित है यह निर्मल जलधार॥

शान्ति-धारा

तुष्टिरस्तु। पुस्टिरस्तु। वृद्धिरस्तु। कल्याणमस्तु। अविघ्नमस्तु। आयुष्यमस्तु। आरोग्यमस्तु। कर्म सिद्धिरस्तु। इष्ट संपत्तिरस्तु। निर्वाण पर्वोत्सवाः सन्तुः। पापानि शाम्यन्तु। पुण्यं वर्द्धताम्। श्री वर्धताम्। कुलगोत्रे चाभि-वर्द्धताम्। स्वस्ति भद्रं चास्तु। क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा। श्रीमज्जिनेन्द्र चरणारविंदेष्वानन्द भक्तिः सदास्तु।

(इति शान्तिधारा समाप्ता)

शान्ति-स्तव

चिद्रूप भाव मनवद्य मिमं त्वदीयं,
ध्यायन्ति ये सदुपधि व्यतिहार मुक्तं ।
नित्यं निरंजन मनादिमनन्तरूपं,
तेषां महांसि भुवनत्रितये लसन्ति ॥

ध्येयस्त्वमेव भव-पंच-तय प्रसार,
निर्णाश कारण विधौ निपुणत्वयोगात् ।
आत्मप्रकाशकृतलोक तदन्यभाव,
पर्याय विस्फुरण कृत्परमोऽसि योगी ॥

त्वन्नाम मन्त्र घन-उद्धत-जन्मजात,
दुःकर्म - दावमभिशम्य शुभांकुराणि ।
व्यापादयत्यतुलभक्ति समृद्धिभांजि,
स्वाभिन्नतोऽसि शुभदः शुभ कृत्वमेव ॥

त्वत्पादतामरस कोप निवासमास्ते,
चित्त द्विरेफ सुकृती मम यावदीश ।
तावच्च संसृतिज किल्विष तापशाप,
स्थानं मयि क्षणमपि प्रतियाति किंचित् ॥

त्वन्नाम मन्त्रमनिशं रसनाग्रवर्ति,
यस्यास्ति मोहमद घूर्णननाशहेतुः ।

प्रत्यूह राजिल गणोद्भव कालकूट,
भीतिर्हि तस्य किमु सन्निधिमेति देव ॥
तस्मात्त्वमेव शरणं तरणं भवाब्धौ,
शान्तिप्रदः सकल दोष निवारणेन ।
जागर्ति शुद्धमनसा स्मरतोयतो मे,
शान्तिः स्वयं करतले रभसाभ्युपेति ॥

इसके पश्चात् गृहस्थाचार्य पति-पत्नी को अर्घ देकर नीचे लिखा पद्य पढ़कर अर्घ चढ़ावे—

संसार दुःखहनने निपुणं जनानां,
नाद्यान्त चक्रमिति सप्तदश प्रमाणम् ।
सम्पूजये विविधभक्तिभरावनम्रं,
शान्तिप्रदं भुवन-मुख्य-पदार्थसार्थैः ॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हदादिसप्तदशमन्त्रेभ्यः समुदायार्घ्यम् ।

जगति शांति विवर्धनमंहसां, प्रलयमस्तु जिनस्तवनेन ते ।
सुकृत बुद्धिरलं क्षमया युतो, जिनवृषो हृदये तव वर्तताम् ॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधवः शान्ति पुष्टिञ्च कुरुत कुरुत स्वाहा ।

इसके बाद गृहस्थाचार्य पुष्पों की वर्षा करता हुआ शान्ति पाठ और विसर्जन बोलकर आगेलिखित से विसर्जन करे—

शान्तिपाठ तथा विसर्जन

ज्ञान तथा अज्ञान रूप में पला न जो शास्त्रोक्त विधान।
उसे कृपा कर निज प्रसाद से पूर्ण करें जिनवर भगवान॥

मैं आवाहन, पूजन, वंदन, पूर्ण विसर्जन से अज्ञान।
मेरी इन अपूर्णताओं को क्षमा करें जिनवर भगवान॥

मन्त्रहीन हूँ, क्रियाहीन हूं, द्रव्यहीन हूँ मैं अनजान।
पूर्ण क्षमा करके त्रुटियों की रक्षा करें सदा भगवान॥

ॐ ह्रीं अस्मिन् विवाह मांगल्ये कर्मणि आहूयमान सर्वे देवगणाः स्वस्थानं गच्छन्तु। अपराधक्षमापणं भवतु॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्। इति विसर्जनम्॥

विसर्जन विधि के बाद वर की सासु या सुवासिनी अक्षत दीप रोली और कशल सहित थाल में चतुर्मुख दीपक रखकर वर-वधू की आरती करे।

आशीर्वाद

यावज्जैनेन्द्र वाणी, विलसति भुवने, सर्वभूतानुकम्पा।
यावज्जैनेन्द्र धर्मः, दशगुणसहितः, साधवो वैजयंति॥

यावच्चन्द्रार्कतारा, गगनपरिचरा, जैनकीर्तिश्च यावत्।
तावत्त्वं पुत्रपौत्र - स्वजनपरिवृतो, धर्मवृद्ध्याभिनन्द॥

यावल्लोलातरंगे, वहति सुरनदी, जान्हवी तोयपूर्णा।
यावच्चाकाशमार्गे, तपति शुभकरो, भास्करो लोकपालः॥

यावद्वैडूर्य नील – प्रभवमणिशिला मेरुश्रृङ्गे विभाति ।
तावत्वं पुत्रपौत्र – स्वजन – परिवृतो जैनधर्म-प्रसादात् ॥

आरोग्यमस्तु चिरमायु रथो शचीव,
शक्रस्य-शीतिकिरणस्य च रोहिणीव ।
मेघेश्वरस्य च सुलोचनिका यथै,
भूयात्तवेत्सित सुखानुभवादि दात्री ॥

दीर्घायुरस्तु शुभमस्तु सुकीर्तिरस्तु,
सद्बुद्धिरस्तु धनधान्यसमृद्धिरस्तु ।
आरोग्यमम्तु विजयोस्तु महीस्पुत्र,
पौत्रोद्भवोस्तु तव सिद्धपतिप्रसादात् ॥

मनोरथाः सन्तु मनोज्ञसम्पदः,
सकीर्तयः सम्प्रति सम्भवन्तु ।
व्रजन्तु विघ्नानि घनं वलिष्ठं,
जिनेश्वर - श्रीपद — पूजनाद्धः ॥

अथवा

बने सिद्धपति के प्रसाद से नव-दम्पति दीर्घायु महान ।
पुण्यवान हों बुद्धिवान हों, कीर्तिवान हों अतिशयवान ॥

हर्षोल्लास सदा पग चूमे, हो सुख शान्ति भरा परिवार ।
गृह मन्दिर पुत्रादि पूर्ण हो, हो धन धान्य भरा भंडार ॥

गौतम गणधरादि दम्पति का रखें प्रफुल्लित गृह उद्यान ।
मंगल करते रहें तुम्हारा निशदिन महावोर भगवान ॥

पूज्याचार्य कुन्दकुन्दादिक दें उनको मंगल वरदान।
धर्म पुण्य की छाया में तुम बढ़ो सदा गाते जयगान ॥

इत्याशीर्वाद । पुष्पाञ्जलि ।

(इस समय वर-वधू गृहस्थाचार्य को नमस्कार करें)

॥ इति प्रदक्षिणा समय कर्त्तव्यम् ॥

जिन चैत्य वन्दना

भांवरों के दूसरे दिन वर-वधू नगर के समस्त जैन मन्दिरों के दर्शन करें तथा जिन मन्दिर-सरस्वती-भवन-शिक्षा संस्थाओं और याचकों को यथा शक्ति दान देवें। पूजन विधान करें या करावें। किन्तु लोकरूढ़ि के अनुसार अनन्त संसार और दुख के कारण कुदेवों की पूजा अर्चा न करें।

बिदा

कन्या का पिता विवाह समाप्त होने पर वर, वर के कुटुम्बी तथा बरात में आये हुए सम्भ्रान्त लोगों को विवाह के स्मरणस्वरूप जैन धर्म की पुस्तकें, शास्त्र अथवा वस्त्राभूषण अदि प्रदान कर पुलकित मन से सब को बिदा करे।

卐

मां की ममता

हर्ष और रोदन का देखो यह अद्भुत क्षण,
किन्तु भरा तात्विक रहस्य इसमें है कितना।
जिस पौधे को वनमाली ने पाला—पोसा,
उसमें ममता-पाप, इसी से जग है सपना।
आज रुदन के वातायन से धीमे-धीमे,
हर्ष-सिन्धु में घुल जावेगी प्यारी वेटी।
जिसकी रही धरोहर उसको मिल जावेगी,
ज्यों वसुधा से चन्दा ने चांदनी समेटी।
पालित हुई हमारे गृह आंगन में तनुजा,
सीखी जीवन-कला और जीवन के गुण को।
क्योंकि निभाने योग्य हुई गृह - दायित्वों को,
अतः आज हम लौटाते हैं उस गुलाव को।
पैदा होती जिस माता के अरे गर्भ से,
विदा उसी मां की गोदी से हो जाती है।
यह अनादि से मां-वेटी है एक पहेली,
केवल देती समाधान तात्विक दृष्टी है।
उठती यद्यपि राग-वृत्ति चेतन के भीतर,
कहते किन्तु मनीषि उसे चेतन से न्यारे।
यूं ही तो उठ जाता है ममकार जगत से,
क्योंकि यही तो एक मुक्ति का पंथ रहा रे।
ये जीवन के सूत्र यहां सीखे हैं तुमने,
और धर्म की निखरी परिभाषायें सीखीं।
अव करना साकार उन्हें निज घर में जाकर,
जिससे घर में छा जाओगी शान्ति लता सी।

थाम पा रहे आज नहीं हम अपने मन को,
टूट-टूट आंसू अटूट हैं आज हमारे।
एक ओर है स्नेह किन्तु सिद्धान्त और है,
कहीं धरोहर पर भी क्या अधिकार हुआ रे।
जनक श्री का स्नेह-बांध भी टूट चला है,
आंसू की बरसात कर रही मातु श्री भी।
देख रहे मातुल तुमको भीगे नयनों से,
तुम्हें देखकर अरी रो पढ़ी मामी जी भी।
नहीं संभाले सँभल पा रही ममता तेरी,
भाई भावज सिसक रहे प्राणों से प्यारे।
सह न सके बेटी! तेरे वियोग को,
हर परिजन का हृदय मोम बन पिघल चला रे।
विलख रही है उस कोने में तेरी दीदी,
मुरझाई सीं लगती है सब साथ सहेली।
कौन संभालेगा अब इन नन्हें मुन्ने को,
आज निराश्रित हुई अरी! तेरी भाभी भी।
एक बार जीवन में आता यह प्रसंग है,
सह लेंगे हम इसे हृदय को वज्र बनाकर।
यह भी सहलेंगे कि भुलादो तुम हम सबको,
रखना बेटी सदा धर्म को जीवन सहचर।
धर्म स्वयं है सत्य, सत्य का द्रष्टा भी है,
धर्म स्वयं है अभय, अभय का सृष्टा भी है।
शान्ति और आनन्द धर्म की ही पर्यायें,
और धर्म अन्तस विकार का हर्ता भी है।
कहता धर्म अरे! जीवन तो अविनश्वर है,
शाश्वत है निरपेक्ष पूर्ण आनन्द निकेतन।

रहती नहीं वहां आशायें अभिलाषायें,
सत्यं शिवं सुन्दरं का यह अद्भुत संगम।
यह सब सीखा है तुमने इस आर्हत गृह में,
विविध कलायें भी सीखी हैं विना सिखाये।
बने कला तेरी प्रसन्नता सारे घर की,
हर्षातिरेक के घन जिससे घर में छाजायें।
तुमने पाये वर वरेण्य और सक्षम घर भी,
सदन तुम्हारा लज्जित करदे स्वर्ग वसुमती।
लौट आये सावित्री तेरे पातिव्रत्य में,
कांप उठे तेरी सहिष्णुता से यह धरती।
उज्ज्वल किया अरी ! यह घर भी पावन कुल भी,
आलोकित करना उस घर को पावन कुल को।
तेरे जीवन का आदर्श बनेगी सीता,
री ! विपत्ति में कभी न कातर हो, आकुल हो।
है प्रमाद लौकिक लोकोत्तर जीवन दुश्मन,
जीवन-निधि को सदा सुरक्षित रखना उससे।
दुर्गम सेवा पथ में गति बेरोक तुम्हारी,
सदन-गगन में री ! तू विद्युत बनकर विहरे।
गुरुता को सम्मान, स्नेह देना लघुता को,
बरसे तेरी वाणी से अमृत का झरना।
धरती और गगन सुरभित हो जाये तुझ से,
ओ कुलदेवी ! मनस्ताप जन-जन का हरना।
दया-क्षमा और शील तुम्हारे आभूषण हों,
और दान से हो घर की दैनिक पवित्रता।
कलि से नहिं आक्रान्त अरी जीवन कलिका हो,
कभी न लौटे अतिथि तुम्हारे घर से रीता।

विविध समस्या और परिस्थिति के घनत्व में,
मेरी परामर्शदात्री साहस प्रतिमा सी।
निर्णायक प्रतिमा जीवन के हर पहलू में,
कदम कदम में तू आशा विश्वास सदा थी।
हो अखंड सौभाग्य तुम्हारा प्राची जैसा,
मृत्युञ्जय सी वढो पति के पदचापों पर।
चरण चूमने तेरे नीचे उतरें हिम - गिरि,
गगन झुकेगा निश्चित तेरे विश्वासों पर।
जीवनयात्रा का यह है अति व्यामोहक स्थल,
अतः वरश्री को भी मेरा कोमल संवोधन।
वोधि सदा पथ देगी तुमको हर मंजिल में,
मुक्त पुरुषमय वने तुम्हारा तन मन जीवन।
यह सवकी आशीष और आदेश यही है,
यह जीवन की कला पुण्य संदेश यही है।
युगल अलौकिक निधि सा इसे संजोकर रखना,
क्योंकि मुक्ति दूतों का अपना देश यही है।
तेरे विना आज वेटी! यह शून्य सदन है,
दक्षिण में आलोक और उत्तर में तम है।
ओ मृदुले! तुम थीं इस घर की दीप शिखासी,
आज सदन की दीवारों में छाया तम है!
जाती हो वेटी! पर जाओ कैसे कहदें,
जाती ही हो, किन्तु अरी! हो मंगल जाओ।
इस घर के सब पुण्य सिमट तुमको लग जावें,
जाओ बेटी! वार वार हो मङ्गल, जाओ।

तुम्हारी - "